CERTIFIED CIRCULATION EXCEEDS 15,000 COPIES

वर्ष ८, खण्ड २] अगस्त, सितम्बर, १९३० [संख्या ४-५, पूर्ण संख्या ९५

चाँद

IDEAL HALFTONE CO. S. Banerji
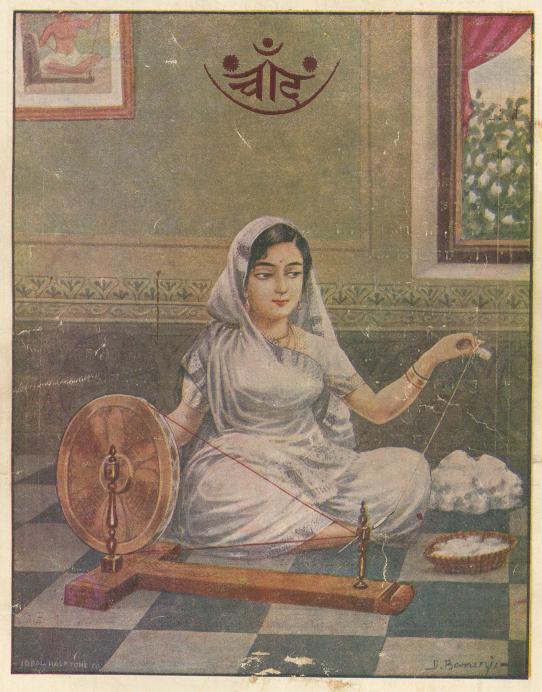
वार्षिक चन्दा ६॥)
छः माही ३॥)

सम्पादक—
श्रीरामरखसिंह सहगल
श्रीशुकदेव रा[illegible]

विदेश का चन्दा ८॥)
इस अङ्क का मूल्य ॥।)

PRINTED AT THE FINE ART PRINTING COTTAGE, CHANDRAL[illegible] ALLAHABAD.

मालिका

* * *

* * * * * *

चित्र-सूची

Mr. W. E. J. Dobbs, I.C.S., Collector, Allahabad says:

Dear Mr Sahgal

Please accept my best thanks for the picture book you were kind enough to send me and which is of much interest. I am glad that Allahabad can turn out such a pleasing specimen of the printer's art.

Yours truly

W. E. J. Dobbs

[ले० पण्डित भगवतीप्रसाद जी वाजपेयी]

[भूमिका-लेखक—श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक]

इस उपन्यास में बिछुड़े हुए दो हृदयों—पति-पत्नी—के अन्तर्द्वन्द्व का ऐसा सजीव चित्रण है कि पाठक एक बार इसके कुछ ही पन्ने पढ़ कर करुणा, कुतूहल और विस्मय के भावों में ऐसे ओत-प्रोत हो जायँगे कि फिर क्या मजाल कि इसका अन्तिम पृष्ठ तक पढ़े बिना कहीं किसी पत्ते की खड़खड़ाहट तक सुन सकें !

अशिक्षित पिता की अदूरदर्शिता, पुत्र की मौन-व्यथा, प्रथम पत्नी की समाज-सेवा, उसकी निराश रातें, पति का प्रथम पत्नी के लिए तड़पना और द्वितीय पत्नी को आघात न पहुँचाते हुए उसे सन्तुष्ट रखने को सचेष्ट रहना, अन्त में घटनाओं के जाल में तीनों का एकत्रित होना और द्वितीय पत्नी के द्वारा, उसके अन्तकाल के समय, प्रथम पत्नी का प्रकट होना—ये सब दृश्य ऐसे मनोमोहक हैं, मानो लेखक ने जादू की क़लम से लिखे हों !!

लेखक कहानी और उपन्यास लिखने में वैसे भी लब्ध-प्रतिष्ठ हैं, पर इस उपन्यास के लिखने में तो उन्होंने सच-मुच कमाल किया है। शरत बाबू के उपन्यासों में जो मोहक आकर्षण है और मेरी करेली के उपन्यासों में जो तड़पन, वह सब आपको इसकी पृष्ठ-प्यालियों में सर्वत्र ही छलकता हुआ मिलेगा !!!

काग़ज़ बढ़िया, छपाई लाजवाब, मूल्य केवल २)

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय,

चन्द्रलोक, इलाहाबाद

मनोहर ऐतिहासिक कहानियाँ

[लेखक—अध्यापक श्री० जहूरबख़्श जी 'हिन्दी-कोविद']

इस पुस्तक में पूर्वीय और पाश्चात्य, हिन्दू और मुसलमान स्त्री-पुरुष—सभी के आदर्श छोटी-छोटी कहानियों द्वारा उपस्थित किए गए हैं, जिससे बालक-बालिकाओं के हृदय पर लड़कपन ही से दयालुता, परोपकारिता, मित्रता, सच्चाई और पवित्रता आदि सद्गुणों के बीज अङ्कुरित करके उनके नैतिक जीवन को महान्, पवित्र और उज्ज्वल बनाया जा सके !

इस पुस्तक की सभी कहानियाँ शिक्षाप्रद और ऐसी हैं कि उनसे बालक-बालिकाएँ, स्त्री-पुरुष—सभी लाभ उठा सकते हैं। लेखक ने बालकों की प्रकृति का भली-भाँति अध्ययन करके इस पुस्तक को लिखा है। २५० पृष्ठों की समस्त कपड़े की जिल्द-सहित पुस्तक का मूल्य केवल २) रु०, स्थायी ग्राहकों से १॥) मात्र !

इस पुस्तक में देश-भक्ति और समाज-सेवा का सजीव वर्णन किया गया है। देश की वर्त्तमान अवस्था में हमें कौन-कौन सामाजिक सुधार करने की परमावश्यकता है; और वे सुधार किस प्रकार किए जा सकते हैं, आदि आवश्यक एवं उपयोगी विषयों का लेखक ने बड़ी योग्यता के साथ दिग्दर्शन कराया है। शान्ता और गङ्गाराम का शुद्ध और आदर्श-प्रेम देख कर हृदय गद्गद हो जाता है। साथ ही साथ हिन्दू-समाज के अत्याचार और षड्यन्त्र से शान्ता का उद्धार देख कर उसके साहस, धैर्य और स्वार्थ-त्याग की प्रशंसा करते ही बनती है। मूल्य केवल लागत-मात्र ॥।) स्थायी ग्राहकों के लिए ॥-)

मनो... रञ्जक कहानियाँ

श्री० ज़हूरबख़्श जी की लेखन-शैली बड़ी ही रोचक और मधुर है। आपने बालकों की प्रकृति का अच्छा अध्ययन किया है। यह पुस्तक आपने बहुत दिनों के कठिन परिश्रम के बाद लिखी है। इस पुस्तक में कुल १७ छोटी-छोटी शिक्षाप्रद, रोचक और सुन्दर हवाई कहानियाँ हैं, उनको पढ़ते ही हृदय आनन्द से उमड़ पड़ता है। हरेक कहानी को जितनी बार पढ़ा जाय, उतनी ही बार एक नया आनन्द प्राप्त होता है। बालक-बालिकाएँ तो इन्हें बड़े मनोयोग से सुनेंगे। बड़े-बूढ़ों का भी मनोरञ्जन हो सकता है। शीघ्र ही मँगा कर लाभ उठाइए। पृष्ठ संख्या १२० से अधिक, छपाई-सफ़ाई अच्छी, सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल १॥) स्थायी ग्राहकों से १=)

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

छत्रपति शिवाजो महाराज

केतु तुम्हारा धर्म-केतु था, पर-हित हेतु भव्य-जीवन
इसीलिए यह अचल कीर्ति है, मुग्ध कर लिया सबका मन !!

—श्या० प्र० श्रीवास्तव

आज़ाद-कथा (द्वि० भा०) (भा० पु०) २), २॥)
आत्महत्या (ब० प्रे०) ।॥)
आत्मोत्सर्ग (ह० दा० कं०) ॥।)
आदर्श चाची (ब० प्रे०) १।) १॥।),
आदर्श-नगरी (भा० प्र०) १)
आदर्श-बहू (ग्रं० भं०) ।॥)
आदर्श-भगिनी (ख० वि० प्रे०) =)
आदर्श-महिला (निहालचन्द) ॥)
आदर्श-माता (एल० आर० बेरी) ॥)
आदर्श-रमणी (हिं० पु० भं०) ॥=)
आदर्श-ललना (उ०ब०आ०) ॥)
आदर्श-हिन्दू (३ भाग) (इं० प्रे०) ३॥।)
आरब्योपन्यास (इं० प्रे०) (दो भाग) २॥)
,, (रा० ना० ला०) १।)
आलोक-लता (स० सा० प्र० मं०) १॥=)
आशा पर पानी (चाँ० का०) ॥=)
आश्चर्य घटना (इं० प्रे०) १॥)
आँख का नशा (उ० ब० आ०) १।)
आँख की किरकिरी (हिं० ग्रं० र०) १॥), २॥)
आँख के आँसू (उ० ब० आ०) ॥=)
इन्द्रधनुष (बी० सा० पु०) १॥)
इन्साफ़-संग्रह (३ भाग) (इं० प्रे०) १॥)
ईसप की कहानियाँ (इं० प्रे०) २)
उपदेशप्रद कहानियाँ (हिं० पु० का०) ॥)
उपन्यास कुसुम (ल० बु० डि०) १।)
उपन्यास-सागर (ल०बु०डि०) ६)

उमा सुन्दरी (चाँ० का०) ।॥)
उषा-काल (हिं० पु० ए०) २॥), ६॥)
एकलव्य (उ० ब० आ०) ॥)
एकादशी (हिं० ग्रं० भं०) १)
ऐतिहासिक कहानियाँ (इं० प्रे०) १)
कथा-कादम्बिनी (सा० भ० लि०) ।॥)
कनक-लता (उ० ब० आ०) १)
कप्तान की कन्या (बी० स० पु०) १।)
करुणा (इं० प्रे०) ३॥)
करुणा देवी (बेल० प्रे०) ॥=)
कर्तव्याघात (हिं० पु०) २॥)
कर्मक्षेत्र (ब० प्रे०) ३), ३।), ३॥)
कर्म-फल (गं० पु० मा०) १॥)
कर्म फल या जैसी करनी वैसी भरनी (बेल० प्रे०) ॥)
कलङ्क (ह० दा० कं०) १)
कङ्कण-चोर (उ० ब० आ०) २)
काजर की कोठरी (उ० ब० आ०) ।॥)
कामिनी-काञ्चन (निहाल-चन्द) ३), ३॥)
कायाकल्प (भा० पु०) ३॥)
क़िस्मत का खेल (ल० बु० डि०) ।-)
कुसुमकुमारी (सुद० प्रे०) १।)
,, (ल० बु० डि०) १।)
कोहेनूर (ब० प्रे०) १॥)
,, (ह० दा० कं०) २)
खरा-सोना (हिं० पु० ए०) १)
गजरा (हिं० ग्रं० भं०) ॥।≡)
गल्प-गुच्छ (इं० प्रे०) (४ भाग) ३॥।)
गल्प-गुच्छ (ह० दा० कं०) ॥)

गल्प पञ्चदशी (ल०ना०प्रे०) १।=)
गल्प-मन्दिर (प्रका० पु०) ॥।=)
गल्प-माला (ह० दा० कं०) ॥)
गल्प-लहरी (सा० भ० लि०) १।)
गल्प-विनोद (चाँ० का०) १)
गङ्गा गोविन्दसिंह (स० सा० प्र० मं०) ॥=)
ग्रह का फेर (चाँ० का०) ॥)
गायत्री-सावित्री (बेल० प्रे०) ॥)
गिरवी का लड़का (ना० द०) ।=)
गृहिणी-गौरव (ग्रं० भं०) १॥)
गोरा (प्रका० पु०) ३)
,, (स० पु० मा०) १।-)॥
गौरमोहन (दो भाग) (इं० प्रे०) ४)
गौरीशङ्कर (चाँ० का०) ॥=)
घर और बाहर (प्रका० पु०) १।)
चरित्रहीन (हिं० पु० ए०) ३।)
चन्द्र-कला (हिं० ग्रं० र०) ॥।=)
चन्द्रनाथ (,,) ।॥)
,, (हिं ग्रं० र०) ।॥)
चन्द्रभागा (ल० बु० डि०) १॥)
चन्द्रावली या नासिकेतोपाख्यान (इं० प्रे०) ।)
चन्द्रशाला (उ० ब० आ०) ।=)
चन्द हसीनों के ख़तूत (बी० स० पु०) ।॥)
चाणक्य और चन्द्रगुप्त (सर० भं०) २॥), ३)
चित्रकार (ल० बु० डि०) ।)
चित्रशाला (दो भाग) (गं० पु० मा०) ३।), ४)
चित्रावली (हिं० ग्रं० र०) ॥=)
चिन्ता (ब० प्रे०) ।॥), १॥)
चुड़ैल (ल० बु० डि०) १)
चुम्बन (बी० स० पु०) २॥)
चोट (हिं० ग्रं० भं०) ॥।=)

छत्रसाल (हिं०ग्रं०र०) १॥), २॥)
छाया (रा० हिं० मं०) ॥=)
जगदेव परमार (वें० प्रे०) ॥=)
जन्मभूमि (२ भाग) (उ० ब० आ०) १॥)
जपाकुसुम (ल० ना० प्रे०) २)
ज़बर्दस्त की लाठी (ल० बु० डि०) ॥)
जयमाल (हिं० पु० भं०) ।=)
जयश्री (उ० ब० आ०) ॥)
जर्मन-जासूस की रामकहानी (प्रका० पु०) ।-)
ज़हर का प्याला (उ० ब० आ०) १)
ज़ारीना (कौशिक) ।॥)
जुझार तेजा (गं० पु० मा०) ॥), १)
टॉलस्टाय की कहानियाँ (हिं० पु० ए०) १)
डबल बीबी (वें० प्रे०) ।॥)
डाकगाड़ी (उ० ब० आ०) ।॥)
डाकघर (इं० प्रे०) ।-)
डाकू की लड़की (उ०ब०आ०) ।॥)
तरल-तरङ्ग (इं० प्रे०) ।॥)
तारा (इं० प्रे०) १)
त्रिधारा (इं० प्रे०) १)
तुर्क-तरुणी (उ० ब० आ०) १)
तूलिका (गं० पु० मा०) १), १॥)
दर्प-दलन (उ० ब० आ०) ।॥=)
दलित कुसुम (ल० बु० डि०) ॥)
दस कथाएँ (शि० का०) ।=)॥
दशावतार-कथा (ख० वि० प्रे०) ॥)
दिया-तले अँधेरा (हिं० ग्रं०र०) =)
दिल्ली एक्सप्रेस (ससे० सा० स०) १)
दिल्ली का दलाल (बी० स० पु०) १॥)
दोज़ख़ की आग (बी०स०पु०) १॥)
दीप-निर्वाण (ल० बु० डि०) १॥)

दुख का मीठा फल (बेल० प्रे०) ।॥=)
दुलारी बहू (उ० ब० आ०) ।॥)
देवकली (ब० प्रे०) ।-)
देवदास (चाँ० का०) २)
देवबाला (ठेठ हिन्दी का ठाठ) (अयोध्यासिंह उपाध्याय) ॥)
देवी द्रौपदी (गं० पु० मा०) ॥)
देवी पार्वती (गं० पु०मा०) १), १॥)
देशी और विलायती (इं०प्रे०) २॥)
देहाती दुनिया (शिवपूजन सहाय) १॥)
देहाती समाज (इं० प्रे०) २)
दो बहिन (उ० ब० आ०) ॥=)
दौलत का नशा (उ० ब० आ०) १)
धनकुबेर या अर्थ-पिशाच (ब० प्रे०) २।)
धर्मोपाख्यान (इं० प्रे०) ।=)
धोखे की टट्टी (इं० प्रे०) ॥)
नवकुसुम (बेल० प्रे०) ।॥)
नवनिधि (हिं० ग्रं० र०) ।॥)
नवनिकुञ्ज (हिं० पु०ए०) १)
नवरत्न (ब० प्रे०) १॥)
नवनिधान (इं० प्रे०) १)
नवाब-नन्दिनी (दो भाग) (उ० ब० आ०) १॥)
नवीन संन्यासी (इं० प्रे०) ३॥)
नरेन्द्र भूषण (बेल० प्रे०) १)
नरेन्द्र-मालती (हिं० सा० पु०) १॥), २)
नाट्यकथाऽमृत (गं० पु० मा०) १), १॥)
नन्दन-निकुञ्ज (गं० पु० मा०) १), १॥)
नानी की कहानी (हिं० पु० ए०) ॥)
„ „ (शि० का०) ।=)
निकुञ्ज (हिं० ग्रं० भं०) १॥)

निधन की कन्या (उ० ब० आ०) ॥)
निर्मला (चाँ० का०) २॥)
नूतन-चरित्र (इं० प्रे०) १॥)
पतित पति (उ० ब० आ०) ।॥)
पतन (गं० पु० मा०) १।॥), २।)
पतितोद्धार (हिं० ग्रं० भं०) १≡)
पति-मन्दिर (हिं० पु० ए०) १॥=)
पति-पत्नी-प्रेम (ना० दा० स०) ।॥)
पतिव्रता मनसा (एस० आर० बेरी) ॥)
पत्नी-प्रभाव (उ० ब० आ०) ॥)
पत्र-पुष्प (इं० प्रे०) १॥)
पथ प्रदीप (हिं० सा० भं०) १।॥)
परिणाम (ल० बु० डि०) १)
परिणीता (इं० प्रे०) १)
परियों का देश (गृ० ल०) १)
पवित्र पापी (गं०पु०मा०) ३), ३॥)
पण्डित जी (इं० प्रे०) १॥)
पाथेयिका (त० भा० ग्रं०) १)
पाप का फल (ख० वि० प्रे०) ।≡)
पाप की छाप (लक्ष्मी पु०) २)
पाप-परिणाम (ह० दा० कं०) १)
पार्वती और यशोदा (इं० प्रे०) ॥=)
पारस्योपन्यास (इं० प्रे०) १॥)
पाण्डव-वनवास (ह० दा० कं०) २)
पुण्य-कीर्तन (ख० वि० प्रे०) १)
पुनरुत्थान (ग्रं० भं०) ॥=)
पुष्पवती (ल० बु० डि०) ।≡)
पुष्प लता (हिं० ग्रं० र०) १)
पुष्प-हार (ग्रं० मा०) १)
पोत की माला (इं० प्रे०) ।॥)
पौराणिक कथाएँ (हिं० पु० ए०) २॥=)
प्रणयी माधव (वें० प्रे०) १॥)
प्रतिध्वनि (जयशङ्कर प्रसाद) ।=)
प्रतिभा (हिं० ग्रं० र०) १)

प्रभात-सुन्दरी (ल० बु० डि०) १)
प्रवासिनी (उ० ब० आ०) १॥)
प्रतिशोध (हिं० पु० ए०) १।॥)
प्राणघातक-माला (अस्यु०) ॥=)
प्राणनाथ (चाँ० का०) २॥)
प्रियतम की रङ्गभूमि (दो० मा० सिं०) =)
प्रिया (हिं० पु० ए०) १॥=)
प्रेम (इ० दा० कं०) ।)
प्रेम का फल (ल० बु० डि०) ।=)
प्रेम की पीड़ा (लेखक मण्डल) ।॥)
प्रेमकान्त (मतवाला) १॥)
प्रेम-द्वादशी (गं० पु० मा०) १।), १।॥)
प्रेम-पचीसी २॥), २।॥)
प्रेम-पथ (हिं० पु० भं०) २)
प्रेम-पूर्णिमा (हिं० पु० ए०) २)
प्रेम-प्रतिमा (भा० पु०) २)
प्रेम-प्रभाकर (टॉलस्टॉय) (लाज० रा० सा०) १॥)
प्रेम-प्रमोद (चाँ० का०) २॥)
प्रेम-प्रसून (गं० पु० मा०) १=), १॥=)
प्रेमा (सा० क० का०) ।॥)
प्रेमाश्रम (हिं० पु० ए०) ३॥)
प्रेमिका (हिं० पु० भं०) २॥)
प्रोत्साहन (हिं० पु० ए०) ॥-)
फ़व्वारा (इं० प्रे०) १)
फुलवारी (हिं० भ०) ।)
फूलों की डाली (,,) ।=)
फूलवती (इं० प्रे०) ॥=)
फूलवाली (ल० भा० ग्रं०) १॥)
फूलकुमारी (उ० ब० आ०) ।-)
फूलों का गुच्छा (हिं० ग्रं० र०) १)
फूलों का हार (सर० पु० सा०) ।॥)
,, ,, (इ० दा० कं०) १।)

बगुला-भगत (हिं० पु० भं०) ।=)
बड़ा भाई (वें० प्रे०) ।॥)
बड़ी दीदी (इं० प्रे०) १)
बड़े घर की बड़ी बात (उ० ब० आ०) १)
बलात्कार (बी० स० पु०) १॥)
बलिदान (प्र० पु०) २)
,, (ल० बु० डि०) १)
बाबू साहब (ले० मं०) २)
बहता हुआ फूल (गं० पु० मा०) २॥), ३)
बहराम बहरोज़ (इं० प्रे०) ।)
बारह बादाम (हिं० पु० ए०) १॥)
बिछुड़ी हुई दुलहिन (इ० दा० कं०) १॥)
बिराज-बहू (सर० भं०) ॥=)
बिलाई मौसी (हिं० पु० भं०) ॥)
बुढ़ुआ की बेटी (बी० स० पु०) ३)
बेलून-विहार (इ० दा० कं०) १॥)
बङ्गाली बाबू (ल० बु० डि०) ।)
भक्त-विदुर (उ० ब० आ०) ॥)
भयानक बदला (निहालचन्द) १)
भागवन्ती (ना० दा० स०) १।),२)
भाग्य-चक्र (इ० दा० कं०) ॥)
भारत-सम्राट् (उ० ब० आ०) १।)
भारती (एस० आर० बेरी) २॥)
भारतीय वीरता (हिं० पु० ए०) १।॥)
भीमसिंह (पा० ऐं० कं०) १॥)
भौगोलिक कहानियाँ (रा० द० अ०) ॥)
अमर (उ० ब० आ०) १॥=), २)
मज़ेदार कहानियाँ (शि० का०) ।-)
मज़ेदार ख़ज़ाना (इं० प्रे०) ।)
मझली दीदी (इं० प्रे०) १)
मणिमाला (इं० प्रे०) २॥)

मणिमाला (चाँ० का०) ३)
मदालसा (ल० बु० डि०) ।-)
मधुमालती (ल० बु० डि०) ।॥)
मनमोदक (चाँ० का०) ।॥)
मनोरमा (,,) २॥)
मनोरञ्जक कहानियाँ (चाँ० का०) १॥)
मनोहर ऐतिहासिक कहानियाँ (चाँ० का०) २)
मयङ्क मोहिनी (वें० प्रे०) १)
महाभारत की मनोहर कहानियाँ (ना० दा० एण्ड सं०) १।)
महामाया (हिं०सा०का०) ॥=)
महारानी शशिप्रभा देवी (वें० प्रे०) १)
महाराष्ट्र-जीवन-प्रभात (इं०प्रे०) १॥)
महाराष्ट्र-वीर (व० प्रे०) १), १॥)
महासती मदालसा (ब० प्रे०) १॥), २)
महासती वृन्दा (एस० आर० बेरी) १)
महिला-महत्व (हिं० सा० भं०) २)
महेन्द्र-माधुरी (ल० बु० डि०) ॥)
मङ्गल-प्रभात (चाँ० का०) ५)
माधवी-कङ्कण (इं० प्रे०) १)
मानिक-मन्दिर (चाँ० का०) २॥)
मायावती (ल० बु० डि०) २॥)
मायाविनी (ल० बु० डि०) ।)
मिस्टर व्यास की कथा (गं० पु० मा०) २॥), ३)
मुकुट (इं० प्रे०) ।)
मुसकान (सा० भं०) १)
मूर्खराज (चाँ० का०) २)
मणिमयी (ख० वि० प्रे०) ।॥)
मेरी दुःख-गाथा (रा० प्रे०) ।)
मेहरुन्निसा (चाँ० का०) ॥)
युगलाङ्गुलीय (इं० प्रे०) ।-)

युद्ध की कहानियाँ (प्रका० पु०) १)
यूथिका (हिं० पु० भं०) ।=)
योगिनी विद्या (ल० बु० डि०) १)
रक्तमण्डल (ल० बु० डि०) ३)
रज़िया बेगम (सु० प्रे०) १॥)
रत्नदीप (इं०प्रे०) २)
रमणी-रहस्य (उ० ब० आ०) ॥)
रमा या पिशाचपुरी (उ० ब० आ०) ॥)
रङ्गभूमि (गं० पु० मा०) (दोनों भाग) ५), ६)
रङ्गमहल-रहस्य(बी० स० पु०) ४॥)
रसभरी कहानियाँ (शि० का०) ॥)
रँगीली दुनिया (ब० प्रे०) १),१।)
रागिणी (हिं० पु० ए०) ४)
राजदुलारी (उ० ब० आ०) १)
राजपूत जीवन-सन्ध्या (इं० प्रे०) १॥)
राजपूत-बाला (ध० ग्रं० मा०) १॥)
राजराजेश्वरी (उ० ब० आ०) १)
राजर्षि (इं० प्रे०) १)
राजर्षि प्रह्लाद (ब० प्रे०) २), २।), २॥)
,, ,, (उ० ब० आ०) ॥)
राजसिंह (ख० वि० प्रे०) १)
,, (ब० प्रे०) २), २।), ३॥)
,, (इ० दा० कं०) २॥)
राधाकान्त (,,) १)
राबिन्सन क्रूसो (इं० प्रे०) १॥)
राबिन्सन क्रूसो (रा०ना०ला०) ७)
रामप्यारी (उ० ब० आ०) १)
रामाश्वमेध (इं० प्रे०) ॥=)
रावण-राज्य (उ० ब० आ०) २॥)
रूप का बाज़ार (ल० बु० डि०) १)
रूप-ज्वाला (,,) ॥)
रूपनगर की राजकुमारी (लक्ष्मी पु०) ३)
रूप-लहरी (इ० दा० कं०) १॥)
लक्ष्मी (इं० प्रे०) ॥=)
,, (ग्रं० पु० मा०) ॥=)
लवकुश (इ० दा० कं०) ॥)
लवङ्गलता (,,) १॥)
लाल चीन (इं० प्रे०) १)
लीलावती (एस० आर० बेरी०) १॥), २)
लोक-वृत्ति (भा० पु०) १)
वज्राघात (प्रका० पु० मा०) २॥)
वन-कन्या (ल० बु० डि०) १)
वन-कुसुम (इं० प्रे०) ।=)
वनदेवी (हिं० पु०) ॥)
वनमाला (चाँ० का०) ३)
वनवीर (ब० प्रे०) १॥), २)
वन विहङ्गिनी (ल०बु०डि०) ।-)
वनिता-विलास (गं० पु० मा०) ॥=)
वरदान (ग्रं० भं०) १॥), २)
वसन्त-लता (ल० बु० डि०) १)
वङ्ग-विजेता (अभ्यु०) १)
,, ,, (मा० प्र०) १॥)
वाराङ्गना-रहस्य (६ भाग) (पाठ० एँ० कं०) ४॥), ५)
विजया (गं० पु० मा०) १॥),२)
बिखरा हुआ फूल (ल० आ० ग्रं०) १॥)
विचित्र जाल (ब० प्रे०) ॥=)
विचित्र वधू रहस्य (इं० प्रे०) १)
विचित्र योगी (गं० पु० मा०) १), १॥)
विदूषक (चाँ० का०) १)
विधवा-आश्रम (ना० दा० ए० सं०) १॥)
विनोद-वैचित्र्य (इं० प्रे०) १)
विधाता का विधान (हिं० ग्रं० र०) २॥),३)
विमाता (हिं० पु० भं०) २॥)
विरागिनी (इ० दा० कं०) १)
विलासकुमारी (हिं० बु० डि०) १॥)
विज्ञान-वाटिका (शि० का०) ।=)॥
विष-विवाह (ल० बु० डि०) १)
विपाक्त प्रेम (पु० भं०) १)
वीर अभिमन्यु (उ० ब० आ०) १)
,, ,, (ब० प्रे०) १)
वीर अर्जुन (ब० प्रे०) ३॥), ३।॥), ४)
वीर कर्ण (उ० ब० आ०) १)
वीर दुर्गादास (उ०ब०आ०) २)
वीर बाला (चाँ० का०) ४)
वीर बालिका (ल०बु०डि०) ।=)
वीरमणि (इं० प्रे०) १)
वीर रमणी (एस०आर०बेरी) १)
वीर-व्रत-पालन या महाराणा प्रताप (ब० प्रे०) २),२॥)
वीर वाराङ्गना (उ० ब० आ०) ॥)
वेणी-संहार (गं०पु०मा०) ॥=)
वेदना (स० सा० प्र० मं०) २॥)
शकुन्तला (ब० प्रे०) ॥=), २), २।),२॥)
शर्मिष्ठा (उ० ब० आ०) ॥),१)
शर्मिष्ठा-देवयानी (ब० प्रे०) २)
शशाङ्क (इं० प्रे०) ३)
शशिबाला (ब० प्रे०) ॥)
शशिप्रभा (वैज० प्रका०) २॥)
शाहज़ादा और फ़क़ीर (मि० बं० का०) ॥)
शाही चोर (ना० दा० स०) १)
शाही जादूगरनी (ना० दा० स०) १॥),२)

शाही डाकू (ना० दा० स०) १॥), १॥।), २)
शाही पतिव्रायण (,,) ॥=), १)
शाही लकड़हारा (,,) २), २।), २॥)
शान्ता (चाँ० का०) ।॥)
शान्ति-कुटीर (हिं० ग्रं० र०) १॥)
शान्ति-निकेतन (भा० पु० मा०) २।)
शिवाजी का दाहिना हाथ (उ० ब० आ०) १।)
शीलादेवी (इं० प्रे०) २)
शीशमहल (ब० प्रे०) २), २॥)
शेक्सपियर कथा-गाथा (रा० ना० ला०) १॥)
शेख़चिल्ली की कहानियाँ (इं० प्रे०) ॥=)
शैलकुमारी (चाँ० का०) २)
शैलबाला (ह० दा० कं०) १)
श्रीकृष्ण चरित्र (ब० प्रे०) ४), ४।), ४॥)
श्रीराम-चरित्र (न० कि० प्रे०) ५॥), ६)
षोड़शी (इं० प्रे०) १।)
सखाराम (चाँ० का०) १)
सतखड़ी (राधे० पु०) ॥)
सती उपन्यास (वें० प्रे०) ॥=)
सती पार्वती (ब० प्रे०) २), २॥)
सती-सामर्थ्य (एस० आर० बेरी) ।॥), १।)
सती सीमन्तिनी (एस० आर० बेरी) ॥)
सत्यानन्द (पु० भं०) १॥)
सप्त-सरोज (हिं० पु० ए०) ॥)
समाज की चिनगारियाँ (चाँ० का०) ३)
समाज-चित्र (वें० प्रे०) ।॥)
सम्राट् अशोक (सा० भ० लि०) २॥)
सम्राट् अशोक (प्रका० पु०) १)
सरस्वतीचन्द्र (राज० सा० स०) १॥), २।)
" (दो भाग) (ब० प्रे०) ४), ५)
सर्वस्व-समर्पण (हिं० पु० ए०) ४)
सन्देह (बेल० प्रे०) ।॥), १)
संयोगिता (ह० दा० कं०) ।=)
संसार-चक्र (जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी) १।)
संसार-रहस्य (गं० पु० मा०) १॥), २)
संसार-विजयी (ल० बु० डि०) १)
संसार-सेवा (हिं० प्रे०) ।)
सावित्री (ह० दा० कं०) १॥)
सावित्री-सत्यवान (ब० प्रे०) १॥), १।॥), २)
सियार पाँडे (हिं० पु० भं०) ।=)
सास-पतोहू (वें० प्रे०) ॥-)॥
सिद्धेश्वरी (ल० बु० डि०) ।)
सिराजुद्दौला (ह० दा० कं०) ४॥), ५)
सिंहगढ़-विजय (अ० प्रे०) ॥)
सीता (ब० प्रे०) २॥), २।॥), ३)
सीता-बनवास (इं० प्रे०) ॥=)
सीधे पण्डित (गं० पु० मा०) १॥), २)
सुकन्या (उ० ब० आ०) १)
" (ब० प्रे०) १।), १॥) १।॥)
सुकुमारी (उ० ब० आ०) १।), १।॥)
सुदर्शन-सुधा (इं० प्रे०) २)
सुधा (इं० प्रे०) २)
सुप्रभात (ना० दा० स०) १॥), २)
सफ़ेद औरत (उ० ब० आ०) १॥)
सुभद्रा (हिं० मं०) ॥)
सुमन-संग्रह (उ० ब० आ०) ॥)
सुरबाला (उ० ब० आ०) ॥)
सुशीला (ल० सा० भं०) ॥)
सुशीला-चरित्र (इं० प्रे०) १॥)
सूर्यग्रहण (स० सा० प्र० मं०) २॥)
सूर्योदय (ब० प्रे०) १।), १॥)
सेवा-सदन (हिं० पु० ए०) २॥), ३)
सोने का झरना (इं० प्रे०) ।॥)
सोने की कण्ठी (दो भाग) (उ० ब० आ०) २।)
सौभाग्यवती (इं० प्रे०) ।)
सौन्दर्योपासक (ख० वि० प्रे०) ।॥)
स्मृति-कुञ्ज (चाँ० का०) ३)
स्नेहलता (ल० बु० डि०) ॥)
स्वदेश की बलिवेदिका (मि० बं० का०) ॥=)
स्वर्ण-कमल (ह० दा० कं०) २॥=)
स्वर्ण प्रतिभा (भा० पु० भं०) २॥)
स्वर्णकान्ता सेट (उ० ब० आ०) २)
स्वर्णलता (इं० प्रे०) १।॥)
हरिश्चन्द्र शैव्या (ब० प्रे०) २॥)
हवाई क़िला (ब० प्रे०) १॥), २)
हाजी बाबा (ह० दा० कं०) ३), ३॥)
हिन्दी शेक्सपियर (दो भाग) १।॥)
हिन्दू-विधवा (ना० द० एं० सं०) ॥)
हृदय का काँटा (त० भा० ग्रं०) १॥)
हेमचन्द्र (उ० ब० आ०) १।), १॥=)
होमर-गाथा (सा० भ० लि०) १)

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

स्व० बङ्किमचन्द्र चटर्जी के उपन्यास

आनन्द-मठ (हिं० पु० ए०) ।।।)
इन्दिरा (") ।≡)
" (ख० वि० प्रे०) ।।=)
कपाल-कुण्डला (ख०वि०प्रे०) ।।=)
„ (ह० दा० कं०) १।)
कृष्णकान्त का दान-पत्र (ह० दा० कं०) १।।)
„ (ख० वि० प्रे०) ।।।)
चन्द्रशेखर (ह० दा० कं०) २)
चन्द्रशेखर (उ० ब० आ०) १)
दुर्गेशनन्दिनी (ह० दा० कं०) १।।)
दुर्गेशनन्दिनी (ख० वि० प्रे०) ।।)
„ (मा० प्र०) १।)
देवी चौधरानी (ख०वि०प्रे०) ।।=)
„ (सचित्र) (ह० दा० कं०) २)
„ (हिं० पु० ए०) ।।।)
मृणालिनी (ख० वि० प्रे०) ।।=)
युगलाङ्गुलीय (ख० वि० प्रे०) =)
„ (इं० प्रे०) ≡)
„ (ह० दा० कं०) ।)
रजनी „ १≡)
„ (ख० वि० प्रे०) ।।)
राजसिंह (ख० वि० प्रे०) १।)
„ (ह० दा० कं०) २)
„ (ब० प्रे०) २।।)
राधारानी (ख० वि० प्रे०) ≡)
विष-वृक्ष (हिं० पु० ए०) १)
सीताराम (उ० ब० आ०) १।)
„ (ह० दा० कं०) २)

अन्य पुस्तकें

कृष्ण-चरित्र (क० पु० भं०) २।।)
लोक-रहस्य (हिं० पु० ए०) ।।=)
„ (ह० दा० कं०) १।)

अय्यारी, तिलस्मी, जादूगरी, जासूसी और डकैती आदि विषय के उपन्यास

अदलू और बदलू की कहानियाँ (मि० बं० का०) =)
अद्भुत कहानियाँ (हिं० पु० ए०) ।।)
अनाथ बालिका (ब० प्रे०) ।-)
अनोखा जासूस (ना०दा०स०) २)
अनूठी कहानियाँ (शि० का०) ।=)
अबलाओं के आँसू (दो० मा० सि०) ।)
अभागे का भाग्य (ल० बु० डि०) ३)
अमीर अली ठग (ब० प्रे०) ।।।=), १।=)
अङ्कुर (सा० स०) ।।=)
अरब-सरदार (ब० प्रे०) ।।)
अर्थ का अनर्थ (जा० आ०) ।-)
अर्थ में अनर्थ (ल० बु०डि०) १।।=)
अङ्गरेज़ डाकू (ब० प्रे०) ।।=)
आहुतियाँ (छा० हिं० पु०) ।।।)
आत्म-हत्या (ब० प्रे०) ।।।)
आफ़त की पुड़िया (हिं० पु० ए०) १।।)
औरतों के ग़ुलाम (दो मा० सि०) १)
इन्दौर का जासूस (दो० मा० सि०) ।)
इन्दौर की अबला (,,) ।)
उपन्यास-कुसुम (ल०बु०डि०) १।)
ऊषा और अनरुद्ध (प्रा० का० मा०) ३)
कठपुतली (ल० बु० डि०) ।)
कर्म-मार्ग (जा० आ०) २)
काजर की कोठरी (ल० बु० डि०) ।।।)
कापालिक डाकू (ब०प्रे०) १।।), २)
काल-ग्रास (उ० ब० आ०) ।)
काला कुत्ता (ब० प्रे०) ।।)
काला चाँद (उ० ब० आ०) ।=)
काला साँप (ब० प्रे०) ।=)
क़िले की रानी (ल० बु० डि०) ।।।)
किसान की बेटी (,,) १।)
कुसुमकुमारी (,,) १।)
कुसुमलता (,,) ३)
कुण्डल (,,) १।)
कुन्दनलाल (जा० आ०) १।)
कृष्णवसना-सुन्दरी (निहाल-चन्द) १।।।), २)
क़ैदी की करामात (ब० प्रे०) १।।), २)
ख़ून-मिश्रित चोरी (ल० बु० डि०) १)
ख़ूनी औरत (ब०प्रे०) १।)
ख़ूनी औरत का सात ख़ून (सु० प्रे०) १।।)

ख़ूनी कलाई (ब० बु० डि०) ॥)
ख़ूनी का भेद (जा० आ०) ॥)
ख़ूनी की रिहाई (जा० आ०) ≡)
ख़ूनी मामला (ह० दा० कं०) ॥)
खोई हुई दुलहिन (ल० प्रे०) ।)
गाड़ी में लाश (जा० आ०) १)
गुप्त गुफ़ा (ब० प्रे०) १॥), २)
गुप्त गोदना (ल० बु० डि०) सेट ३)
गुप्त रहस्य (ह० ब० आ०) ॥-)
गुलबकावली (वें० प्रे०) १)
गुलबदन (ब० प्रे०) १॥), २)
गुलाब में काँटा (ब० प्रे०) १॥), २)
गेहुआ बाबा (प्रा० का० मा०) ॥≈)
गोपाल के गहने (जा० आ०) ।)
गङ्गा-जमुनी (हिं० पु० ए०) ४॥)
घटना-चक्र (ब० प्रे०) २), २॥)
घर का भेदिया (ब० प्रे०) ॥)
चतुर जासूस (,,) ॥)
चतुरङ्ग-चौकड़ी (,,) ।-)
चाण्डाल-चौकड़ी (,,) १॥), २)
चन्द्रकान्ता (ल० बु० डि०) १॥)
चन्द्रकान्ता सन्तति (२४ भाग) (ल० बु० डि०) ७॥)
चन्द्रभागा (,,) १॥)
चन्द्रमुखी (,,) (दो भाग) ॥)
चन्द्रलोक की यात्रा (वें० प्रे०) १॥)
चन्द्रशाला (ड० ब० आ०) ।≈)
चालाक चोर (ब० प्रे०) १॥), २)
चित्र (ल० बु० डि०) ≡)
चीनासुन्दरी (ब० प्रे०) १॥), २)
चुड़ैल (ल० बु० डि०) सेट १)
छः मामले (जा० आ०) १)
जवाहरात का गोला (ब० प्रे०) ॥)
ज़हर का प्याला (ड० ब० आ०) १)
जर्मन जासूस (ब० प्रे०) १॥), २)
जर्मन-जासूस की रामकहानी (प्र० पु० मा०) ।-)
जर्मन-षड्यन्त्र (ब० प्रे०) १॥), २)
जादू का महल (निहालचन्द) १॥)
जादूगरनी (वें० प्रे०) १)
जाली ज़मींदार (ब० प्रे०) ।)
जासूस की झोली (,,) १), १॥)
जासूस की डायरी (ब० प्रे०) १), १॥)
जासूस की डाली (गं० पु० मा०) १॥), २)
जासूस के घर ख़ून (ब० प्रे०) १॥), २)
जासूस के ज़बानी (जा० आ०) १)
जासूसी कहानियाँ (ब० प्रे०) ॥)
जासूसी कुत्ता (सचित्र) (ब० प्रे०) १॥, २)
जासूसी गुलदस्ता (जा० आ०) २)
,, ,, (ब० प्रे०) १), १॥)
जासूसी चक्कर (,,) २॥), ३)
जासूसी पिटारा (,,) ॥)
टर्की का क़ैदी (,,) १॥), २)
जीवन के आनन्द (इं० प्रे०) १)
जीवन के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर प्रकाश (सा० भ० लि०) ॥)
जीवन-निर्वाह (हिं० ग्रं० र०) १)
जीवन-पथ-प्रदीप (सा० र० वं०) ।)
जीवन-व्यवहार (रा० प्रे०) ॥)
जीवन-संग्राम में विजय-प्राप्ति के कुछ उपाय (हिं० प्रे०) ।)
जीवन-साहित्य (स० सा० प्र० मं०) ॥)
जीवन-सुधार (रा० प्रे०) ॥)
जीवन-सुधार पर सरल विचार (हिं० सा० मं०) ≡)
जीवनादर्श (मे० चं० ल० दा०) १)
जीवनीशक्ति (ह० दा० कं०) ।≈)
जीवनोपयोगी बातें (ह० दा० कं०) ।-)
जैसे चाहो वैसे बन जाओ (हिं० सा० मं०) ≡)॥
टॉलस्टॉय के सिद्धान्त (प्रका० पु०) ॥)
टोली-प्रणाली (से० स० बा० मं०) ।)
ठहरो (वें० प्रे०) ।)
तन, मन और परिस्थितियों का नेता मनुष्य (हिं० सा० मं०) ।)
तपस्वी अरविन्द के पत्र (हिं० मं०) ।≈)
तैरने की कला (ज्ञा० मं०) ।≡)
दम्पति-मित्र (स० आ०) ३॥)
दाग़ी माल (अ० प्रे०) ।≈)
दाम्पत्य विज्ञान (गा० कं०) २), २॥)
दिव्य जीवन (स० सा० प्र० मं०) ।≈)
दुःख और सुख (अ० प्रे०) ।॥)
देश-दर्शन (हिं० ग्रं० र०) ३), ३)
दैवी सहायक (रा० ब० पण्ड्या बैजनाथ) ।-)
दो साहित्य-सेवी (ह० दा० कं०) ।≈)
धर्मपद (ह० दा० कं०) ॥≈)
धर्मशिक्षा (त० भा० ग्रं०) १)
धर्म और जातीयता (स० सा० प्र० मं०) ।॥)
धर्मोपाख्यान (इं० प्रे०) ।≈)
ध्रुव पद-शिक्षण (से० स० बा० मं०) १)
नवीन दृष्टि में प्रवीण भारत (नि० बु० डि०) १)
नवीन पत्र-प्रकाश (मि० बं० का०) १)

संयुक्तांक (दमन नीति का प्रसाद)

आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है।
जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय
नहीं कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष ८ खण्ड २ | अगस्त, सितम्बर, १९३० | संख्या ४-५ पूर्ण संख्या ९५
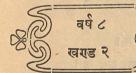
छत्रपति शिवाजी

[श्री० आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव]

वीर बनाता कायर जन को
है, हे वीर तुम्हारा नाम।
जो कोई कर सका नहीं था,
वही किया था तुमने काम॥

तुमको भारत कण्टक-वन था,
और न था तन पर तन-त्राण।
हाथ तुम्हारे ढाल न थी, थे
बरस रहे विपदा के बाण॥

वज्रतत्व के बने चरण थे,
वज्रतत्व का बना शरीर।
वज्र-कुसुम का तत्व निहित था,
दृढ़ कोमल मन में गम्भीर॥

सिंहों का साहस था तुममें,
शिक्षित गज का बल तन में।
बुद्धि वृहस्पति की थी तुममें,
स्वर्ग-तेज था आनन में॥

कल्पित तुमने किया किस समय
भारत में हिन्दू-साम्राज्य ।
और जमाया तुमने निर्भय
भारत में हिन्दू का राज्य ॥

वह विशाल क्षमता मुग़लों की,
सेना उनकी परम-विशाल ।
जिसे देख कम्पायमान हो
नेपोलियन समझता काल ॥

विचलित तुमको नहीं कर सकी,
बाँका कर न सकी फिर बाल ।
थी अदृश्य मन्दार सुमन की
आख़िर गले विजय की माल ॥

सिंहों से थी भरी तुम्हारी
सेना अल्प किन्तु दुर्जय ।
हुई सिंहगढ़ विजय देख कर
मुग़लों की गुरु शक्ति सभय॥

डरता था बस एक तुम्हीं से
निपट निडर वह आलमगीर ।
रही सफलता साथ तुम्हारे,
सदा लक्ष्य पर पहुँचा तीर ॥

दीनों पर वह दया और वह
सब महिलाओं का सम्मान ।
वह भारत की भक्ति और वह
वीर जनों को आदर-दान ॥

अविनत अथवा विनत पराजित
रिपुजन से समुचित व्यवहार ।
वह पतनोन्मुख मनुज तथा
महिला जन का उद्धत उद्धार ॥

वह उदारता, विनयशीलता,
वह अत्यन्त उच्च आचार ।
जाने कितना सुषम बना था
तव महान मन का संसार ॥

बचा लिया कितनी महिलाओं—
का सतीत्व बल से तुमने ।
कितने छली जनों का बहु छल
विफल किया छल से तुमने ॥

कितने सुजनों की रक्षा की
सङ्कट प्राणों का सह के ।
कितने कुजनों को दीक्षा दी
उन पर सदा सदय रह के ॥

वीर तुम्हारा वह प्रताप था,
जिससे कँपा सबल संसार ।
वह थी सद्भावना कि जिससे
सुखमय हुआ सकल संसार ॥

केतु तुम्हारा धर्म-केतु था,
पर-हित हेतु भव्य जीवन ।
इसीलिए यह अचल कीर्ति है,
मुग्ध कर लिया सबका मन ॥

अगस्त, सितम्बर, १६३०

क़ानून या काल ?

जीवन्मृत
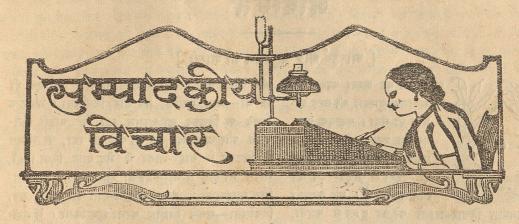
[आचार्य श्री० चतुरसेन जी शास्त्री]

न्द्रह वर्ष का लम्बा काल एक भयानक दुःस्वप्न की तरह व्यतीत हो गया। एक-एक क्षण, एक-एक श्वास, जीवन की एक-एक घड़ी, हज़ारों बिच्छुओं की दंश-वेदना में तड़प-तड़प कर व्यतीत हुई है। वह कल्पना और मानवीय विचारधारा से परे का दुःख न कहना, स्मरण न करना ही अच्छा है। मानो मैंने एक महान पवित्र व्रत लिया था, जो एक प्रकृत योद्धा को सजने योग्य था, जिसके लिए चरम कोटि के त्याग, साहस, सहिष्णुता, वीरता और प्रतिभा एवं ओज की आवश्यकता थी। अपनी शक्ति और व्यक्तित्व पर बिना ही विचार किए मैं रणपोत पर सैनिक गर्व से उद्ग्रीव होकर चढ़ गया। सहस्रावधि नर-नारियों ने हर्ष और आशा में भर कर उल्लास प्रकट किया, साधुवाद दिए, पर मानो प्रशान्त महासागर में एक साधारण चक्कर खाकर ही वह दृढ़ पोत जल-मग्न हो गया और देखते ही देखते उसका अस्तित्व विलीन हो गया। रह गया अकेला मैं, साधन, शक्ति और अवलम्ब से रहित, एक मात्र तख़्ते के एक टुकड़े के सहारे तैरता हुआ। अन्ध निशा में, एक सुदूर तारे के क्षीण प्रकाश में, उस दुर्धर्ष महाजल राशि पर, जीवन के मोह के कच्चे धागे के आसरे भटकता रहा। १५ वर्ष तक अनन्त हिंस्र जीव-जन्तुओं का आक्रमण, हड्डियों में कम्प उत्पन्न करने वाला शीत, नस-नस से प्राणों को खींच लेने वाली पर्वत-समान जलराशि की उत्तुङ्ग तरी के थपेड़े, उस असहाय अवस्था में सहन करता रहा। १५ वर्ष तक! और कितना भयानक, कितना रोमाञ्चकारी, कितना अद्भुत, यह जीवन का मोह रहा! ये प्राण कितने बहुमूल्य प्रमाणित हुए। क्या पृथ्वी पर और कोई मनुष्य भी इस तरह जिया होगा?

२

प्रकृति की एकान्त स्थली पर मैंने अपना शैशव और यौवन का प्रारम्भ व्यतीत किया। वहाँ एक ही रङ्ग था—त्याग, शान्ति, तप और निर्वासना। जब तक शैशव पर विधान का शासन रहा, मेरे बाहरी पीत-वसन और अन्तस्तल का भी एक रङ्ग रहा, पर यौवन के विकास ने बाहर-भीतर में भेद डाल दिया। हाँ, संसर्ग तो कुछ न था—जो था साधारण—परन्तु नैसर्गिक वासनाओं ने प्रस्फुटित होते-होते उस त्याग, तप, निर्वासना—सबसे विद्रोह करना शुरू किया। मैं ब्रह्मचारी था। उस तपस्थली पर मेरे जैसे बहुत थे, पर हमारे गुरू और उपजीवी ब्रह्मचारी न थे। हम नैसर्गिक रह ही न सके, हमारी सादगी में भी एक शान थी, हमारे ब्रह्मचर्य में भी एक फ़ैशन था, हमारे त्याग-तप में भी प्रदर्शन था। जगत के सर्व-साधारण कैसे जीवन के पथ पर बढ़ते हैं, मैं नहीं जानता, पर हम सभी में हास्य-उल्लास, गोपनीय वासनाएँ तथा तमोमयी भावनाएँ थीं। उस आश्रम में मैं ही सर्वोपरि और सर्वश्रेष्ठ हूँ—मुझे सर्वश्रेष्ठ होना ही चाहिए—यह मैं शीघ्र ही समझ गया। कैसे? यह नहीं बताऊँगा। मैं आचार्य का पुत्र था। राजपुत्र तो जन्म ही से सर्वश्रेष्ठ होते हैं। इसमें अनुचित क्या? मैं सर्व-प्रथम, सर्वश्रेष्ठ पुरुष होकर उस दुर्धर्ष आश्रम से बाहर आया। संसार कैसा सुन्दर था! मैं देखते ही मोहित हो गया। वह मेरे ऊपर श्रद्धा, आशा और प्रेम बिखेर रहा था। मैंने जाना भी न था कि मैं जीवन में इतना आदर पाऊँगा। वह आशातीत आदर पाकर मैं गर्व से नाच उठा। मैंने अच्छी तरह अपनी मानसिक दुर्बलताएँ अपने पीले उत्तरीय में लपेट कर छिपा लीं, और मैं असाधारण पुरुष की तरह खुले संसार में पैर के धमाके से हलचल मचाता हुआ आगे बढ़ चला।

स्त्री को सदैव दूर से देखा और अनुमान से समझा था। आश्रम में स्त्री मात्र दुष्प्राप्य थी। फिर मैं तो मातृहीन बालक ठहरा। परन्तु सदैव ही मैंने स्त्री-जाति के सम्बन्ध में विचारा। फिर भी वह क्या वस्तु है, कुछ समझा नहीं।

पर, विशाल जगत में आते ही स्त्री भी मिली। अद्भुत वस्तु थी। इसे देख, फिर और किसी को देखने की इच्छा ही न होती थी। मैं जगत को भूल गया। स्त्री-शरीर, स्त्री-हृदय, स्त्री-भावना, यह मेरा खाने और बिखेरने का अब विषय रही, परन्तु जीवन का एक नूतन अनिर्वचनीय आनन्द तो अभी मिलना शेष ही था। वह मुझे शिशु कुमार के अवतरण होते ही मिला। आह! जगत के पर्दों के भीतर क्या-क्या छिपा है, और उसे भाग्यवान किस तरह अनायास ही प्राप्त कर लेते हैं, यह मैं क्या कभी विचार भी सकता था?

वाह रे मेरा सुखी जीवन और मेरा नवीन संसार! मैं सोता था हँस कर, जागता भी था हँस कर! शिशु कुमार और उसकी माता, ये दोनों ही मेरे हास्य के साधन थे। शीतकाल के प्रभात की सुनहरी धूप की तरह वह मेरा हास्य मुझे कैसा सजता था! आज १५ वर्ष से मैं उस अतीत हास्य की कल्पना करके भी एक सुख पाता हूँ।

देश मेरा प्राण और देश-सेवा मेरा व्रत था। यह बात कुछ मेरे मन के भीतर नहीं उपजी, प्रत्युत मुझे बचपन से सिखाई गई थी। उस आश्रम की उन अति गरिष्ट पुस्तकों के अलावा—जिनसे सदैव भयभीत रहने पर भी मेरा पिण्ड नहीं छूट सका था—यही एक प्रधान विषय था जिसे आश्रम के गुरु से शिष्य तक भिन्न-भिन्न शब्दों और शैलियों में सोचते-विचारते थे।

देश ही मातृ-भूमि है, वह मातृ-भूमि माता—जन्मदात्री माता—से भी अधिक पूजनीय है। वही मातृ-भूमि विदेशी अत्याचारियों द्वारा दलित है। उसका उद्धार करना हमारे जीवन का एक व्रत है। बस, यही हमारे देश-प्रेम की रूप-रेखा थी। मातृ-भूमि का उद्धार कैसे किया जाय, यह मैंने न कभी सोचा, न समझा, न किसी ने मुझे बताया ही। मैं मातृ-भूमि का उद्धार करूँगा, यह मैं चिल्ला कर कहता। पर किस तरह, यह नहीं जानता था। और इसी लिए मैं अब तक समय-समय पर चिल्ल-पुकार करने के सिवा और कुछ कार्य इस विषय में कर भी नहीं सका। मैंने समझा यही यथेष्ट है। इसे करने में धन भी मिला और यश भी। रोज़गार-धन्धे को ढूँढ़ने की दिक़्क़त भी न उठानी पड़ी, यही चिल्ल-पुकार करना मेरा व्यवसाय हो गया। मैं अब जिह्वा और लेखनी दोनों से यही चिल्लाया करता। निदान, देश पर मरने वालों की फ़ेहरिस्त में मेरा नाम दूर ही से चमकने लगा। मेरी स्त्री हँसती थी। वह मुझे जीवित रखना चाहती थी, मारना नहीं। मैं कह दिया करता—"यह तो कहने की बातें हैं। मरने का ऐसा यहाँ कौन सा प्रसङ्ग है?" बस, यही उसके हास्य का विषय था। शिशु कुमार की बात कैसे भूली जाय? हँसने में चार चाँद तो वही लगाता था।

पर मैंने जो कुछ समझा वह मेरी जड़ता थी। देश का अस्तित्व एक कठोर और वास्तविक अस्तित्व था। उसकी परिस्थिति ऐसी थी कि करोड़ों नर-नारी मनुष्यत्व से गिर कर पशु की तरह जी रहे थे। संसार की महाजातियाँ जहाँ परस्पर स्पर्द्धा करती हुई जीवन-पथ पर बढ़ रही थीं, वहाँ मेरा देश और मेरे देश के करोड़ों नर-नारी केवल यह समस्या हल करने में असमर्थ थे कि कैसे अपने खण्डित, तिरस्कृत, अवशिष्ट, जीवन को ख़तम किया जाय? देश-भक्त मित्र मेरे पास धीरे-धीरे जुटने लगे। उन्होंने देश की सुलगती हुई आग का मुझे दिग्दर्शन कराया। मैंने भूख और अपमान की आग में जलते और छटपटाते देश के स्त्री-बच्चों को देखा। वहाँ करोड़ों विधवाएँ, करोड़ों मँगते, करोड़ों भूखे-नङ्गे, करोड़ों कुपढ़ मूर्ख और करोड़ों ही अकाल में काल-ग्रास बनते हुए अबोध शिशु थे। मेरा कलेजा थर्रा गया। मैं सोचने लगा, जो बात केवल मैं कहानी-कल्पना समझता था, वह सच्ची है, और यदि मुझमें सच्ची ग़ैरत थी तो मुझे सचमुच मरना ही चाहिए था। मैं भयभीत हो गया। मैं कह चुका था कि मैं मरने से पीछे हटने वाला नहीं हूँ। अब क्या करता? मैं बिलकुल पशु तो नहीं, बेग़ैरत भी नहीं, परन्तु मैं मरने को तैयार नहीं था। फिर भी मैं ज़बान लौटा न सका, मेरी वाग्धारा और लेखनी वैसी ही चलती रही। वास्तविकता का ज्यों-ज्यों दिग्दर्शन मुझे हुआ, वह उतनी ही अधिक मर्म-स्पर्शिनी हो गई। बोलना और लिखना मैंने सीखा था, फिर वह मेरा स्वाभाविक गुण था। शीघ्र ही मेरी सोलहों कलाएँ पूर्ण हो गईं। मैं देश में सितारे की भाँति चमकने लगा। मेरा सम्मान चरमकोटि पर पहुँचा, पर मेरा हास्य, मेरा सुख सदा के लिए गया। मैं सदा ही शङ्कित, थकित और चिन्तित रहता, मानो मृत्यु परछाईं की तरह सदा

मेरे पीछे रहती थी। मैं उससे बहुत ही डरता था। अब मृत्यु ही मेरे हृदय और मस्तिष्क के विचारने का विषय रह गई, परन्तु क्या कहूँ? इस दुःख में भी एक वस्तु थी, जो प्राणों से चिपट रही थी—वही स्त्री और शिशु कुमार।

राजा साहब को मैंने कभी नहीं समझा, पर उनसे कभी डरा भी नहीं। उनके नेत्र अद्भुत थे, और देखने का ढङ्ग और भी अद्भुत—छोटा सा मुख, बड़ी-बड़ी मूँछें, उस पर भारी सा हम्मामा, और काले चश्मे से ढकी हुई वे अद्भुत रहस्यमयी आँखें। सभी कहते थे, राजा साहब से हम डरते हैं, पर मैं कभी न डरा। वे आते ही सदैव पहले मुझे प्यार करते, तब पिता जी से बात करते थे। वे पिता जी के अनन्य भक्त थे, पिता जी के दीक्षा लेने के पूर्व से ही। उनके संन्यस्त होने के बाद तो वे उनके शिष्य ही हो गए थे। बहुधा उनमें एकान्त में बातचीत होती, घण्टों और कभी-कभी दिनों तक। वे खाना-पीना-सोना भी भूल जाते। तब भी मैं उनके विषय को न समझ सका था और अब, इतना बड़ा होने पर भी, नहीं समझ सका। एक ही बात प्रकट थी कि वे बड़े भारी देश-भक्त हैं। मैं भी देश-भक्त था। बस, यही हमारा उनका नाता था। वह धीरे-धीरे बढ़ा। पहले वह जैसे मुझे प्यार करते थे, वैसे अब वे शिशु कुमार को प्यार करने लगे। यह बात मुझे और मेरी पत्नी को बहुत भाती थी। पर वे कभी-कभी शिशु कुमार को छाती से लगा कर मेरी ओर ऐसी मर्म-भेदिनी दृष्टि से ताकते थे कि मैं घबरा जाता था। तभी तो मैं कहता था कि वह दृष्टि बड़ी अद्भुत थी। उस समय मैं उसे समझा नहीं, समझा तब, जब मैं स्त्री, पुत्र, प्राण, जीवन, सब कुछ उन्हें देकर महापथ पर महायात्रा के लिए अग्रसर हुआ। आज वे आँखें १५ वर्ष से प्रति क्षण मुझे घूर रही हैं। उनसे एक क्षण भी बचना मेरे लिए अशक्य है।

राजा साहब ने मुझसे जिस लिए परिचय बढ़ाया था, उसका मुख्य कारण धीरे-धीरे उन्होंने खोला। मैं ज्यों-ज्यों सुनता था, भयभीत होता, पर यत्न से भय को छिपा कर उत्साह प्रदर्शित करता था। फिर भी मालूम होता मानो वे सब समझ रहे हैं। वे थोड़ी-थोड़ी बातें करते और चले जाते। एक दिन हठात मुझे बुला कर उन्होंने कहा—"क्या तुम अपने पिता के सच्चे पुत्र और साहसी देश-सेवक हो?" मैं ना कहता किस तरह? मैंने सिंह-गर्जन की तरह हुङ्कार भरी। राजा साहब ने मुख्य उद्देश्य बता दिया। मैं सन्न हो गया। वे मृत्यु को जेब में लिए फिरते थे, अपने लिए भी और मेरे लिए भी। उस महावीर के सम्मुख कायर बनना मेरे लिए शक्य न रहा। मैं हाँ करता गया। स्वामी जी के सम्मुख भी हाँ की। स्त्री ने हाहाकार किया, परन्तु एक अपूर्व गर्व-भावना मन में आ गई थी। मैं पीछे न हटा। मैंने अपना जीवन राजा साहब के हाथों सौंप दिया। फिर तो मैं इस तरह उड़ा जैसे आँधी से उड़ाया हुआ और डाल से टूटा हुआ सूखा पत्ता।

३

मैंने अपनी आत्मा से अधिक उस पर विश्वास किया था। उसके पिता मेरे गुरु और परम श्रद्धास्पद थे। वे अपने जीवन के प्रारम्भ से ही देश के एक अप्रतिम सेवक रहे, उनकी सन्तान कैसे देश और जाति का मित्र न होगी? मैं इसके विपरीत सोच ही न सका। इस प्रसङ्ग से प्रथम कई वर्ष से मैं उससे परिचित था। पत्र-व्यवहार और मुलाक़ात सभी में वह एक उत्कट देश-भक्त वीर युवक ध्वनित होता रहा। जब मैंने उससे अपना गम्भीर अभिप्राय निवेदन किया तो वह एकटक मेरे मुख को देखता रह गया। उसके होठ और कण्ठ सूख गए। बड़ी चेष्टा करके उसने कहा—श्रीमान, आपने राज्य और रियासत को धूल के समान त्याग दिया; राज्य, भोग और ऐश्वर्य से दूर हो गए; दिन-रात देश और जाति की ध्वनि आपके रोम-रोम से निकलती है। अब आप क्या सचमुच प्राणों की बाज़ी भी लगा देने को तैयार हैं?

मैं तो तैयार ही था। बिना एक क्षण रुके मैंने कहा—"हाँ, हाँ, अब प्राणों को छोड़ कर मेरे पास और रह ही क्या गया है? यह भी जिसकी धरोहर हैं, उसे जितनी जल्दी सौंप दिए जायँ उतना ही अच्छा। इस शरीर को इन प्राणों का भार अब सह्य नहीं है। यह गुलामी, यह काला जीवन, हमारा—हम समस्त भारत-वासियों का—कैसा है, समझते हो? जैसे, एक भेड़ के बच्चे का उस बाड़े के भीतर, जिसके फाटक पर शिकारी कुत्तों का पहरा लग रहा है। इस पहरे के भीतर राजा रहा तो क्या, प्रजा रही तो क्या, जीवित रहा

तो क्या और मर गया तो क्या? बोलो तुम क्या कहते हो?"

उसकी आँखों से झर-झर आँसू टपक गए। उसने गद्गद् कण्ठ से कहा—"श्रीमान, मैं भी कैसा अपदार्थ हूँ! मैं अपनी स्त्री-बच्चे को त्यागने में कष्ट पा रहा हूँ, परन्तु आप—ओह! आपके सम्मुख मैं लज्जित होने का कारण न पैदा होने दूँगा। मैं सोचूँगा, कल इसी समय मैं आपको वचन दूँगा। सिर्फ़ कल भर आप और रहने दीजिए।"

"कुछ हर्ज नहीं, पर समझ लेना, मृत्यु की पद-पद पर आशङ्का है। भय और विपत्ति के बादलों में जाना होगा—ज़रा भी विचलित हुए, ज़रा भी स्त्री-बच्चों के सुख का स्मरण आया, ज़रा भी मन में भीरुता आई, देश तो अतल पाताल में गया ही समझना, साथ ही पचासों वीर मित्रों की जान जायगी। सब कुछ मिट्टी में मिल जायगा।"

"श्रीमान, क्या आप नहीं जानते, मैं किसका पुत्र हूँ?"

"जानता हूँ, पर तुम्हें स्वयं भी कुछ होना चाहिए।"

"तब श्रीमान का मुझ पर विश्वास नहीं?"

"विश्वास? विश्वास अपनी आत्मा से भी अधिक है। मैं अपने विश्वास से बेफ़िक्र हूँ। मैं यह चाहता हूँ कि तुम्हें स्वयं अपने ऊपर विश्वास हो।"

वह अधोमुख होकर सोचने लगा। मैंने मन में वेदना अनुभव की। लाखों युवकों में मैंने इसे चुना है, क्या मैं धोखा खाऊँगा?

मैंने उसे बिदा किया, वह चला गया।

दूसरे दिन ठीक समय पर मिलते ही उसने कहा—"श्रीमान, मैं तैयार हूँ।" उसने अपना हाथ बढ़ा दिया। मैं घोर सन्दिग्ध अवस्था में था। क्षण भर मैं उसे देखता रहा। क्या यह सच है? महान विचार-धाराओं के कार्य-रूप में परिणत होने का समय क्या आ गया? ओह प्यारे भारतवर्ष!...... ठहरो। मैंने खड़ा होकर उसका स्वागत किया। मैं कुछ बोल न सका। मेरे नेत्रों में आँसू थे। कुछ ठहर कर मैंने कहा—"प्यारे युवक, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, प्राण रहते तुम्हारी रक्षा करूँगा। प्रत्येक ख़तरे को अपने सिर पर लूँगा। तुम्हें प्राणों से अधिक प्यार करूँगा, परन्तु फिर भी तुम्हें प्रतिज्ञा करनी है कि यदि कुअवसर उपस्थित हो तो अपने प्राणों को, शरीर को, अपदार्थ समझोगे। अभी तुम्हारे सम्मुख जो भयानक गम्भीर भेद प्रकट होंगे, उन्हें तुम्हारे हृदय से बाहर तब तक न आना चाहिए, जब तक कि तुम्हारे हृदय को चीर कर टुकड़े-टुकड़े न कर दिया जाय। तुम सदा यह समझ कर अपने जीवन को बलिदान करने के लिए तैयार रहना कि इससे सैकड़ों सच्चे वीरों के जीवन की रक्षा होगी। जो अब नहीं तो फिर कभी न कभी देश का उद्धार करेंगे।" युवक के नेत्रों में स्थिरता थी। उसने सहज-शान्त स्वर में कहा—"श्रीमान, हर तरह परीक्षा कर लें।"

मैंने कहा—"तुम्हारे पिता की भक्ति मेरे हृदय में धरोहर है। मैंने उनसे आदेश ले लिया है। तुम्हारी यही परीक्षा काफ़ी है। तुम केवल मुख से एक बार कह दो कि तुम भेदों को प्राणों से बढ़ कर समझोगे?"

"समझूँगा।"

"विपत्ति आने पर तुम स्थिर रहोगे?"

"उसी तरह जैसे पत्थर की मूर्ति रहती है।"

"यदि तुम्हें मृत्यु का आलिङ्गन करना पड़े?"

"तो मैं उसे अपने पुत्र की तरह गले लगाऊँगा?"

"यदि तुम्हें भेद लेने के लिए असह्य वेदनाएँ दी जायँ?"

"मैं धर्म से शपथपूर्वक कहता हूँ कि मृत्यु पर्यन्त उन्हें सहन करूँगा।"

"यदि प्रलोभन दिए जायँ?"

"वे मुझे विचलित नहीं कर सकेंगे।"

युवक के होठ काँपे। नेत्रों की पुतरियाँ चलायमान हुईं। मैंने अधीर होकर कहा—"प्रलोभन? क्या प्रलोभन तुम्हें चलायमान न कर सकेंगे?"

"नहीं श्रीमान, अभी मैं बड़े से बड़े प्रलोभन को त्याग आया हूँ।"

मेरा सन्तोष न हुआ। मैं उठ कर टहलने लगा। मैं सोचने लगा—वेदना, यातना और मृत्यु ये एक ओर हैं, परन्तु प्रलोभन? ओह, इसका अन्त नहीं। यह युवक वेदना सहेगा, मृत्यु का आलिङ्गन भी करेगा। मैं विश्वास करता हूँ, पर प्रलोभन? ओह, विश्वास नहीं होता। शायद उसे स्वयं भी विश्वास नहीं।

युवक ने मेरे पास आकर कहा—"श्रीमान क्या विश्वास नहीं करते ?"

"मेरे प्यारे मित्र, मैं तुम्हारे साथ अन्याय कर रहा हूँ। मुझे विश्वास करना चाहिए।" मैंने युवक को छाती से लगा लिया। मैंने कहा—"लो, अब हम-तुम एक हुए, एक महान कार्य की पूर्ति के लिए। यदि परमेश्वर को अभीष्ट हुआ तो हम मर कर भी अमर होंगे। हम दोनों करोड़ों मनुष्यों से अधिक शक्तिशाली हैं। हम पृथ्वी की महा विजयिनी शक्ति के सम्मुख चल रहे हैं—मरेंगे या विजयी होंगे।" आवेग में ही ये शब्द मुख से निकल गए। उसके बाद मेरा बाहुपाश कब शिथिल हुआ, कब वह युवक खिसक कर मेरे पैरों में आ गिरा, मुझे स्मरण नहीं।

४

जगत में असाधारण होना भी कैसा दुर्भाग्य है! पृथ्वी की असंख्य आँखें उसीके छिद्रान्वेषण में लगी रहती हैं। वह यदि जगत के लिए मरता है तो जगत की दृष्टि में यह उसका साधारण सा कर्तव्य है, किन्तु यदि वह एक क्षण भी अपने लिए जीता है तो मानो पाप का पर्वत उसके सिर पर लद जाता है। क्या यह दुर्भाग्य नहीं ? अरे भाई, सभी कीड़े-मकोड़े, पशु-पक्षी, नर-नारी, अपने ही लिए तो जीते हैं ? अपने क्षण भर के सुख और जीवन के लिए अनगिनत प्राणियों को नष्ट कर डालते हैं। कोई भी तो उनसे कुछ नहीं कहता। फिर हम पर ही यह अग्नि-वर्षा क्यों ? मैंने सब कुछ त्यागा। जीवन के कष्ट और आपत्तियों को क्या कहूँ, अब तो सबको पार कर गया। अब उनकी स्मृति से क्यों मन को सन्ताप दूँ ? परन्तु शरीर और हृदय, ये जब तक जीवन-तत्व से संयुक्त हैं, तब तक तो प्रकृत संन्यस्त में सदैव कमी रहेगी ही। यह मेरा अब तक का अनुभव है।

मैं संन्यस्त हुआ सही, पर पिता का हृदय कहाँ रक्खा जाय ? पुत्र तो आत्मा और रक्त-मांस में से भाग देकर बना था, उसका मोह कहाँ तक त्यागूँ ? कहाँ तक निर्मोही बनूँ ? उसकी माँ तो उसे जन्म देकर ही मर गई थी। उसने अल्प जीवन में जो कुछ दिया, अब भी वह अतीत के सब सुखों के ऊपर नृत्य कर रहा है। उस मधुर स्मृति की एक अमिट रेखा यह पुत्र था। इसे मैंने हाथों-हाथ पाला और उसे—जैसा कि मैंने चाहा था—संसार के सामने, क्रान्ति के नव्य कुमार के रूप में पेश किया। लक्षावधि देशवासी उस पर नाज़ करते थे और मैं अपनी सफलता पर मुग्ध होता था—उसी तरह जैसे किसान अपने कड़े परिश्रम से सींचे हुए खेती को पका देख कर मुग्ध होता है।

फिर भी मैं राजा साहब के वचन को न टाल सका। उनके भयानक साहस से मैं अवगत था। उनकी प्रत्येक गति-विधि से मैं परिचित था। पुत्र के अनिष्ट का भय पद-पद पर स्पष्ट था। किन्तु मुझे सहमत होना पड़ा। इसके अनेक कारण थे। देश के नाम पर बलिदान होने की मैं स्वयं उच्च स्वर से पुकार कर चुका था, पुत्र को भी यही शिक्षा दी थी। अब उसे उस मार्ग से रोक कर क्या राजा साहब और अन्य साथियों की दृष्टि में अपदार्थ बनता ? लड़के में भी साहस और उत्साह था। पर उसके मर्मस्थल की दुर्बलता मैं जानता था। विलासिता उसे गिरावेगी, मुझे भय था। उसने वस्तुस्थिति को समझा ही नहीं। जब उसने स्वयं नवजात पुत्र और पत्नी को त्याग कर उस भयानक यात्रा और कठोर कर्तव्य-पथ पर राजा साहब का अनुकरण करने का अपना इरादा प्रकट किया, तब मैं स्तब्ध रह गया। मैंने कहा—"पुत्र, राजा साहब का मैं चिर-सहयोगी हूँ, परन्तु केवल सुख से। तुम तो इतने उत्साह से यह बात कह रहे हो, कदाचित तुम अवश्यम्भावी विपद से अवगत नहीं। कार्य की गुरुता और कठिनाई तुम यथावत नहीं समझ रहे हो। यह तुमसे होनेवाला कार्य नहीं, महादुस्साध्य है। यह लोह-पुरुषों का महकमा है। इसके लिए वे पुरुष चाहिए जो लोहे का शरीर, लोहे की आत्मा और लोहे का हृदय रखते हों। मेरे बेटे, मैं तुम्हें जानता हूँ। तुम वह नहीं हो। घर में बैठो, बैठे-बैठे जो बने करो। देश और जाति के लिए यही यथेष्ट है।"

उसने एक न सुनी। वह मूर्ख मुझ पिता के सम्मुख भी कायर बनना न चाहता था। उसने अस्वाभाविक करारे स्वर में हठ प्रदर्शन किया और मुझे सहमति देनी पड़ी।

वही हुआ जिसका भय था। पृथ्वी के उस छोर पर वे विपत्ति के अग्नि-समुद्र में बड़े कौशल और साव-

धानी से घुस रहे थे। अरे, जब अग्नि-समुद्र में घुसना था, फिर कौशल क्या? वह फँस गया, राजा साहब बाल-बाल बच कर निकल भागे। मैं यहीं बैठा उनकी गति-विधि का निरीक्षण कर रहा था। महासमर की प्रचण्ड ज्वालाएँ यूरोप को भस्म कर रही थीं। उसकी चिनगारी कब मेरी कुटी को भस्म कर देगी, यह कहना शक्य न था। यूरोप के दैनिक पत्रों को देखने के अतिरिक्त मैं और कुछ कर ही न सकता था। मन ही न लगता था। उसके उस पत्र पर सरकारी गुप्त विभाग के सर्वोच्च अधिकारी की एक टिप्पणी थी। उससे मैं समझ गया, पुत्र की मृत्यु का मूल्य बहुत अधिक है। वह मूल्य मेरे पास था तो, पर मैंने बहुत चेष्टा की कि प्राण देकर उस मूल्य को न दूँ। पर हाय! अवसर ही ऐसा आ गया, मेरे प्राणों का कुछ भी मूल्य इस सौदे में न रहा। उसने सब कुछ कह दिया था। उसके वक्तव्य की सत्यता के प्रमाण मात्र मेरे पास थे। मैं कई दिन उसके बच्चे को छाती से लगा कर तड़पता फिरा। अपने संन्यास-वेश की असत्यता मुझ पर खुल गई। ओह, मुझे वह काला काम करना पड़ा। मैंने पुत्र के प्राणों की पिता की तरह रक्षा की।

पर उसके बदले हुआ क्या? देश भर में तलाशियों और गिरफ़्तारियों की धूम मच गई। होनहार, अटपटे वीरों ने हँसते-हँसते फाँसी पाई। कुछ कालेपानी जाकर वहीं घुल गए। कुछ युग व्यतीत कर लौट आए। देशोद्धार का सुयोग अतल पाताल में चला गया। मेरे दुष्कर्म का यह भेद एक राजा साहब को ही मालूम था, पर वे भारत में आ न सकते थे। एक पत्र उन्होंने भेजा था। ओह, जाने दो, जब उसे भस्म कर दिया है, तब चर्चा क्यों? जिस बात के भूलने में सुख है, उसे हठ-पूर्वक स्मरण क्यों किया जाय?

५

महाजातियों का यह सङ्घर्ष कैसा सुन्दर है! यदि मैं भी इन्हीं जातियों में जन्म लेने का सौभाग्य प्राप्त करता तो क्या आज चूहे की तरह इधर से उधर प्राण बचाता फिरता? महाशक्ति की सेनाओं की कमान इन्हीं हाथों में होती, पर जीवन में कभी वह क्षण आवेगा भी? आवे या न आवे, मैं अन्त तक न थकूँगा। भोजन और सोना कई दिन से नसीब नहीं हुए। नाविक के वेश में, मछलियों की सड़ी गन्ध में छिपे-छिपे सिर भिन्ना गया, पर विपत्ति तो अभी सिर पर है। वह दूर पर रणपोतों के तोपों का गर्जन सुनाई पड़ रहा है। वह सर्चलाइट का श्वेत सर्प समुद्र पर लहरा रहा है। किन्तु प्रभात होते ही तो किनारे लगेंगे? किनारे पर शत्रु हैं या मित्र, कौन जाने? मित्र हुए तो इस बार जान बची, पर यदि शत्रु हुए तो आज ही प्राणान्त है। जीवन भी कैसी चीज़ है? इस समय राजमहल याद आ रहे हैं। महारानी मानो करुण नेत्रों से झाँक रही हैं, परन्तु क्या इस महायुद्ध में मैं अपने वंशधरों की भाँति अपने देश के लिए जूझने में पीछे रहूँ? जूझने के ढङ्ग तो यथावसर निराले होते ही हैं, परन्तु जिन विदेशियों को मैं मित्र बना कर अपना और अपने देश का ऐसा गम्भीर दायित्व सौंप रहा हूँ, वह क्या सच्चे रहेंगे? एक विदेशी से प्राण छुड़ाने को दूसरे का आश्रय लेना सुन्दर नीति तो नहीं, परन्तु दूसरी गति भी नहीं थी। फिर, अब लौटने का उपाय भी तो नहीं है। एक बार देश में आग फैल जाय, अमन, आराम और शान्ति की इच्छा नष्ट हो जाय, देश जूझ मरने की हौंस मन में उत्पन्न करे, फिर तो आज़ादी स्वयं ही आ जायगी। यह महासमर तो महाराज्यों के भाग्य का निबटारा करेगा, महाजातियों के भाग्य का निबटारा तो कहीं अन्यत्र ही होगा। सुदूर पूर्व में शान्त समुद्र की लहरें रक्त से लाल होंगी, एशिया की प्रसुप्त आत्मा जाग्रत होकर हुङ्कार भरेगी, तब यूरोप का शान्त दर्प ध्वंस होगा। उसी दिन के लिए तो मेरा आयोजन है। ओह, अभी मुझे बहुत काम है, पहली यात्रा में ही यह विघ्न हुआ!

अभी मुझे बारम्बार चीन, जापान, रूस, अमेरिका और न जाने कहाँ-कहाँ जाना होगा। महाविध्वंस क्या योंही हो जायगा? परन्तु वह युवक तो फँस गया। बुरा हुआ। बचना सम्भव ही न था। महासाहस उसमें न था। चिन्तनीय बात तो यह है कि सब कुछ उसे ज्ञात है। आवश्यक काग़ज़ भी बहुत से वहीं रह गए हैं। तब वह क्या प्राणों के लोभ से देश को चौपट करेगा? विश्वासघाती होगा? मरने में क्षण भर का ही तो दुःख है। वह अवश्य उसे सह लेगा, भेद न

खोलेगा। फिर भी सचेत रहना आवश्यक है। मुझे अब नया कार्यक्रम बनाना उचित है। अपने मार्ग की गति भी बदलनी उचित है। ये नाविक विश्वसनीय हैं, परन्तु मैं कुछ और ही करूँगा।

ओह देश! मेरे प्यारे स्वदेश!! यह तन, मन, धन, सब तुझ पर न्यौछावर है। तेरी एक-एक रज-कण में मेरे जैसे लाख शरीर बनते-बिगड़ते हैं। फिर इस शरीर का क्या मोह? मेरे प्यारे स्वदेश! मैंने सब कुछ तुझे दिया है। अब प्राण भी दूँगा। इस धरोहर को पास रखने योग्य अब मेरे पास ठौर भी नहीं रह गया है। आह, क्या कभी मैं तुझे देख सकूँगा? वह नील-श्यामल रूप!! अरे, बचपन की क्या-क्या बातें याद आ रही हैं? परन्तु नहीं, मुझे इस समय कायर नहीं बनना चाहिए। मैं प्रण करता हूँ, देश की भूमि पर तभी पैर रक्खूँगा जब उसे पूर्ण स्वाधीन कर लूँगा।

६

प्राण बचे तो, पर बेमोल बिक गए थे। उन पर मेरा क़ाबू न था। अब स्वेच्छानुसार न कुछ कर सकता था, न सोच सकता था। उन बहुमूल्य गोपनीय बातों के बदले मुझे गुप्त विभाग में उच्च पद मिला था। मेरे प्राण जैसे मेरे लिए क़ीमती थे, वैसे ही उस गुप्त विभाग के लिए भी थे। मेरा जीवन रहस्यमय था। मेरे हृदय में कुछ और भी है, तथा मेरी ओट में कुछ रहस्य-भेद होगा, इस तत्व ने मेरे प्राणों को इस अधम शरीर में सुरक्षित रक्खा और इस कापुरुष ने यही ग़नीमत समझा। शिशु की फैली हुई बाँह और हँसता मुख मैं कुछ काल तक देखता रहा, उस जेल-यन्त्रणा और मृत्यु की कोठरी में भी और इस अफ़सरी की सुखद किन्तु भीषण कुर्सी पर भी। परन्तु पाप के पथ पर तो पाप की हाट लगी ही रहती है। फिर लिली की बात क्यों छिपाऊँ? न जाने क्यों वह मुझ अभागे पर मुग्ध हुई। उसका पति मेरा उच्च ऑफ़िसर था। हम लोगों ने विष द्वारा उस कण्टक को दूर कर दिया। अब लिली थी और मैं था। परन्तु मृतात्मा हमारे बीच में जीवित की अपेक्षा अधिक भयानक रूप में थी। एक बार फाँसी के फन्दे को हम दोनों ने अपने संयुक्त गर्दनों के इर्द-गिर्द देखा। हमने सोचा यहाँ से भाग चलें। तार दिया, जहाज़ का टिकट भी ले लिया, पर भाग न सके। जहाज़ पर ख़ूनी आसामी कह कर पकड़े गए। लिली का रोना देखने योग्य था। पर वह छूटती कैसे, हड्डियों तक घुस गई थी। हताश, दोनों मृत्यु का आलिङ्गन करने को तैयार हो गए। परन्तु ये कठिन प्राण तो इस शरीर में जम कर बैठे थे। उन्हीं शक्तियों ने प्राण बचा लिए। मैं लिली के मृतक पति के पद पर, उसी मृतक के नाम से बैठ गया। लिली अब वास्तव में मेरी पत्नी थी। अब मानो मैं मर गया हूँ। मैं नहीं हूँ, जिसे मैंने लिली के लिए मारा, मानो वह मैं हूँ। शिशु का वह हास्य और पत्नी के वे नेत्र अब भी कभी-कभी स्वप्न की तरह स्मरण आते हैं, पर पूर्व-जन्म की इन बातों में अब क्या रक्खा है? लिली से मैं अब भी प्यार की आशा करता था। छिः! कैसी विडम्बना है! पति के हत्यारे को प्यार करना क्या साधारण है? फिर यदि प्रेम की सुखद गोद में हत्या जैसा पाप घुस जाय तब वह जिन्हें सुखद प्रतीत हो वे निश्चय ही राक्षस होंगे। हृदय की उन वेदनाओं को क्या कहा जाय, जिन्होंने शरीर को नष्ट कर दिया है? और वह अभागा भी कैसा दुखी जीव है, जो उसके साथ रहने को विवश किया गया है, जो उससे घृणा करती है? हमारे रस की प्रत्येक बूँद में विष है, पर उसे रस कह कर पीना हम दोनों के ही लिए अनिवार्य है। हाय रे प्रारब्ध!

७

मैं अभागिनी अबला स्त्री क्या करती? मरना सुखकर था, परन्तु शिशु कुमार के मन्द हास्य ने उसे दुरूह कर दिया। क्या कोई भी माँ अपने फूल-से बच्चे को इस तरह हँसते छोड़ कर मर सकती है? अब तो मैं पहले माँ थी, पीछे पत्नी। इसीलिए गोद के शिशु को धरती में पटक कर परोक्ष पति के नाम पर मरना मेरे लिए सम्भव ही न रहा। मैं सुख-दुःख के बीच झूलती रही। मैं मृत्यु और जीवन की ड्योढ़ियों में पड़ी ठोकर खाती रही। मुझ दुखिया के कष्ट, मूक मनोवेदना का अनुमान तो करिए? मेरी बात पूछने वाला कौन था? मेरे मन को सहारा किसका था? मैं पति के सहवास-काल की प्रत्येक घटना, प्रत्येक बात, अपनी आँखों से प्रति क्षण देखती, सोते समय और जागते समय भी। मैं कभी हँसती और कभी रो देती। कभी सोते-सोते या बैठे ही

बैठे चमक उठती। मुझे ऐसा प्रतीत होता था मानो वे आ गए। उन्होंने अभी-अभी शिशु कुमार को आवाज़ दी है। कण्ठ-स्वर को मैं प्रत्यक्ष सुन पाती। मैं द्वार की ओर दौड़ती, परन्तु तत्काल ही समझ जाती, ओह! कुछ नहीं, यह सब मनोविकार था। मैं नहीं कह सकती कि सोने के समय जागती थी या जागने के समय सोती थी। प्रायः मैं जड़वत बैठी रहती। उस समय मैं किसी की कोई बात ही न सुन पाती थी। मैं उस समय देखती थी—वे उन्हें पकड़ कर फाँसी पर चढ़ा रहे हैं, उनके शरीर में तलवारें घुसेड़ रहे हैं। शरीर रक्त से भर रहा है। मैं एकाएक चीत्कार कर उठती, और फिर धरती पर धड़ाम से गिर कर बेहोश हो जाती थी।

शिशु कुमार को देख कर ही मैं सचेत रह सकती थी। मुझे तब वास्तव में हँसना ही पड़ता था। वह उनके सिखाए ढङ्ग पर मेरे गले में बाहें डाल कर जब ज़रा-ज़रा तोतली वाणी से सितार की झनकार के स्वर में कहता—"माता जी, रूठो मत" तब मैं मानो किसी गूढ़ जगत से एकाएक भूतल पर आती। होठों पर मुस्कान न आती, पर नेत्रों में आँसू आ जाते थे। उन्हें शिशु कुमार से छिपाने के लिए मैं उसे ज़ोर से छाती से लगा लेती थी।

उस दिन स्वामी जी एकाएक मेरे सम्मुख आ खड़े हुए। उनके होठ काँप रहे थे और पैर लड़खड़ा रहे थे। उनके मुख पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। वे कुछ कहना चाहते थे, पर बोली न निकलती थी। मैं घबरा कर उठ खड़ी हुई। मैंने कभी उन्हें इतना विचलित न देखा था। मैंने कहा—"बात क्या है पिता जी?" "वह जीवित है, वह आ रहा है"—वे अधिक न बोल सके। आँसुओं की धारा उनके नेत्रों से बहने लगी। उन्होंने मुँह फेर कर अच्छी तरह रुदन किया।

मेरे शरीर में रक्त की गति रुक गई। मेरी हड्डी-हड्डी काँपने लगी। मैंने खड़े रहने की बड़ी चेष्टा की, पर न रह सकी। मेरा सिर घूम रहा था, छाती फटी पड़ती थी। मैं बैठ गई, या गिर गई, स्मरण नहीं।

स्वामी जी ने घूम कर कहा—"बेटी, आज ७ वीं तारीख़ है। १० तारीख़ के प्रातःकाल जहाज़ बम्बई के बन्दर पर लगेगा। हमें आज ही चलना होगा। तुम अपना आवश्यक सामान ले लो। अभी समय है। गाड़ी साढ़े नौ पर खुलती है।" वे इतना कह कर चले गए।

मार्ग में मैं जीवित थी या मृत, नहीं कह सकती। बम्बई कब पहुँची, स्मरण नहीं। रेल दौड़ रही थी, मैं मानो आकाश में घुसी जा रही थी, मानो मैं अभी सूर्य-मण्डल को भेदन करूँगी। डेक पर सहस्रावधि नर-नारी खड़े थे। एक भीमकाय जहाज़ उन्मत्त समुद्र की जल-राशि के हृदय को विदीर्ण करता हुआ भयानक दानव की तरह निकट ही आ रहा था। मेरी संज्ञा प्रायः लुप्त थी। डेक पर लगते ही नर-नारियों का समुद्र किनारे उतरने लगा। मैं सम्पूर्ण चेष्टा से उनके बीच कुछ खोज सकने भर की संज्ञा सञ्चित कर रही थी। सब कुछ एक रङ्गीन बिन्दु के समान दीख पड़ता था। नहीं कह सकती, कब तक हम लोग खड़े रहे। हठात स्वामी जी ने कहा—"इस जहाज़ में तो वह नहीं है। क्या कारण हुआ?" उनके प्रदीप्त नेत्र दूर तक घूम कर मेरे मुख पर आ लगे। बम्बई आने पर यही शब्द मैं ठीक-ठीक सुन सकी। मैं समझी, यह सब मृग-मरीचिका थी। वे नहीं आए, वे नहीं आवेंगे। मैंने अनन्त तक फैली हुई जल-राशि पर दृष्टि दौड़ाई। हठात मेरे मन में एक भाव उदय हुआ। मैंने हठात कहा—"पिता जी, तब मैं वहाँ जाऊँगी।" मेरे ये शब्द मेरे ही कानों में तोप के भीषण गर्जन की तरह प्रतीत हुए।

स्वामी जी ने मेरे मुख की तरफ़ देखा। उन्होंने आश्वासन देकर कहा—"अवश्य कुछ कारण हुआ है। पत्र या तार शीघ्र मिलेगा। तब भविष्य कर्तव्य पर विचार करेंगे। अभी घर चलो।" मैंने एक पग भी न हिलाया। बहुत तर्क हुआ। विजय मेरी हुई। सोते हुए शिशु कुमार को छोटी बहू की गोद में सौंप, उसे बिना ही अच्छी तरह देखे, उसे बिना ही चूमे, मैं उस अनन्त समुद्र के उस पार, उस अज्ञात प्रदेश में, पति को ढूँढ़ लाने चली। मेरा माता होना धिक्कार हुआ। हाय रे! अधम नारी-हृदय!!

८

इस कृष्णकाय और साधारण पुरुष ने क्या जादू कर दिया? ओह, मैंने कैसा घोर दुष्कर्म किया? अब इन रक्त-रञ्जित हाथों को कौन प्यार करेगा? यही व्यक्ति? और वह कितना भयानक, कितना घृणास्पद है! क्यों

यह पापिष्ट हमारे बीच में आया ? क्यों इसने हमारे प्रशान्त प्रेम में आग लगाई ? मैं इससे घृणा करती हूँ। पति की मृतक आँखें कैसी चमक रही हैं ! वे सब कुछ जानती हैं। उन्होंने अपना सभी प्रेम और विश्वास मुझे दिया, इसीलिए कि मैं अपनी वासना के लिए उनका प्राण हरण करूँ ? परन्तु अब तो मैं इसके साथ रहने के लिए बाध्य हूँ, छुटकारा पा नहीं सकती। यह वह विदेशी कृष्णकाय हत्यारा नहीं, मेरा वही पति है। इसमें क्या राजनैतिक महत्व है, इसे तो वह गुप्त विभाग जाने, जिसने इस भाग्यहीन को इतना बड़ा पद दिया है। पर मैं कैसे यह मान लूँ ? क्या आँखें फोड़ लूँ ? हृदय को चीर डालूँ ?

सुनती थी कि यह विवाहित है। इसके पुत्र, पत्नी है। आज उसे देख भी लिया। वह इसे ले जाने के लिए यहाँ आई है, पर यह सब कैसे सम्भव हो सकता है ? अब यदि यह अपना पूर्व नाम भी स्मरण करेगा तो उसकी सज़ा मौत है। और कैसी भयानक बात है ! मैं उससे मिली, कितनी सीधी-सादी, दुखिया स्त्री है ? वह अपने हठ पर है। किन्तु उसे मालूम नहीं कि प्रबल और समर्थ हाथ उसके विपरीत है। अपराध का इतना समर्थन कहाँ किसी ने देखा होगा ? ओफ़ !

६

कल मैंने उन्हें देखा। वही थे, किन्तु कितना परिवर्तन हो गया है ! फिर भी मेरी आँखें क्या उन्हें भूल सकती थीं ? उन्होंने भी देखा। मैं समझ गई उनकी हड्डी तक काँप गई है, पर क्यों ? वे दौड़ कर क्यों नहीं मेरे पास आए ? इतना डरे क्यों ? क्या पहचाना नहीं ? ओह, हे ईश्वर, तब मेरे लिए ठौर कहाँ है ? इतना करके भी मैं वञ्चित रही ? आशा के कच्चे तार के सहारे ये प्राण इस अधम शरीर को यहाँ तक ले आए। आकर जो पाना था पाया भी, पर क्या मैं पाकर भी न पा सकूँगी ? ओह, पति के नाम पर मर मिटने वालियों से भी मेरा साहस बढ़ कर है। मैं आगे बढ़ी। दिन छिप गया था। गहरा कोहरा इस विदेश की महानगरी में अद्भुत भयानक मालूम होता था। प्रकाश-स्तम्भों की धुँधली रोशनी में मैं उनके पीछे बढ़ी चली गई और साहसपूर्वक हाथ पकड़ लिया। उन्होंने रुक कर देखा, भद्र विदेशी भाषा में उन्होंने कहा—"देवी, आप कौन हैं ? क्यों आपने मुझे रोका है ? आपका क्या काम है, कहिए ?" अरे ! वही तो कण्ठ-स्वर था। सदा तो इसे मैंने सुना है, पर यह अपरिचित शब्द-जाल कैसा ? मैं रो उठी, मैं गिर गई, चरणों पर नहीं, धरती पर। उन्होंने मुझे उठाया, तसल्ली दी। मैंने देखा—वही, वही, वही हैं। मैंने गले में बाँह डाल दी। जितना रो सकती थी, रोई। मैंने कहा—"दासी पर निष्ठुरता क्यों ? यदि यह अपराधिनी है, तो शिशु कुमार को क्यों भूल गए ? देखो प्यारे, वह सूख कर काला हो गया है। वह सदैव तुम्हारा ही नाम रटा करता है। तुमने स्वयं उसे अपना नाम रटाया था।" वे भी रो उठे। अन्त में उन्होंने कहा—"प्रिये, धीरज धरो। मेरे कलेजे की आग देखो। मैं जीवन्मृत हूँ। मैं कब का मर चुका हूँ। सरकारी खातों में मेरी मृत्यु-तिथि दर्ज है। पर जो वास्तव में मर गया है, उस नाम में मैं जीवित हूँ। उसका नाम मेरा नाम है, उसका पद मेरा पद है, उसकी स्त्री मेरी स्त्री है। ओह ! वह मुझे घृणा करती है, और मैं उसे। हम दोनों हत्या के अभियुक्त हैं। फाँसी की रस्सी हम दोनों की गर्दनों के चारों ओर पड़ी है, ज्योंही हमने यह भेद खोला, अपना पूर्व नाम जाना कि उसका फन्दा कस दिया गया। उसी दिन यह अधम देह प्राणों से रहित हो जायगी।"

मैंने यह भेद समझा ही नहीं। मैं अवाक रह गई। पर जो कुछ सुनना था, सभी सुना। मैंने कहा—"मैं अधिकारियों से कहूँगी, क़ानून से लड़ूँगी।" उन्होंने कहा—"सभी तरह मेरे प्राण जायँगे। मेरे प्राण लेकर तुम क्या करोगी ? क्या इसीलिए यहाँ आई हो ?"

मैं क्या करती ? मैं मूर्च्छित हो गई। उन्होंने धीरे-धीरे कहा—"मेरे पास बहुत धन हो गया है। चाहे जितना ले जाओ। शिशु कुमार को पढ़ाओ और अपने सधवा होने की बात भूल जाओ। मैं यदि मर सकता तो तभी मरता जब वीर की तरह मरने का संयोग आया था। अब इस तरह जीने के बाद, ज्यों-ज्यों पाप और कायरता शरीर में घुसती है, त्यों-त्यों मैं मरने से भय खाता हूँ। प्रिये, तुमने बहुत सहन किया है, और भी सहन करो। मुझे तब तक जीने दो, जब तक जी सकता हूँ। ग्लानि और अनुताप को मैं सहन कर गया हूँ। इससे अब ज़्यादा कष्ट और कौन होगा ?"

मैंने कहा—"जिस मूल्य में तुम जीवित रहो, वह मैं

दूँगी। मैं भयभीत नहीं, शोकाकुल भी नहीं। दस वर्ष पूर्व मैं भीरु स्त्री थी, पर तुम्हारे वियोग और जीवन की कठिनाइयों ने मुझे पुरुष सा साहसी बना दिया है। अब मैं उन तमाम अतीत स्मृतियों को भूल जाऊँगी, जिनके सहारे जी रही थी। जब तुम जीवन्मृत हो तो मैं भी जीवन्मृत हुई। वह सब कुछ पिछले जन्म की बातें हुईं। वह गङ्गा का उपकूल, वह जीवन के उल्लासपूर्ण दिवस, उस दिन वन-वीथिका में तुम्हारा खो जाना, वह शिशु कुमार के जन्म से प्रथम का प्यार, उसके जन्म-दिन का वह दुर्लभ उपहार—आह! वह सब मेरे पूर्व-जन्म की बातें हैं। मैं उस जन्म में पुत्रवती, सौभाग्य-सिन्दूर की अधिकारिणी, प्रेम और दुलार की पुतली थी। आज उन्हें भूलना भी कठिन और याद रखना भी दुर्लभ! पर भूलूँ तो क्या और याद रक्खूँ तो क्या! जिसे पा नहीं सकती उसकी कल्पना करने से ही क्या लाभ?"

मेरे इस असाधारण साहस का यही फल हुआ। मैंने उन्हें विदा किया, इस जन्म के लिए। मेरा उनका शरीर-सम्बन्ध विच्छेद हुआ। उन्होंने मुझे बहुत-कुछ देना चाहा, पर मैंने स्वीकार न किया। मैंने कहा—"तुमने अपने सुख के दिनों में जो शिशु कुमार मुझे दिया है, वही मेरे लिए बहुत है। मैं उसीके सहारे अवशिष्ट आयु काट दूँगी। तुम—तुम—जाओ और पाप, छल, पाखण्ड, विश्वासघात में जीवन बिताओ। मेरे जीव-न्मृत स्वामी, तुम्हें धिक्कार है! मैं तुम्हारा धन छू नहीं सकती, मैं पसीना बेच कर अपना और शिशु कुमार का पेट भरूँगी।" मैं चली आई।

स्त्रियों के आदर्श

[श्री० अनूप शर्मा जी, बी० ए०]

सिंह पै सवार करवाल लिए सङ्गर में,
चण्डिका प्रचण्ड इनके हो खड़ी दहने।
हाथों में पड़ीं जो चार-चार हथकड़ियाँ तो—
आठ-आठ बेड़ियाँ पगों में बनें गहने॥
दिव्य देवताएँ मातृ-शक्ति की यही हैं—
आज आईं युद्ध-क्षेत्र में उतर माएँ बहनें।
घोषणा हुई है, हिन्द-माता की दशा को देख,
नारियाँ स्वराज्य लें, मरद चूड़ी पहनें!!

अब न रुकेंगी बिना जीते भारतीय जङ्ग,
आगे ही बढ़ेंगी पीछे पग न हटाएँगी।
दो-दो हाथ करके दिखाएँगी स्ववीरता को,
वीर अम्बिकाएँ वीर बहनें कहाएँगी॥
बैरियों के बल का दिवाला निकलेगा, यह—
रण में उदञ्चितदृगी हो झुक जाएँगी।
ग़ज़ब करेंगी घोर सङ्गर लड़ेंगी अब,
मरद बनेंगी मरदानगी दिखाएँगी॥

यह इन्दिराएँ हैं, स्वदेश-प्रेम-मन्दिरों की,
फिर इनकी क्यों न आरती उतारी जायँ?
यह शक्तियुक्त ऐसे साज से सुसज्जित हों;
इनसे अधीन दीन अबला उबारी जायँ॥
इनका महत्व इस भाँति वसुधा में बढ़े—
इन पर कोटि शारदाएँ सदा वारी जायँ।
भाग्यशालिनी हैं इन ही के भेष-भूषा पर
भूरि-भूरि भाव से भवानी बलिहारी जायँ!!

[श्री० भोलानाथ दास जी, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

विवाहोच्छेद (Divorce)
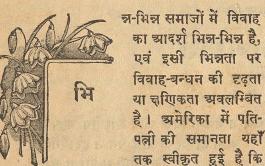
भिन्न-भिन्न समाजों में विवाह का आदर्श भिन्न-भिन्न है, एवं इसी भिन्नता पर विवाह-बन्धन की दृढ़ता या क्षणिकता अवलम्बित है। अमेरिका में पति-पत्नी की समानता यहाँ तक स्वीकृत हुई है कि वहाँ अब स्त्रियों से विवाह में यह प्रतिज्ञा नहीं कराई जाती है कि मैं आप (पति) की आज्ञा मानूँगी। सुतराम् हाल में वहाँ विवाह-मन्त्रों से स्त्री द्वारा कहे जाने वाले 'I shall obey' शब्दों को उठा दिया गया है। वहाँ स्त्रियाँ सचमुच पुरोगामिनी हैं। यूरोप आदि अन्य पाश्चात्य देशों में भी वे [यद्यपि अमेरिका जैसी पुरुषों से आगे वे नहीं बढ़ी हैं, तथापि] सहगामिनी अवश्य हैं। उन्हें बहुत से समानाधिकार प्राप्त हैं, किन्तु भारत आदि पूर्वीय देशों में वे अनुगामिनी हैं और उनका बहुत सुख-दुख पति-पुत्र आदि के ही ऊपर अवलम्बित रहता है। यह सब दाम्पत्य जीवन के भिन्न-भिन्न आदर्श हैं, और जिनमें जितनी ही अधिक वैयक्तिक स्वतन्त्रता है, उनमें उतनी ही विवाहोच्छेद की मात्रा अधिक है।

फिर विवाह के भेदों पर भी इसकी स्थिरता या चञ्चलता बहुत-कुछ अवलम्बित है। असभ्य जातियों में, जहाँ बल या छल से ही कुछ समय के लिए स्त्री-पुरुष दाम्पत्य सम्बन्ध में आबद्ध हो जाते हैं, अथवा जैसे मुसलमानी समाज में कुछ दिन या महीनों के लिए ही विवाह कर लिया जाता है [जिसे 'मूता' विवाह कहते हैं] उसके लिए विवाहोच्छेद की कोई सीमा नहीं है, स्वभावतः ऐसे विवाह अनिश्चित या निश्चित समय पर टूट जाते हैं। फिर जिन दार्शनिकों के विचार में विवाह-बन्धन की अमरता का कोई प्रयोजन ही नहीं है, जो स्वतन्त्र प्रेम (Free love) के पक्षपाती हैं, उनके लिए भी पति-पत्नी का पृथक होना स्वभावसिद्ध और इच्छानुकूल है। बिना किसी कारण के पति-पत्नी सदा के लिए वियुक्त हो सकते हैं। ये दार्शनिक इच्छात्याग के पक्षपाती हैं। यदि इन असभ्य और आदर्श समाजों की बात छोड़ भी दें तो सभ्य समाज में भी इसके दो मुख्य आदर्श देख पड़ते हैं। एक तो इसे ठीकेदारी (Contract) समझना और दूसरा धार्मिक कृत्य। सम्पूर्ण पाश्चात्य जगत और मुसलमानी समाज विवाह को एक ठीकेदारी ही समझता है; किन्तु हिन्दू-धर्म के अनुसार यह धार्मिक कृत्य है। इसलिए स्पष्ट है कि पहले आदर्श के अनुसार इसे तोड़ना सहज

है, किन्तु दूसरे के अनुसार कठिन है। फिर भी विवाह-बन्धन दो आत्माओं का ऐसा उच्चतम और स्वाभाविक सम्बन्ध है कि असभ्यों में भी इसकी प्रतिष्ठा अन्यान्य सम्बन्धों से प्रबल है। ठीकेदारी समझने वाले पाश्चात्य जगत ने भी आज तक इच्छात्याग के सिद्धान्त को स्वीकृत नहीं किया है। सुतराम् उन ईसाई देशों में विवाह मुख्यतया दो कारणों से टूटता है; एक तो पति की निर्दयता या दुर्व्यवहार आदि से अथवा स्त्री के व्यभिचार से। इसके अतिरिक्त वर्जित सम्बन्ध आदि की भी कई क़ानूनी बाधाएँ हैं। मुसलमानी समाज में इसकी उच्छृङ्खलता सबसे अधिक है। वहाँ 'मूता' विवाह तो अनायास ही टूटता रहता है, निश्चित विवाह में भी पति को इतनी स्वतन्त्रता है कि वह इच्छा मात्र से केवल तीन बार "तलाक़-तलाक़" कह कर विवाह-बन्धन का पूर्ण रीति से अन्त कर सकता है। कारण रहने पर तो उसके लिए विवाहोच्छेद का द्वार खुला हुआ है ही! तिस पर तुर्रा यह है कि स्त्री किसी दशा में विवाहोच्छेद की अधिकारिणी नहीं हो सकती है!! पति से वह विवाहोच्छेद का अधिकार दाम देकर ख़रीद सकती है, किन्तु स्वयं विवाह को नहीं तोड़ सकती चाहे पति उसके साथ कैसा ही दुर्व्यवहार क्यों न करता हो। इसलिए मुसलमान पत्नियों की स्थिति इस विषय में अत्यन्त दासतापूर्ण और अनिश्चित है। और तो और, मुसलमानी क़ानून की यह एक विचित्र व्यवस्था है कि यदि किसी कारण से पति-पत्नी एक बार वियुक्त हो जायँ तो उनका पुनर्बिवाह तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि स्त्री फिर किसी दूसरे पुरुष से विवाहिता होकर त्यक्ता न हो जाय। किन्तु इतना होने पर भी एक तो 'मूता' विवाह की प्रथा सब मुसलमानों में प्रचलित नहीं है, दूसरी बात यह है कि पुरुष की उच्छृङ्खलता निवारण के लिए "देन-महर" चुका देने की विवशता है। अभिप्राय यह है कि जिन-जिन समाजों में विवाहोच्छेद का विधान है, उनमें इसको पूर्ण उच्छृङ्खल होने से रोकने का भी कुछ न कुछ विधान अवश्य है।

हमारे शास्त्रकार विवाह की दृढ़ता के विधान में सबसे आगे हैं। वे इतने दूर आगे बढ़ गए हैं कि एक ओर जहाँ पुरुषों के लिए प्रायः अबाधित बहु-विवाह की आज्ञा प्रदान करते हैं, वहाँ दूसरी ओर स्त्रियों के लिए पति के मर जाने पर भी दूसरे विवाह की आज्ञा प्रायः नहीं देते!! वर्तमान हिन्दू-लॉ के अनुसार यद्यपि स्त्री को पति के मर जाने पर पुनर्विवाह का अधिकार है, तथापि पति के जीते जी किसी स्त्री को दूसरे विवाह की आज्ञा नहीं है (17 Mad. 235)। ऐसा करना भारतीय दण्ड-विधान (Indian Penal Code) की ३९४ वीं धारा के अनुसार दण्डनीय भी निश्चित हुआ है। सुतराम् पुरुषों के लिए जहाँ विवाहोच्छेद की आवश्यकता नहीं है, वहाँ स्त्रियों के लिए यह व्यर्थ हो गया है। क्योंकि स्त्री यदि किसी प्रकार अच्छी नहीं है तो पुरुष पहिली स्त्री को बिना छोड़े भी दूसरा-तीसरा विवाह कर सकता है और पुरुष चाहे कैसा ही बुरा क्यों न हो, स्त्री उसके भार्यापन से छूट नहीं सकती! अधिक से अधिक वह उससे अलग रह सकती है। अतः जबकि एक पति के जीवन में स्त्री का दूसरा विवाह हो ही नहीं सकता तो वह विवाहोच्छेद लेकर क्या करेगी? सुतराम् हिन्दू-लॉ में भी विषमता का अभाव नहीं है।

किन्तु विवाह दो प्रकार से टूट सकता है, एक तो कुछ अंशों में और दूसरा पूर्ण रीति से। पहले को अङ्गरेज़ी में Judicial seperation या विवाह-विच्छेद और दूसरे को Divorce या बिवाहोच्छेद कहते हैं। विवाह-विच्छेद में पति पत्नी का सम्बन्ध नहीं टूटता, किन्तु वे एक-दूसरे से पृथक् हो जाते हैं। यह दो प्रकार का है, एक तो साध्य और दूसरा असाध्य। जिन-जिन अवस्थाओं में पति पत्नी को पृथक् रहने का अधिकार है, वे साध्य हैं अर्थात् इन कारणों के दूर होने पर वे फिर से एकत्र होकर पूर्ववत् अपना दाम्पत्य

जीवन बिता सकते हैं, किन्तु असाध्य विच्छेद वह है जिसमें पति-पत्नी फिर किसी प्रकार संयुक्त नहीं हो सकते। साथ ही साथ वह पूर्ण त्याग भी नहीं कहा जा सकता कि स्त्री दूसरा विवाह कर सके, क्योंकि स्वभावतः हिन्दू-विवाह अटूट होता है। इसके प्रतिकूल विवाहोच्छेद विवाह-बन्धन का पूर्ण अन्त है। इसमें पति-पत्नी को फिर एक-दूसरे से कुछ सम्बन्ध नहीं रहता है। वे अपनी इच्छानुसार अपना-अपना पुनर्विवाह दूसरी जगह कर सकते हैं। इस प्रकार का पूर्ण त्याग सच पूछिए तो हिन्दू-लॉ में नहीं है, फिर भी एक-दो अवस्थाओं में ऐसा होता ही है, पूर्ण अभाव नहीं है। हम साध्य विच्छेद का वर्णन कर आए हैं, किन्तु यहाँ समष्टि रूप से उसकी भी संक्षेप में पुनरोक्ति की जावेगी, पश्चात् असाध्य विच्छेद और विवाहोच्छेद की चर्चा करेंगे।

साध्य विवाह-विच्छेद

हमने देखा है कि स्त्री यदि व्यभिचारिणी है अथवा वेश्या बन गई है और उससे जातिच्युत भी हो गई है या विधर्मी बन गई है, तो हिन्दू-विवाह नहीं टूटता। पति इन स्त्रियों का भरण-पोषण बन्द करके और अन्य विवाह करके विवाह-विच्छेद कर सकता है। उसी प्रकार पति यदि गरमी, सूज़ाक आदि दुष्ट रोगों से पीड़ित हो, उसके साथ भारी दुर्व्यवहार करता हो, बड़ा ही व्यभिचारी बन गया हो अथवा विधर्मी या जातिच्युत हो गया हो, तो स्त्री को उससे पृथक् रहने का अधिकार है अर्थात इन अवस्थाओं में अधिक से अधिक विवाह-विच्छेद ही हो सकता है, विवाहोच्छेद नहीं। वह भी कुछ ऐसा विच्छेद नहीं होता कि पुनर्वार उनमें दाम्पत्य भाव स्थापित ही न हो सके। पति या पत्नी यदि सुधर जाते हैं या सुधार लिए जाते हैं तो वे अनायास फिर से एकत्र हो सकते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन अवस्थाओं में पति पत्नी को ईसाई या मुसलमानी समाजों में पूर्ण विवाहोच्छेद का अधिकार है और बहुत से विवाहोच्छेद वहाँ इन कारणों से होते भी रहते हैं। विवाहोच्छेद की स्वतन्त्रता के कारण उन समाजों में बहुधा इनसे भी अल्प कारणों से, यथा क्षणिक मतभेद या वैमनस्य से पति-पत्नी सदा के लिए वियुक्त हो जाते हैं। हिन्दू-लॉ की यह व्यवस्था अत्यन्त ही विद्वत्तापूर्ण है कि इन अवस्थाओं में पति-पत्नी को केवल पृथक् रहने का अधिकार है। इसमें उन्हें सुधरने का पर्याप्त अवसर प्राप्त है, और ऐसा बहुधा देखा भी जाता है कि अनेक उजड़े हुए घर फिर से बस जाते हैं। मनुष्य अपनी बहुत सी त्रुटियों को सुधार सकता है, अनेक भेद-भावों को समय पाकर भूल सकता है, और भूलों को स्वीकार कर सकता है। ऐसी स्थिति में पति-पत्नी को सामान्य-सामान्य बातों के लिए यदि इस प्रकार वियुक्त होने की स्वतन्त्रता रहेगी तो दाम्पत्य सम्बन्ध अत्यन्त ही लचर, गार्हस्थ्य जीवन परम अशान्त एवं परिवार के शिशुओं का पालन प्रायः असम्भव हो जायगा। पाश्चात्य देशों को आज इसी उच्छृङ्खलता के कारण इस समस्या का सामना करना पड़ रहा है। अस्तु, हमारे यहाँ विवाह को जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध माना जाता है और यह संस्कार जहाँ तक सुदृढ़ रहे, वहाँ तक अच्छा है।

असाध्य विवाह-विच्छेद

ऊपर जिन-जिन अवस्थाओं में विवाह का विच्छेद होता है, वे साध्य हैं, परन्तु ऐसी भी कुछ अवस्थाएँ हैं जिनमें वियुक्त पति-पत्नी का पुनर्वार संयुक्त होना सर्वथा अवैध होता है, अतः ये असाध्य विवाह-विच्छेद हैं। यह निम्न-लिखित चार दशाओं में होता है :—

(१) वर्जित सम्बन्ध में
(२) असवर्णता के दोष में
(३) विवाह विधियों के पालने में, और
(४) बल या छल के प्रयोग में।

यदि इनमें से कोई दोष विवाह में पाया जाय तो

बम्बई सेवा-सदन के अनाथ-भवन की कुछ स्त्रियाँ तथा बच्चे
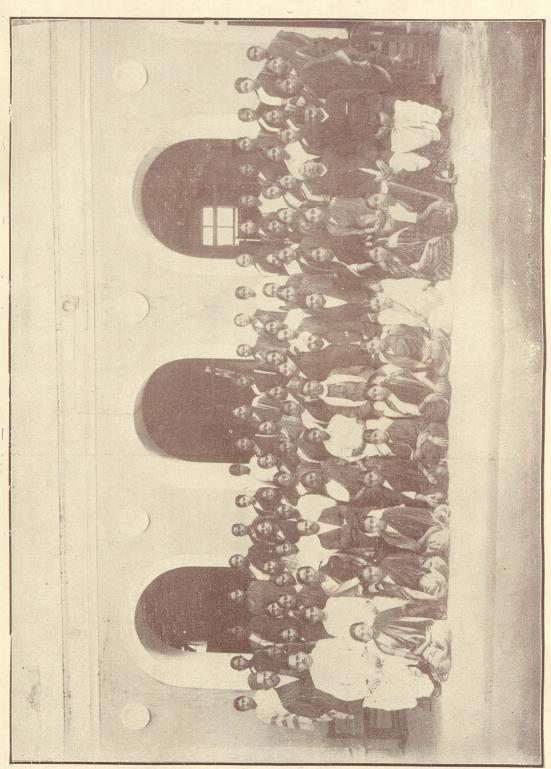
बम्बई सेवा-सदन के मराठी ट्रेनिङ्ग क्लास का अध्यापन-विभाग और छात्राएँ

वह विवाह जड़-मूल से अशुद्ध समझा जाता है, किन्तु चौथी आपत्ति में वह एकबारगी व्यर्थ (Void) नहीं होता, हाँ क्षतिग्रस्त पक्ष चाहे तो उसे व्यर्थ बना सकता है, सुतराम् यह क्षतिग्रस्त पक्ष की इच्छा पर व्यर्थ होने योग्य (Voidable) होता है, किन्तु पहिली तीन आपत्तियों में विवाह सर्वथा अशुद्ध और व्यर्थ हो जाता है। इन दशाओं में पति को शास्त्रीय प्रायश्चित्त करना पड़ता है, और कभी-कभी कन्या को भी ऐसा ही करना पड़ता है, किन्तु ऐसा करने पर भी वे एक दूसरे से दाम्पत्य जीवन की आशा नहीं कर सकते। उन्हें आजीवन एक दूसरे से वियुक्त रहना पड़ता है, यदि वे दोनों संयुक्त हों तो यह वैसा ही अवैध होगा जैसा कि व्यभिचार ; और इनसे उत्पन्न सन्तान भी वैसी ही दूषित (Illegitimate) होगी जैसी कि व्यभिचार से उत्पन्न सन्तान होती है। कहने का अभिप्राय यह है कि इन अवस्थाओं में पति-पत्नी असाध्य रीति से वियुक्त होते हैं। इस प्रकार के विवाद प्रायः अब तक न्यायालयों में नहीं आए हैं, किन्तु शास्त्रों की व्यवस्था के अनुसार सर गुरुदास बनर्जी ने अपने ग्रन्थ 'Hindu Law of Marriage and Stridhan' में ऐसा ही लिखा है। वे यह भी लिखते हैं कि इन आपत्तियों में यद्यपि विवाह असाध्य रीति से व्यर्थ हो जाता है, तथापि एकदम टूटता नहीं, कम से कम स्त्री के लिए वह वैसा ही दृढ़ रहता है, जैसा कि शुद्ध विवाह, अर्थात् इन अवस्थाओं में भी त्यक्ता स्त्री पुनर्विवाह नहीं कर सकती, पति भी उसके भरण-पोषण के भार से मुक्त नहीं हो सकता। इन अवस्थाओं में यदि अक्षता कन्या का सर्वथा त्याग होता है, तो वह सचमुच बड़ा ही अन्याय है। श्रीयुत बनर्जी इनके त्याग के विषय में लिखते हैं :—

"This is hardly just. Even the virgin widow has one consolation for her lot, that it is due to a cause which no human foresight could prevent, but the condition of a repudiated virgin wife, who is condemned to a life of virtual widowhood for the error of a reckless guardian, is truly pitiable. A far more rational rule, and one not wholely against the spirit of our law, would be to allow remarriage in such cases, where the wife is repudiated before cousumation."

—Banerjee's *Law of Marriage and Stridhan*

अर्थात्—"यह कभी न्याय्य नहीं है। अक्षता विधवा को भी अपने दुर्भाग्य पर सन्तुष्ट होने की यह योग्यता रहती है कि किसी की मृत्यु को कोई मानवी शक्ति नहीं रोक सकती, किन्तु ये त्यक्ता अक्षता पत्नी, जिनको अपने उद्धत अभिभावकों की भूल से आजन्म वैधव्य की दावाग्नि में वरवश तपना पड़ता है, अवश्य ही दयनीय हैं। इससे कहीं अच्छी, न्यायसङ्गत और हमारे क़ानून के एकान्त प्रतिकूल भी नहीं—यह विधि होगी कि इन पत्नियों में त्याग यदि खण्डिता होने के पूर्व होता है, तो उन्हें पुनर्विवाह की आज्ञा मिलनी चाहिए।"

किन्तु हमारे क़ानून की यद्यपि ऐसी विषम व्यवस्था है, तथापि हमारा व्यवहार वैसा नहीं है। इन अवस्थाओं में शायद ही कोई विवाह टूटता है। हमने देखा है, त्याज्य सम्बन्ध के विषय में शास्त्रकारों और प्रान्तीय तथा भिन्न-भिन्न वर्णों के सामाजिक व्यवहारों में कितनी भिन्नता है। उसी प्रकार विवाह-विधियों की भी दशा है। फिर जहाँ तक विदित होता है, डॉक्टर (अब सर) हरिसिंह गौड़ महाशय के 'सिविल मैरेज बिल' के पास होने से असवर्णता की भी कुछ बाधा नहीं रही। इसलिए प्रथम तीन आपत्तियों में विवाह-विच्छेद का कोई भय नहीं है। यद्यपि क़ानून की वैसी भयानक व्यवस्था है, तथापि वह पुस्तक की अक्षर सम्पत्ति मात्र है। रह गया बल अथवा छल का प्रयोग ; इसमें प्राचीन शास्त्रकारों की सम्मति के अनुसार

विवाह अशुद्ध या व्यर्थ नहीं होता है, प्रत्युत राक्षस और पैशाच विवाह इसी के उदाहरण हैं, किन्तु वर्तमान भारतीय व्यवहार-नीति (Indian Contract Act) और दण्ड-विधान (Indian Penal Code) की धाराओं से ये विवाह अवैध हैं तथा क्षतिग्रस्त पक्ष इन्हें तोड़ भी सकता है, फिर भी यह उसकी इच्छा पर अवलम्बित है। यदि अन्य कोई आपत्ति नहीं है, अथवा पति-पत्नी यदि सम्मत हैं तो उनके दाम्पत्य जीवन में कोई बाधा नहीं है। हाँ, इतनी आपत्ति अवश्य है कि इस प्रकार का विवाह यदि यथार्थ में दोषावह हो और कन्यापक्ष से तोड़ भी दिया जाय तो वर्त्तमान क़ानूनी व्यवस्था के अनुसार, उसका सारा परिश्रम व्यर्थ होता है, क्योंकि कन्या का विवाह दूसरी जगह नहीं हो सकता। इसलिए इस अवस्था में अथवा अन्य उपरोक्त अवस्थाओं में यदि विवाह व्यर्थ और अशुद्ध हो जावे, और न्यायालय से उसे तोड़वा दिया जाय तो कम से कम अक्षता कन्या का पुनर्विवाह अवश्य होना चाहिए, जैसा कि सर बनर्जी कहते हैं, अन्यथा जातिभाइयों की स्वीकृति अथवा वर-कन्या की सम्मति से विवाह को निर्दोष मानना ही ठीक है।

चित्तौड़ के क़िले में

[आचार्य श्री० चतुरसेन जी शास्त्री]

सूरज का मुँह लाल हो गया था, वह धरती में धँस रहा था। आसमान आँखों में आँसू भरे खड़ा था, कोहरा और अन्धकार बढ़े चले आते थे। मैं महाराना कुम्भा के कीर्ति-स्तम्भ की सब से ऊपर की चोटी पर खड़ा हुआ यह सब देख रहा था !!

ज़मीन से मीलों ऊँची हवा में, राजपूती विध्वंस की हाय भर रही थी। मरे हुए पशुओं की हड्डियों के ढेर की तरह पद्मिनी का महल ढहा पड़ा था, मीरा का मन्दिर कङ्गाल ब्राह्मण की तरह पैसा-पैसा भीख माँग रहा था; जयमल और फ़तहसिंह के महलों के मुर्दे दीदे दिखा रहे थे। इन सब के बीच में वर्त्तमान महाराज का बनाया झकाझक सफ़ेद महल ऐसा मालूम होता था—जैसा गोबर के ढेर में ओला पड़ा हो; जैसे विधवा ने बिछुए पहन रक्खे हों। मैंने एक हाय की और कहा—हाय ! इन निर्लज्ज राजपूतों का बीज नाश क्यों न हुआ !!! इनकी माँ बाँझ क्यों न हो गई !!!

मैं पीछे लौटा। अँधेरा हो गया था। जौहरी बाज़ार में सिर नीचा किए जा रहा था। एक भी मनुष्य न था। दूर तक दीपक न था—दूकानों की जगह—पत्थरों के ढेर और जवाहरात की जगह अड़ूसे के पेड़, बस यही, वह जौहरी बाज़ार था। काले-काले वृक्ष मृत वीरों के भूत मालूम पड़ते थे। मुझसे न रहा गया, मैं एक पत्थर पर बैठ कर अच्छी तरह रोया।

एक बकरियों का बड़ा सा रेवड़ सामने होकर गुज़रा। सड़क की धूल आसमान तक चढ़ गई। क्षण भर को मुझे एक मज़ा आया। मैंने सोचा, इस धरती पर इसी तरह वीरों की सेना चलती होगी। मैं उस अँधेरे में बड़े चाव से उन बकरियों को आँख गाड़-गाड़ कर देखने लगा। मेरे मन में आया कि दौड़ कर एक बकरी के गले से लिपट जाऊँ। और पूछूँ—हे राजपूती जीव ! तू आज बकरी कैसे बन गया ! अभागे !! बदनसीब !!!

सेवा-सदन

[कुमारी बी० ए० इञ्जीनियर, एम० ए०, एल्-एल्० बी०, जे० पी०]

सेवा-सदन की स्थापना हुए आज बीस वर्ष से अधिक बीत गए। उस समय समाज-सुधार के विषय में लोगों के कैसे विचार थे, इसका अनुमान लगाना भी आजकल ज़रा मुश्किल है। यद्यपि आजकल भी समाज-सुधार का कुछ कम विरोध नहीं होता, तथापि आजकल भारत-भूमि पर समाज-सुधार का प्राणप्रद समीर पहले की अपेक्षा कहीं अधिक निर्बाध गति से बह रहा है। आज भारत की देवियाँ पारिवारिक जीवन से लेकर स्वाधीनता के युद्ध-क्षेत्र तक सर्वत्र एक अपूर्व जागरुकता के साथ अपने कर्तव्य-पालन में अग्रसर हो रही हैं। उनका कार्य-कलाप आज केवल गृह के मनोरम प्राङ्गण तक परिमित नहीं है, उनके उत्साह और जागरण की क्रान्तिकारी लहरें, जेल के भीषण प्राचीरों तक से टकरा कर भारत-माता के दासत्व की श्रृङ्खला को चूर-चूर कर देने के लिए व्याकुल हो उठी हैं। जिनके सुकुमार और कोमल हाथों में सुन्दर चूड़ियाँ शोभती हैं, आज वे अपने उन्हीं हाथों में कठोर लौह-श्रृङ्खला धारण करने का पराक्रम दिखा रही हैं। यह एक ऐसा स्वर्गीय दृश्य है, जिसे देख कर एक बार मुर्दों में भी जान आ जायगी। परन्तु आज की अवस्था और आज से बीस वर्ष पहले की अवस्था में ज़मीन और आसमान का अन्तर था। आज जिन सुधारों की आवश्यकता और उपयोगिता को प्रत्येक व्यक्ति मुक्त कण्ठ से स्वीकार करता है, उन्हीं सुधारों का उस ज़माने में घोर विरोध किया जाता था। उस समय जन-साधारण में समाज-सेवा की चर्चा सुनना तो दूर रहा, ऐसे व्यक्ति भी विरले ही थे जो समाज-सेवा का नाम भी जानते हों। ऐसे ही समय में सेवा-सदन की स्थापना हुई थी। इसका उद्देश्य था स्त्रियों में समाज-सेवा की भावना का प्रचार करना तथा उन्हें इस कार्य के करने योग्य बनाना। इस संस्था को खोल कर इसके स्वनाम-धन्य संस्थापक श्रीयुत मालाबारी तथा उनके अनन्य सहायक श्रीयुत दयाराम गीदूमल जी ने सेवा-भाव का जो बीज बोया था, वह आज हरे-भरे पौधे के रूप में लहलहा रहा है। आज सेवा-सदन के समान विशुद्ध सेवा-भाव से कार्य करने वाली अनेक संस्थाएँ देश में खुल गई हैं और दिनोंदिन उनकी संख्या बढ़ती ही जा रही है। भारतीय स्त्रियों में इस समय जो अभूतपूर्व जाग्रति दिखाई दे रही है, उसके लिए क्षेत्र प्रस्तुत करने में इन संस्थाओं ने महत्वपूर्ण भाग लिया है। ऐसी सभी संस्थाओं में सेवा-सदन ही सबसे पहिली संस्था है और आज भी कई दृष्टियों से भारत में इसका स्थान अद्वितीय है।

इसके संस्थापक श्रीयुत मालाबारी स्त्री-शिक्षा के बड़े उत्साही समर्थक थे। स्त्रियों को शिक्षा देकर उन्हें स्वाधीनता प्रदान करने की इच्छा ही एक मात्र वह शक्ति थी, जो उनके जीवन में स्फूर्ति का सञ्चार करती थी। देश में भ्रमण करके भारतीय विधवाओं का दुःख-मय जीवन और उनकी कारुणिक दशा उन्होंने अपनी आँखों से देखी थी और तभी से उन्होंने इनकी सेवा करना अपने जीवन का प्रधान कार्य बना लिया था। ऐसे कामों में जन-समुदाय की कट्टरता और अनुदारता के कारण स्वभावतः अनेक विघ्न-बाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं, यही बात श्रीयुत मालाबारी के साथ भी हुई। उस समय वे स्त्रियों का सहवास-वय बढ़ा कर १२ वर्ष कराने का आन्दोलन कर रहे थे। उनके कार्य का घोर विरोध किया गया, परन्तु मालाबारी महोदय विघ्न-बाधाओं से विचलित होने वाले व्यक्ति नहीं थे। अपरिवर्तनवादियों के विरोध करने पर भी सन् १८९१ ई० में लड़कियों का सहवास-वय बढ़ा कर १२ वर्ष कर दिया गया। मालाबारी जी के हृदय में स्त्री-जाति के प्रति अगाध सहानुभूति थी। स्त्रियाँ ही राष्ट्र की सच्ची निर्माताएँ हैं, इस बात को उन्होंने बहुत अच्छी तरह समझा था और समझ कर इसे अपनी जीवन-क्रिया का एक अङ्ग बना डाला था। अपने जीवन में समाज-सुधार सम्बन्धी अनेक कार्य उन्होंने किए, परन्तु उन सभी कार्यों में स्त्री-

सेवा-सदन की छात्राएँ भोजन बनाना सीख रही हैं।

जाति की सेवा ही प्रमुख थी। सौभाग्यवश इस कार्य में श्रीयुत दयाराम गीदूमल जी, श्रीमती रमाबाई राणडे, श्रीमती जमनाबाई सकाई और दिलशेद बेगम नवाब मिर्ज़ा के समान सुयोग्य और उत्साही महिलाओं और महानुभावों से उन्हें प्रचुर सहायता मिली। अन्य कारणों में इन लोगों की सहायता और सहानुभूति भी एक कारण थी, जिससे श्रीयुत मालाबारी को अपने कार्यों में इतनी सफलता मिल सकी।

सेवा-सदन की स्थापना प्रधानतः इस उद्देश्य से हुई थी कि अमीर घरों की स्त्रियों को ग़रीब स्त्रियों के सम्पर्क में लाया जाय और इस प्रकार धनी महिलाओं में अपनी ग़रीब बहिनों की सेवा करने का भाव भरा जाय। इस काम में सेवा-सदन को काफ़ी सफलता मिली है। सेवा-सदन की एक शाखा की स्थापना पहले-पहल सन् १९०९ ई० में पूना में हुई थी। तब से पिछले बीस वर्षों में देश में इस ढङ्ग की अनेक संस्थाएँ खुल गई हैं, और वे सभी स्त्री-शिक्षा और समाज-सेवा के क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य कर रही हैं। ऐसी संस्थाओं में बम्बई के सेवा-सदन का एक प्रमुख स्थान है, क्योंकि इस संस्था ने कई बातों में मार्ग-दर्शक का काम किया है। इस लेख द्वारा इसी संस्था का परिचय मैं 'चाँद' के पाठकों को देना चाहती हूँ।

बम्बई के सेवा-सदन का कार्यक्षेत्र बहुत विस्तृत है। यह संस्था भिन्न-भिन्न प्रकार के कई कार्य कर रही है। परन्तु इन सभी कार्यों को मुख्यतः तीन विभागों में बाँट सकते हैं—शिक्षा-विभाग, शिल्प-विभाग तथा समाज-सेवा और चिकित्सा-विभाग। शिक्षा-विभाग के दो अङ्ग हैं—गृह-विद्यालय और नॉर्मल क्लास।

गृह-विद्यालय

(१) गृह विद्यालय (Home Educational Class) प्रधानतः ऐसी बड़ी उम्र की महिलाओं के लिए है, जिनका विवाह हो गया हो अथवा जो अन्य किसी कारण से साधारण स्कूलों में नहीं पढ़ सकती हों। इसीलिए इस विद्यालय का समय भी ऐसा रक्खा गया है, जो ऐसी महिलाओं के लिए सुविधाजनक हो, अर्थात् ११ बजे से ४ बजे तक। इसमें देशी भाषाओं में से मराठी, गुजराती और उर्दू पढ़ाई जाती है तथा अङ्गरेज़ी, इतिहास, भूगोल और गणित का साधारण ज्ञान कराया जाता है। इस विद्यालय की जो सब से बड़ी विशेषता है

सेवा-सदन की छात्राएँ सिलाई का काम सीख रही हैं।

वह है घरेलू काम-धन्धों तथा अन्य उपयोगी कलाओं की शिक्षा। यहाँ सिलाई और क़सीदा, कपड़ा काटना तथा सीना, भोजन बनाना, कपड़े धोना और उन पर कलफ़ तथा लोहा करना, चित्रकारी तथा सङ्गीत आदि उपयोगी घरेलू शिल्प के अतिरिक्त प्रारम्भिक चिकित्सा, रोगियों की सेवा करना तथा स्वास्थ्य और सफ़ाई आदि वैज्ञानिक व्यवसायों की भी शिक्षा दी जाती है। विद्यार्थियों को इनमें से अपनी रुचि के अनुकूल विषय चुन लेने की स्वतन्त्रता है। इस विद्यालय की शिक्षा का प्रधान उद्देश्य यह है कि स्त्रियों को घर के काम-धन्धों में दक्ष बनाया जाय तथा उनके चरित्र का विकास करके उन्हें अपने नागरिक कर्तव्यों का पालन करने के योग्य बनाया जाय।

नॉर्मल क्लास

(२) नॉर्मल क्लास (Normal Classes) में अध्यापिकाएँ तैयार की जाती हैं तथा इसके द्वारा अध्यापिकाओं की दशा सुधारने का भी प्रबन्ध किया जाता है। आजकल स्त्री-शिक्षा के प्रचार में जो सब से बड़ी कठिनाई पड़ती है, वह सुयोग्य और सच्चरित्र अध्यापिकाओं की कमी है। यह संस्था अपने परिमित क्षेत्र में इस कमी को दूर करने की शक्ति भर चेष्टा कर रही है। यह क्लास सन् १९१४ ई० में खोला गया था। अब यह बढ़ते-बढ़ते एक ट्रेनिङ्ग कॉलेज बन गया है, जिसमें बम्बई के गवर्नमेण्ट महिला ट्रेनिङ्ग कॉलेज के सर्वोच्च कक्षा (Final Diploma Course) तक की शिक्षा दी जाती है। अब तक इस कॉलेज से शिक्षा पाकर कई सौ अध्यापिका निकल चुकी हैं, जिनमें से अधिकांश को बम्बई के म्युनिसिपल स्कूलों में स्थान मिला है। कहना न होगा कि अध्यापिकाओं की शिक्षा के लिए बम्बई में यह एक ही संस्था है। इस संस्था की विशेषता यह है कि यह केवल अध्यापिकाएँ ही नहीं तैयार करती, वरन उन अध्यापिकाओं को इस योग्य भी बना देती है कि वे स्त्रियों की उन्नति और स्त्री-जाति की सेवा सम्बन्धी सब प्रकार के कार्यों में भाग ले सकें। अध्यापिकाओं के मानसिक विकास के लिए समय-समय पर मैजिक लैण्टर्न द्वारा उपयोगी और मनोरञ्जक विषयों पर व्याख्यान देने का भी प्रबन्ध किया जाता है तथा अध्यापिकाओं का दल बना कर उन्हें नगर के महत्वपूर्ण स्थानों को दिखाया जाता है।

सेवा-सदन में कपड़ा धोने का काम सिखाया जा रहा है ।

गृह-विद्यालय और नॉर्मल क्लास दोनों में मिल कर इस समय १४२ स्त्रियाँ शिक्षा पा रही हैं। ये दोनों ही कक्षाएँ बम्बई शिक्षा-विभाग द्वारा स्वीकृत हैं तथा दोनों को गवर्नमेण्ट से सहायता मिलती है।

शिल्प-विभाग

(३) शिल्प-विभाग (Industrial Department) में दस्तकारी की शिक्षा देकर स्त्रियों को इस योग्य बनाने का प्रयत्न किया जाता है कि वे स्वयं अपनी जीविका कमा सकें। आजकल प्रायः ऐसी स्त्रियाँ देखी जाती हैं, जो बहुत ही ग़रीब हैं तथा जिनका पालन-पोषण करने वाला कोई नहीं है। ऐसी स्त्रियाँ प्रायः आत्म-सम्मान खोकर या तो किसी सम्बन्धी के यहाँ रहने लगती हैं और उसके सिर का बोझ बन जाती हैं अथवा भीख माँग कर समाज के सिर पर अपने पालन-पोषण का बोझ लाद देती हैं। ऐसी ही स्त्रियों को स्वावलम्बी बनाने के लिए यह शिल्प-विभाग खोला गया है। इसमें कपड़े काटना और सीना, भोजन बनाना, मोज़े और गुलूबन्द आदि बुनना, कपड़े धोना और उस पर कलफ़ तथा लोहा करना, बेत का काम, बेल-बूटे काढ़ना आदि सिखाया जाता है। इस समय इस विभाग में २२५ से भी कुछ अधिक स्त्रियाँ शिक्षा पा रही हैं। अब तक इसमें से लगभग ३०० स्त्रियाँ शिक्षा पाकर निकल चुकी हैं, जिनमें से लगभग ६० स्त्रियाँ इस समय म्युनिसिपल तथा प्राइवेट स्कूलों में दस्तकारी की अध्यापिका हैं, बहुत सी ख़ानगी तौर पर दस्तकारी का काम सिखा कर अपनी जीविका कमाती हैं, तथा ४० के लगभग नर्स और दाई का काम सीख चुकी हैं। इन कामों के लिए सेवा-सदन को अब तक बम्बई, पूना, हुगली तथा लाहौर की शिक्षा, शिल्प तथा शिशुपालन सम्बन्धी प्रदर्शनियों से तमग़े और प्रशंसा-पत्र मिले हैं।

अनाथ-गृह

(४) अनाथ-गृह (Home for the Homeless Women and Children) में अनाथ स्त्रियों और बच्चों

सेवा-सदन की ड्रॉइङ्ग-क्लास

सेवा-सदन की छात्राएँ ड्रिल (क़वायद) कर रही हैं ।

को रखने का प्रबन्ध है। इस समय ७० स्त्रियों और बच्चों को इस संस्था की ओर से मुफ़्त भोजन-वस्त्र और शिक्षा दी जा रही है। इन लोगों की व्यक्तिगत योग्यता तथा रुचि के अनुसार इन्हें उपरोक्त विभागों में अध्यापिका, नर्स या दस्तकारी-शिक्षक का काम सिखाया जाता है। जिन लोगों में पढ़ने-लिखने की या किसी प्रकार का मानसिक काम करने की योग्यता बिल्कुल नहीं होती उन्हें कोई घरेलू शिल्प सिखाया जाता है। हमारी सामाजिक बुराइयों तथा दरिद्रता के कारण हर साल अधिकाधिक संख्या में स्त्रियाँ और बच्चे इस अनाथ-गृह में शरण
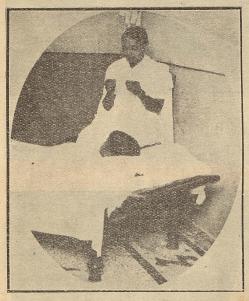
सेवा-सदन में रोगी-परिचर्या (नर्सिङ्ग) की व्यवहारिक शिक्षा दी जा रही है।

लेने के लिए आया करते हैं। परन्तु दुर्भाग्यवश जगह की कमी होने के कारण सेवा-सदन के अधिकारियों को उन्हें वापस लौटा देना पड़ता है। इस समय इस अनाथ-गृह में अधिक से अधिक ७० व्यक्तियों के रहने का स्थान है और वह सब स्थान भरा हुआ है। 'चाँद' के पाठकों को यह जान कर बड़ी प्रसन्नता होगी कि इस अनाथ-गृह में ज़ात-पाँत का बिल्कुल ख़्याल नहीं किया जाता। इस समय इसमें जो ७० स्त्रियाँ और बच्चे हैं, उनमें ५२ हिन्दू, १४ पारसी और ४ मुसलमान हैं।

यह सारी संस्था ही ऐसी है, जहाँ ज़ात-पाँत का कोई विचार नहीं किया जाता। इस समय सेवा-सदन में स्त्रियाँ और बच्चे सब मिल कर क़रीब ४०० व्यक्ति शिक्षा पा रहे हैं, जिनमें से केवल गृह-विद्यालय तथा नॉर्मल क्लास में १८५ हिन्दू, ४७ पारसी, ५ मुसलमान तथा १० क्रिश्चियन हैं। इसी प्रकार अन्य विभागों में भी सभी जातियों, सभी सम्प्रदायों और सभी धर्मों की स्त्रियाँ और बच्चे भरे हुए हैं।

समाज-सेवा और चिकित्सा-विभाग

(५) समाज-सेवा तथा चिकित्सा-विभाग (Social and Medical Department) भी बहुत उपयोगी कार्य कर रहा है। यहाँ शिक्षा पाने वाली नर्सों और दाइयों को साधारणतः एक वर्ष तक इस संस्था की अवैतनिक सेवा करनी पड़ती है। इसके बाद जिनकी इच्छा होती है, उन्हें सेवा-सदन की ओर से वेतन देकर रख लिया जाता है और वे ग़रीब तथा मध्यम श्रेणी के घरों में चिकित्सा करने के लिए भेजी जाती हैं। सेवा-सदन की नर्सें प्रायः बिना फ़ीस लिए ही ग़रीबों की सेवा करती हैं, और यदि कभी कुछ फ़ीस ली भी जाती है तो केवल नाममात्र की। नर्सों और दाइयों की आवश्यकता दिनोंदिन इस तरह बढ़ती चली जा रही है कि अब तो अपेक्षाकृत सम्पन्न घरों से भी दाइयों की माँग आती है और इन सब माँगों को पूरा करना बहुत ही मुश्किल हो जाता है। गर्भिणी तथा प्रसूता स्त्रियों की सेवा और परिचर्या कर सकने योग्य दाइयाँ तैयार करके तथा ग़रीबों से बिना फ़ीस लिए उनके घरों में दाइयाँ भेज कर सेवा-सदन वास्तव में समाज की एक बहुत बड़ी आवश्यकता पूरी कर रहा है। इस आदर्श संस्था की सेवाएँ यहीं तक परिमित नहीं हैं। इसकी परिचारिकाएँ जेलों का निरीक्षण करती हैं, स्कूलों, अनाथालयों और अस्पतालों में जाकर वहाँ के पीड़ितों की शुश्रूषा और सहायता करती हैं, तथा इसी प्रकार के और भी कितनी ही लोक-सेवा के काम करती हैं।

इन बातों से सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यदि इस संस्था के पास और भी अधिक साधन होते तो यह समाज के लिए कितनी अधिक उपयोगी हो सकती। बम्बई के एक आर्क-बिशप ने इसके विषय में कहा है कि यह पूरी संस्था "अत्यन्त

उपयोगी और अपने ढङ्ग की निराली संस्था है।" एक ऐसी उपयोगी और आदर्श संस्था को साधनों की कमी के कारण अपने कार्यों के विस्तार करने का अवसर न मिले, यह वास्तव में बड़े खेद की बात है। यों तो यह संस्था जितनी ही बड़ी तथा उपयोगी है, इसकी आवश्यकताएँ भी उतनी ही बड़ी तथा विविध प्रकार की हैं। परन्तु उनमें दो आवश्यकताएँ ऐसी हैं, जिनकी पूर्ति बहुत ही शीघ्र होनी चाहिए। इसके ट्रेनिङ्ग कॉलेज के साथ एक प्रैक्टिसिङ्ग स्कूल का होना बहुत ही ज़रूरी है। अब तक यहाँ की अध्यापिकाएँ एक म्युनिसिपल स्कूल में जाकर पढ़ाने का अभ्यास किया करती हैं, किन्तु अब इस प्रबन्ध से काम नहीं चल सकेगा। गवर्नमेण्ट ने इस संस्था को सूचना दी है कि तीन वर्षों के अन्दर यहाँ के ट्रेनिङ्ग कॉलेज के लिए एक प्रैक्टिसिङ्ग स्कूल का प्रबन्ध अवश्य हो जाना चाहिए। इस प्रकार का एक स्कूल चलाने के लिए कम से कम ३००) रु० मासिक ख़र्च की आवश्यकता है। इसके अलावे, यदि मकान-किराए आदि का हिसाब छोड़ दिया जाय, क्योंकि सेवा-सदन अपने वर्तमान मकानों में ही किसी तरह एक ऐसे स्कूल का प्रबन्ध कर लेगा, तो भी बेन्च, कुरसियों, डेस्क, ब्लैक-बोर्ड, किन्डर गार्टन के सामान आदि के लिए लगभग ३,०००) रु० की आवश्यकता है। सेवा-सदन के छात्रावास में भी जगह की कमी है तथा अनाथ-गृह में अधिक व्यक्तियों के लिए प्रबन्ध होने की आवश्यकता है। अनाथ-गृह के लिए एक ज़मीन ले ली गई है, परन्तु धनाभाव के कारण उस पर मकान बनवाने का काम रुका हुआ है। इसकी बड़ी शीघ्र आवश्यकता है कि अनाथ-गृह के लिए अधिक स्थान और अधिक द्रव्य का प्रबन्ध किया जाय। इस गृह में शरण लेने आने वाले दीन-हीन बच्चों और दुःखिनी स्त्रियों को निराश करके लौटा देना कितना कठोर और कितना दुःखद कार्य है, इसको वही लोग समझ सकते हैं, जिन्हें कभी अपने हृदय के कोमल भावों को मसल कर ऐसा कठोर कार्य करने के लिए विवश होना पड़ा हो। समाज-सेवा के प्रत्येक हिमायती और स्त्री-शिक्षा के प्रत्येक प्रेमी का यह परम कर्तव्य है कि वह यथाशक्ति इस संस्था की कठिनाइयों को दूर करके देश और समाज की उन्नति के मार्ग को प्रशस्त करे।

निस्सन्देह सेवा-सदन भारतवर्ष में अपने ढङ्ग की अकेली और आदर्श संस्था है। हमारा विश्वास है कि मानव जाति का प्रत्येक प्रेमी इस संस्था की उन्नति के लिए यथाशक्ति प्रयत्न करेगा और ईश्वर से प्रार्थना करेगा कि यह संस्था देश और समाज की सेवा के लिए दिनों-दिन अधिकाधिक उपयोगी और शक्तिमान बन सके।

जिन देवियों अथवा महानुभावों को इस संस्था के साथ किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार करना हो, उन्हें—मन्त्री, सेवा-सदन, गामदेवी, बम्बई नं० ७ के पते से पत्र लिखना चाहिए।

इसी झूठ में—इसी सत्य में—

[प्रो० रामकुमार जी वर्मा, एम० ए०, 'कुमार']

पत्ते कहते थे समीर से अपने हाथ पसार—
"क्यों झकझोर रहे हो हम सब के शरीर सुकुमार?
दे सन्देश रहे हो किसका, हठपूर्वक सौ बार?
यह करते हो प्यार या कि करते हो अत्याचार?

सहते हैं अदृश्य हाथों का ऐसा कठिन प्रहार
किससे जाकर कहें तुम्हारा यह भीषण व्यवहार;"

"यह भीषण व्यवहार नहीं, यह तो है सरस दुलार—
कहाँ रखी है तुम्हें चाहने को मुझ सा सुकुमार?
जग के शब्दों में कहते हैं अरे, इसी को 'प्यार'।
यह आलिङ्गन-भाव, न समझो इसको कठिन प्रहार॥

इसी झूठ में, इसी सत्य में, डूबा है संसार।
जान न पाया हूँ अब तक किसको कहते हैं 'प्यार'॥

मनुष्य का हृदय

["मुक्त"]

धरित्री के वक्षःस्थल पर असाढ़ की पहली बूँदें झर पड़ीं, सुख-दुःख में समान रूप से झर पड़ने वाली स्नेहमयी नारी की आँखों की तरह। मिट्टी के साथ मिल कर उन बूँदों ने दिशाओं में एक तीव्र किन्तु सोंधी सुगन्ध भर दी। मेघ-मेदुर आकाश रूप्सा हो उठा। परियों के देश वाले दैत्यों के समान आकाश में बादल गरज उठे। बीच-बीच में बिजली भी चमकने लगी, जैसे निराशा और बेबसी से भरे हुए हृदय में आशा की क्षीण-मलिन किरण कभी-कभी चमक उठती है।

यमुना अपने घर के बरामदे में खड़ी थी। उसकी सूनी आँखें आकाश में टकटकी लगाए हुए थीं। अपना एक हाथ उसने बाँस के खम्भे में लपेट रक्खा था, दूसरा कमर पर रक्खे हुए वह चुपचाप ताक रही थी। जैसे बरसों की कोई भूली बात रह-रह कर उसे याद आ रही हो। जैसे अतीत की कोई करुण-स्मृति बरबस उसके मन-प्राण पर अधिकार जमा रही हो और उसी स्मृति के दारुण आघात से उसका जी मसोस उठता हो, हृदय विह्वल हो उठता हो।

उसे मालूम पड़ने लगा मानो उसका सारा घर, सारा संसार, उसके हृदय की तरह ही सूना हो और स्पन्दनहीन आकाश में छाए हुए घने-काले मेघों की तरह उसके हृदय के आकाश में भी चिन्ता के बादल छा गए हों। आकाश में गरजने वाले बादलों की भाँति ही उसके हृदय में भी कोई अज्ञात वेदना हाहाकार कर रही हो। किन्तु रह-रह कर चमक उठने वाली बिजली के समान उसके हृदय में प्रकाश की कोई रेखा तो नहीं चमकती थी। इस असमानता का कारण कौन बतला सकेगा?

दरवाज़े पर नीम का एक पुराना पेड़ था। सूखी हुई पीली पत्तियाँ गिर कर इधर-उधर फैल गई थीं। पेड़ के नीचे एक मरखही गैया बँधी थी। पास ही उसका बछड़ा उछल-कूद रहा था। दालान के फूस वाले छप्पर पर कद्दू-करेले की बेलें फैली हुई थीं। थोड़ी दूर पर एक बरसाती नदी बह रही थी। गाँव के कितने ही बड़े-छोटे लड़की-लड़के नावों पर बैठ कर और बीच धार में जाकर शोर मचा रहे थे। धीरे-धीरे धुँधला अन्धकार धरती पर फैल रहा था।

यमुना का ध्यान इन सब बातों की ओर न था। वह एकान्त मन से चुपचाप आकाश की ओर देखती रही। उसे मालूम पड़ता था मानो क्षितिज के अन्तराल में अन्धकार की स्याही से नियति ने उसके कठोर दुर्भाग्य की करुण कहानी लिख दी है। वह उसे पढ़ने की सतत चेष्टा कर रही थी, किन्तु उसे कुछ न दीख पड़ता था। सारा संसार उसे अन्धकारमय जान पड़ता था। वह अपने उन्माद में विभोर थी। उसका हृदय अथाह में था, चिन्ताएँ प्रवाह में।

प्रकृति ने उन्मादिनी का रूप धारण किया था। अजस्र वर्षा हो रही थी। अनवरत झरझर शब्द से धरित्री मुखरित हो उठी थी। दूर के धूमिल तरु-शाखाओं पर तीर की तरह गिरने वाली वर्षा की धाराएँ बड़ी भली मालूम होती थीं। यमुना अपनी सूनी आँखों से अनन्त शून्य की ओर चुपचाप केवल देख रही थी।

मस्तक पर अन्तहीन नील-सागर से फैले हुए आसमान की ओर देखते ही देखते यमुना की आँखें छलछला उठीं। अतीत की एक करुण-अधीर स्मृति ने उसका हृदय मथ डाला। वह ऐसी ही एक सन्ध्या थी। दिनभर रोते-रोते यमुना की आँखें सूज गई थीं। सन्ध्या को उसके पति का शव दाह करके पड़ोसियों के साथ जब उसका छोटा भतीजा नरेन्द्र लौट आया, उस समय यमुना अर्द्धचेतनावस्था में पड़ी थी। टूटे हुए दरवाज़े के घर्घर शब्द के साथ घर में घुस कर नरेन्द्र ने पुकारा—चाची!

लेकिन चाची उत्तर देने के लिए उस समय होश में

न थी। नरेन्द्र जाकर उसकी गोद में छिप गया। चाची को पुकार कर, हिला-डुला कर भी जब उसने कुछ उत्तर न पाया, तो वह अधीर होकर रो पड़ा। यमुना ने उसके गर्म-गर्म आँसुओं के स्पर्श से चौंक कर देखा, वह न जाने कब से उसकी गोद में लोट-लोट कर रो रहा है। नरेन्द्र को गोद में ज़ोर से दबा कर यमुना रो पड़ी। नरेन्द्र भी रोया। कौन जानता है, अविरल प्रवाहित होने वाला क्रन्दन का वह वेग कब शान्त हुआ?

उसके बाद नरेन्द्र को ही लेकर यमुना अपनी सारी दुःख-विपत्ति भूल गई। नरेन्द्र बचपन का मातृ-पितृ-हीन था। चाचा-चाची के आदर-दुलार की छाया में ही वह बढ़ा था। अपने स्नेह का एक आधार खोकर उसने यमुना की सारी स्नेह-ममता पर अधिकार कर लिया। यमुना भी अपने हृदय की सारी माया-ममता उस पर ढाल कर अपने मन को भुलाने की चेष्टा करने लगी।

कुछ दिन इसी प्रकार बीते। यमुना का यौवन खिल उठा था। उसके हृदय का प्रेम-निर्झर शत-शत धाराओं में प्रवाहित हो रहा था। उसे बलपूर्वक संयत करके नरेन्द्र पर ही अपना सारा प्यार ढाल कर वह अपने को ठगने की चेष्टा कर रही थी, भुलाने का प्रयत्न कर रही थी। वह शायद कुछ समय तक इसी प्रकार अपने को धोखा देती भी रहती और इस सुख को ही अपने जीवन का आधार मान कर सन्तोष कर लेती, पर विधाता से उसका इतना सुख भी न देखा गया। एक दिन नरेन्द्र भी उसे रोती-कलपती छोड़ कर सदा के लिए किसी चिरसुन्दर देश की ओर प्रस्थान कर गया।

यमुना के स्नेह का रहा-सहा आधार भी टूट गया। उसका उच्छृङ्खल प्रेम-प्रवाह बाँध तोड़ कर प्रवाहित हो उठने के लिए अधीर-उन्मत्त हो उठा। यमुना पागल सी होकर चारों ओर देखने लगी—अपने यौवन का अरक्षित वैभव लेकर, पाप, सन्देह और कालिमा से भरी हुई दुनिया में वह कहाँ जायगी? क्या करेगी? हाय, वह कैसी विवश है, कितनी असमर्थ!!

यमुना अतीत की इन्हीं दुखद स्मृतियों में विभोर हो रही थी। धीरे-धीरे दरवाज़ा खोल कर एक सुन्दर युवक ने अन्दर प्रवेश किया। यमुना ने उसे देखा नहीं। अन्दर आकर वह युवक क्षण भर ठिठका, फिर बाहर निकल जाने को उद्यत हुआ। इसी समय यमुना ने उसे देख लिया। पुकारा—कौन है?

"मैं हूँ भौजी!"—मनोज ने धीरे से उत्तर दिया।

"क्या है मनोज? लौटे क्यों जा रहे हो?"

"यों ही"—मनोज को कुछ उत्तर न सूझ पड़ा। उसने रुक-रुक कर कहा—"दुनिया की माँ कहाँ गई भौजी? तुम अकेली हो क्या?"

"हाँ। दुख के दिनों में कौन किसके पास रहता है?"

एक किवाड़ खोल कर मनोज खड़ा था। वह वैसा ही खड़ा रहा; न बाहर जा सका, न अन्दर ही आ सका। यमुना ने कहा—वैसे खड़े क्यों हो मनोज? आओ, बैठो।

"अब चलूँगा भौजी, साँझ हो गई है।"

"तो क्या हुआ?"

"साँझ को क्या तुम्हारे पास अकेले बैठना अच्छा होगा?"

"क्यों भैया, बुरा क्या होगा?"

"बुरा तो कुछ नहीं, लेकिन × × ×"

"लेकिन क्या? इस पानी-आँधी में कहीं जाना न होगा। आकर चुपचाप बैठो।"—यमुना ने अधिकारपूर्वक कहा। मनोज यमुना की आज्ञा की अवहेलना न कर सका।

अँधेरा सघन हो उठा था। बारिश हो रही थी। बीच-बीच में बिजली भी चमक उठती थी। यमुना ने कहा—आज यहीं खाओगे। बैठो, मैं रसोई-पानी का इन्तज़ाम करूँ।

मनोज चुपचाप एक खटिया पर बैठ गया। यमुना घर के काम-धन्धे में लगी।

ख

यमुना पूरियाँ उतारती और मनोज खाता जाता था। आज बहुत दिनों के बाद किसी को इस तरह बैठा कर खिलाते हुए यमुना का हृदय आनन्द से हिण्डोले की तरह झूल रहा था। कौन जानता है, मनोज को इस प्रकार खिला कर वह किस सुख और तृप्ति का अनुभव कर रही थी?

यमुना ने कहा—जब मैं छोटी थी तो भविष्य-जीवन के बारे में न जाने कितनी बातें सोचा करती थी; किन्तु

उस समय कौन जानता था, सोची हुई वे बातें जुआरी के पासे की तरह उलट जायँगी? सुख के सपने यौवन की भाँति नष्ट हो जायँगे और अन्त में यह दिन भी देखना पड़ेगा!!

मनोज ने देखा, यमुना की आँखों में आँसू भर आए हैं और पुतलियाँ उसमें तैर रही हैं—जैसे अन्तहीन नील-समुद्र में बड़े-बड़े जहाज़ तैरा करते हैं। यमुना उसी की ओर देख रही थी। दोनों की चार आँखें हुईं। दिल में एक सनसनी का अनुभव हुआ—जैसे बिजली का तार छू गया हो। टप-टप करके आँसू की दो बूँदें यमुना के गाल पर गिरीं, फिर बह कर ज़मीन चूमने लगीं—जैसे लड़ाई के मैदान में कटे हुए सिर ज़मीन चूमा करते हैं।

यमुना ने कहा—जब जो कुछ भी मैंने सोचा है, ठीक उसका उलटा ही आज तक होता आया है। एक बार सोचा, अब कुछ सोचूँगी ही नहीं, लेकिन यही सोचना क्यों ठीक उतरता? जब न सोचने का मनसूबा बाँधा तो इतना सोचने लगी कि मालूम पड़ा, सोचते ही सोचते मैं पागल हो जाऊँगी। कौन जानता था, मनुष्यों के कोलाहल से गूँजता रहने वाला शहर छोड़ कर देहात में आना पड़ेगा? प्यारे-प्यारे भाई-बहिनों और माँ-बाप से भरा-पुरा घर छोड़ कर इस कुटिया में वनवास करना पड़ेगा? ओह!

यमुना के मुँह से एक लम्बी उसाँस निकल गई। मनोज ने उसकी व्यथा का अनुभव किया—एक बार करुणाभरी आँखों से उसकी ओर देखा।

यमुना ने कहा—तुमने रामायण की कथा पढ़ी है मनोज?

"हाँ।"

"वनवास सीता जी को भी हुआ था, लेकिन फिर भी वह मुझसे सुखी थीं—उनका हृदय, उनका सर्वस्व, उन्हीं के साथ था। मेरा तो सब कुछ जैसे कोई निकाल ले गया है।"

"लेकिन दूसरी बार भौजी! एक बार फिर तो उन्हें वनवास करना पड़ा था? उस समय की उनकी हालत सोचो!"

"उस समय भी वे मुझसे सुखी थीं—गोद में दो लाल थे, सिर पर महर्षि वाल्मीकि। मेरे कौन है? अन्तहीन सूनेपन ने मेरा जीवन ढक रक्खा है।"

मनोज ने सोचा—सच ही तो है, इस संसार में यमुना का कौन है?

मनोज की थाली में पूरियाँ रखती हुई यमुना ने पूछा—तुम्हारा कॉलेज कब खुलेगा मनोज?

"अभी देर है—शायद महीने भर बाद।"

"हूँ।"

कड़ाई से उतार कर अलग रखने के बदले सारी पूरियाँ यमुना ने मनोज की थाली में डाल दीं। घबरा-कर हाथों से रोकता हुआ मनोज बोला—हाँ, हाँ, यह क्या कर रही हो भौजी? मैं कितना खाऊँगा?

"न खाओगे? अच्छा, न खाना, मैं खा लूँगी।"

"मेरा जूठा?"

"जूठा? हाँ, जूठा ही तो! आज वही खाऊँगी।"

मनोज यमुना का मुँह ताकने लगा—भौजी को यह क्या हो गया है?

हाथ-मुँह धोकर मनोज ने कहा—अब चलूँगा भाभी, बड़ी देर हो गई।

"देर? हाँ, देर तो हो गई। पान न खाओगे?"

"खिला दो। नेकी में क्या पूछना?"

"ठहरो।"

चूल्हे पर से कड़ाई उतार कर यमुना उठ खड़ी हुई। मुँह पर मोती की तरह खिली हुई पसीने की बूँदों को आँचल से पोंछ लिया, फिर पान बनाने लगी। मनोज चुपचाप सब देखता रहा।

पान बना कर यमुना ने एकदम मनोज के मुँह में डाल दिया। मनोज विचलित हुआ। यमुना सिहर उठी। हारी हुई, थकी हुई सी, बरामदे का खम्भा पकड़ कर वह खड़ी हो गई। मनोज जल्दी से उठ कर दरवाज़े की ओर बढ़ा।

यमुना ने कहा—अब जा ही रहे हो मनोज?

"हाँ भौजी, जाता हूँ।"

"जब तक यहाँ रहना, कभी-कभी इधर भी भूल जाया करना। देखते हो मैं कितनी अकेली हूँ?"

"अच्छा, आऊँगा।"

मनोज जाने लगा। यमुना ने रोक कर पूछा—कब आओगे?

"कभी।"

"कभी नहीं, ठीक वक्त बतलाओ?"

"जब कहो, आऊँ।"

"कल आना।"

"कल ? कल तो न आ सकूँगा भौजी !"

"तो परसों—"

"हाँ, परसों आ सकता हूँ।"

"ज़रूर आना।"

"अच्छा।"

यमुना को और कुछ कहने का मौक़ा न देकर मनोज तीर की तरह अँधेरे में घुस गया।

रात अधिक हो आई थी। मनोज के चले जाने पर दरवाज़ा खोल कर देर तक यमुना उस सघन अन्धकार में आँखें गड़ा कर देखती रही।

ग

घोर अन्धकार में, मनोज तेज़ी से आगे बढ़ा जा रहा था। उसे कहाँ जाना है, वह कहाँ जा रहा है, इसका उसे कुछ पता न था। मन्त्र-मुग्ध सर्प की भाँति सिर झुकाए वह केवल अपने पथ पर अग्रसर हो रहा था। उस समय अनेक प्रकार की भावनाओं से उसका माथा चक्कर खा रहा था। श्रान्त, उन्मत्त होकर वह एक साथ ही अनेक बातें सोच-सोच कर पागल हो रहा था।

अँधेरी रात में वृक्षों के पत्ते सर-सर आवाज़ कर रहे थे। दूर से समस्वर में उठ कर आती हुई मेढकों की टर्र-टर्र आवाज़ कानों में गूँज रही थी—झिल्ली की झनकार झनझना रही थी। सहसा एक वृक्ष की जड़ में पैर फँस जाने से मनोज धरती पर गिर पड़ा। ईंट का एक नुकीला टुकड़ा सिर में धँस गया। रक्त की धार बह चली। घुटने और हथेलियों में भी गहरी चोट लगी थी। उसका सिर घूम गया। क्षणभर के लिए वह बेहोश होकर धरती पर गिर पड़ा।

मनोज को जब होश आया, उस समय रात आधी से अधिक बीत चुकी थी। तमोमयी रजनी के अञ्चल में हीरों के समान तारे झलमला रहे थे। एक नीरव-निस्तब्धता से प्रकृति का हृदय भर उठा था। मेढकों और झिल्लियों का कर्ण-कटु शब्द रुक गया था। पूर्व-आकाश में शुक्र तारा उग आया था। एक अलस मन्थ-रता वायु के वेग में भर रही थी। मनोज ने अनुभव किया, उसका शरीर टूट रहा है, नस-नस में दुर्बलता व्याप्त हो रही है। चेतना लुप्त हो रही है। मालूम पड़ता है, जैसे वह कोई घोर दुःस्वप्न देख कर उठा है।

मनोज ने इधर-उधर टटोल कर देखा—कँकरीली ज़मीन थी, किसी पुराने वृक्ष की जड़ चारों ओर फैली हुई थी। धरित्री पर फैला हुआ अन्धकार उस वृक्ष के नीचे और भी घनीभूत हो उठा है। मनोज को भय मालूम पड़ा। उसने उठने की चेष्टा की, मगर उठ न सका। बड़ी दुर्बलता थी, बलपूर्वक वह हाथ भी न उठा पाता था। सिर ऊँचा करके उसने एक बार चारों ओर देखा, फिर हताश होकर अपने अवश शरीर को ज़मीन पर डाल दिया। उस समय अपनी विवशता और शक्ति-हीनता देख कर उसे रोना आ रहा था। रोकते रहने पर भी उसकी आँखों से आँसू के सोते बह चले।

धीरे-धीरे पूर्व गगन की खिड़की खोल कर उषा ने अपनी लजीली आँखों से झाँका। सूर्य-किरणों ने धरित्री पर धूप की सुनहली चादर तान दी। उन अरुण-कनक किरणों की डोरी से गुम्फित होकर ओस की रजत-बूँदें चमचमा उठीं। मनोज भी प्रातःकालीन वायु के झोंकों से बल सञ्चय करके धीरे-धीरे उठ खड़ा हुआ।

घ

एक-एक करके कई दिन बीत गए, किन्तु मनोज न आया। यमुना बड़े असमञ्जस में पड़ी। सोचने लगी कि क्या हुआ जो वादा करके भी मनोज नहीं आया। वह तो ऐसा नहीं था। वह फिर सोचती, अब तक नहीं आया तो आज ज़रूर आवेगा। किन्तु फिर भी मनोज की कुछ ख़बर न मिलती। धीरे-धीरे यह प्रतीक्षा यमुना के लिए असह्य हो उठी। एक—एक बार वह मनोज से मिलने के लिए, उसे एक बार देख लेने के लिए अधीर हो जाती, विह्वल हो जाती थी। वह खोई सी घर-आँगन में इधर-उधर फिरा करती थी।

अनेक बार वह सोचती—क्यों मनोज के प्रति मेरा इतना आकर्षण है? उसके प्रति सहसा क्यों मेरा मन इस प्रकार की असामयिक ममता से भर गया है? मनोज को आज से नहीं, वह तब से जानती है, जब एक दिन छोटी अवस्था में मातृ-पितृ-हीन होकर वह यमुना के दरवाज़े पर आ बैठा था। उस समय यमुना भी छोटी ही

थी। दोनों ही प्रायः समवयस्क रहे होंगे। उस समय उसके स्वामी जीवित थे। मातृ-पितृ-हीन उस अनाथ बालक को देख कर उसी समय उसका कोमल हृदय करुणा, प्रेम और सहानुभूति से भर गया। किन्तु कौन कह सकता है इस नवीन आकर्षण ने उसके हृदय की अवस्था को कितना डाँवाडोल कर दिया था?

लगातार कई दिनों तक प्रतीक्षा करने के बाद भी जब मनोज का कुछ पता न चला तो यमुना अधीर हो उठी। एक दिन उसके हृदय का बाँध टूट गया, धैर्य अपनी सीमा अतिक्रम कर गया, वह मनोज की ख़बर पाने के लिए अस्थिर हो गई।

उसने स्वयं ही मनोज के घर जाने का सङ्कल्प किया और वह सङ्कल्प इतना दृढ़ था, इतना प्रबल कि लोक-निन्दा और यश-अपयश की बात वह प्रायः भूल सी गई। इतनी दूर तक सोचने-विचारने का उसे अवकाश ही न मिला। वह मनोज के घर की ओर चल पड़ी।

रास्ते में उसके पैरों के नीचे पड़ कर सूखे पत्ते खड़-खड़ आवाज़ कर उठते थे, पुरवैया हवा का सनसनाता हुआ झोंका इधर से उधर निकल जाता था, आसमान में बादल गरज उठते थे, किन्तु इन सबों की ओर ध्यान देने का उसे अवकाश न था। अपने साथ ही साथ दुनिया को भूल कर वह आगे बढ़ती गई। मनोज के दरवाज़े पर पहुँच कर जब उसने किवाड़ों पर थपकी दी तो वे फट-फट करके खुल गए। यमुना भीतर चली गई।

आँगन पार करके मनोज के पास तक पहुँचने के पहले ही, क्षण भर में यमुना के मन में सौ-सौ बातें घूम गईं। वह सोचने लगी—अगर मनोज कहीं मर रहा हो, उसे दवा तक देने वाला कोई न हो, पानी-पानी चिल्लाते-चिल्लाते उसका गला सूख गया हो, भूख-प्यास से प्राण छटपटा रहे हों, वह किस रूप में मनोज को देखेगी? वह अब तक चुपचाप क्यों बैठी रही? क्यों नहीं मनोज की खोज-ख़बर लेने आई? कह कर भी जब वह इतने दिनों तक यमुना के घर नहीं गया तो ज़रूर ही कोई ख़ास बात होगी—शायद वह कोई भयानक यन्त्रणा भोग रहा हो, शायद उसे कोई बड़ी तकलीफ़ हो गई हो; वह केवल हड्डी का एक साँचा रह गया हो और चारपाई पर लेटा-लेटा किसी के आने की प्रतीक्षा में दिन-रात बिता रहा हो!! ओह!!!

बहुत सोचने के बाद उसे मालूम पड़ा कि छिपने की इस भावना के अन्तराल में केवल लोकापवाद का भय छिपा हुआ है। लोक तो मनुष्य का हृदय नहीं देखता न, वह केवल कार्य का बाहरी रूप देखता और उसी पर अपना फ़ैसला दे देता है। वह फ़ैसला कहाँ तक न्यायसङ्गत और उचित होगा, यह सोचने की बात है।

मनोज बरामदे में चारपाई पर पड़ा हुआ था। उसके घाव पक गए थे और उनमें असहनीय पीड़ा हो रही थी। इधर कई दिनों से उसे ज्वर भी आने लगा था। जब ज्वर का वेग कुछ कम होता, उस समय सुस्त पड़ा-पड़ा वह अनेक प्रकार की उधेड़-बुन के ताने बुना करता था; किन्तु जब ज्वर का वेग तीव्र होता, वह बेहोश हो जाता और अनाप-शनाप बका करता था।

उस समय भी उसे तीव्र ज्वर चढ़ आया था। वह रह-रह कर चिल्ला उठता था—अरे! कोई मुझे बचाओ, मेरी रक्षा करो। बड़ी पीड़ा है, बड़ी जलन! ओह!!

चिल्लाहट सुन कर यमुना मनोज के पास दौड़ गई। सिरहाने की पटिया पर बैठ कर उसने मनोज के सिर पर हाथ रक्खा—वह तत्ते तवे-सा जल रहा था। "ओह" कह कर उसने हाथ खींच लिया, फिर आँचल से उसके हाथ-पैर मलने लगी।

६

कई दिनों के बाद ज्वर उतर गया, घाव धीरे-धीरे सूख चले। मनोज ने अपेक्षाकृत स्वस्थ होकर आश्चर्य से यमुना की ओर देखा। कहा—तुम यहाँ कैसे चली आईं भौजी?

"न जाने कैसे? शायद कोई खींच लाया।"—यमुना ने उत्तर दिया।

"कौन?"—आश्चर्य से मनोज ने पूछा।

"अपने दिल से पूछो।"—मनोज की ओर देख कर यमुना मुस्कराई। मनोज ने कृतज्ञता से सिर झुका लिया।

उस समय दिया-बत्ती नहीं हुई थी, लेकिन अँधेरा हो गया था। चारपाई पर लेटा-लेटा मनोज चुपचाप आसमान की ओर देख रहा था। वह सोचने लगा—यमुना क्यों मुझे इतना चाहती है? मेरे दुख से क्यों

इसे दुख होता है ? क्यों यह मेरे लिए अपने सुख-स्वास्थ्य की चिन्ता छोड़ कर दिन-रात एक कर रही है ? मेरा क्या मोल है ? गाँव में इतने लोग तो हैं, लेकिन किसी को मेरी कोई चिन्ता नहीं, कोई पूछने भी नहीं आता कि अच्छे हो या मर गए; लेकिन यमुना को ही इतनी चिन्ता क्यों है ?

बहुत सोच कर भी मनोज कुछ समझ न सका। उसने मुँह फेर कर ऊँची साँस ली। यमुना ने इसे लक्ष्य किया। दौड़ कर पास आ गई। बोली—क्या है मनोज ?

"कुछ तो नहीं।"

"क्या सोच रहे हो ?"

"जो सोचता हूँ, वह समझ नहीं पाता; तुम्हें क्या बताऊँ ?"

यमुना ने फिर कुछ न पूछा। खटिया के पास ही एक टूटा हुआ मोढ़ा पड़ा था, वह उसी पर बैठ गई। उसने मनोज के लम्बे-लम्बे बालों में उँगलियाँ उलझा दीं, फिर सिर पर हाथ फेरने लगी। मनोज ने एक अपूर्व सुख का अनुभव किया। आप ही आप उसकी आँखें बन्द हो गईं।

सिर पर हाथ फेरते हुए यमुना ने पूछा—दर्द हो रहा है मनोज, दबा दूँ ?

"हाँ।" मनोज ने बिना समझे-बूझे कह दिया, लेकिन उसे मालूम था कि उसके सिर में दर्द नहीं है। दर्द तो नहीं है, किन्तु मनोज इस सुख का लोभ भी नहीं छोड़ सकता।

यमुना मनोज का सिर दबाने लगी।

एक दिन सन्ध्या को मनोज से यमुना ने पूछा—क्या खाओगे मनोज ?

"आज तो कुछ खाने की इच्छा नहीं है।"

"कुछ नहीं ? थोड़ा-सा दूध पी लेना, गरम किए देती हूँ।"

"देखा जायगा।"

यमुना ने देखा, मनोज के उत्तर में अस्वीकृति का भाव नहीं था। वह दूध गरम करने चली गई। थोड़ी ही देर बाद गरम दूध लेकर वह फिर मनोज के पास आ पहुँची। बोली—पी लो न! फिर ठण्डा हो जायगा।

"तुम कुछ न खाओगी भौजी ?"

"मैं ? कुछ खा लूँगी।"

"क्या ?"

"देखा जायगा।"

"भौजी, थोड़ा दूध तुम भी पी लो।"

"अरे नहीं, मैं अपने लिए दो रोटी सेंक लूँगी।"

"तुम दूध न पियोगी तो मैं भी न पिऊँगा। याद रखना।"

बहुत ज़िद करने पर यमुना ने अपने लिए भी एक गिलास में थोड़ा दूध निकाल लिया। बाक़ी दूध में से कुछ मनोज ने पिया, कुछ कड़ाही में ही रह गया। यमुना ने भी अपना हिस्सा पी लिया, फिर पूछा—अब यह इतना क्या होगा ?

"तुम पी लो।"

"अब मैं नहीं पीती।"

"तब फेंक दो, मुझसे तो न पिया जायगा।"

लाचार होकर यमुना ने अपने गिलास में दूध डाल लिया, किन्तु सब पी न सकी। थोड़ा सा दूध जब बच रहा तो गिलास रख कर वह दरवाज़ा बन्द करने के लिए उठ गई।

एकाएक मनोज की इच्छा हुई कि वह यमुना के गिलास का बचा हुआ दूध पी जाय। उसने गिलास उठा लिया, एक क्षण के लिए भी उसे कुछ सोचने का अवकाश न मिला।

जमुना दरवाज़ा बन्द करके जब लौटी तो उसने देखा, गट-गट करके मनोज उसके जूठे गिलास का दूध पी रहा है। वह सिहर उठी। बोली—हाय! तुमने यह क्या किया मनोज ?

"क्या ?"

"जान-बूझ कर क्यों उस कोठरी में आग लगाते हो, जो ज़रा सी गर्मी पाकर ख़ुद ही भभक उठने के लिए उतावली हुई रहती है ?"—यमुना ने अपने हृदय की ओर इशारा किया। अपराधी की भाँति अवाक् होकर मनोज चुपचाप ताकता रहा।

यमुना कुछ सँभली। बोली—"इस चोरी की क्या ज़रूरत थी ? माँगते तो थोड़ा दूध तुम्हें और न मिल जाता ?" एक रहस्य भरी मुस्कराहट उसके अधरों पर खेल गई। मनोज कुछ आश्वस्त हुआ।

यमुना पङ्खा झलने लगी। कुछ ही देर में मनोज गहरी नींद सो गया।

मनोज के सो जाने पर अपने प्रति एक तीव्र धिक्कार के भाव से यमुना का हृदय भर गया। उसने सोचा—"हाय! मैं कहाँ जा रही हूँ? मनोज ने मेरी क्या दशा कर रक्खी है? इस पथ का अन्त कहाँ होगा?"

"मनोज के लिए ही सब कुछ छोड़ा—घर-द्वार, लोक-लज्जा और यश-अपयश की चिन्ता भी; किन्तु जब उसके पास जाना चाहती हूँ तो बरबस एक अदृश्य शक्ति मेरे-उसके बीच में अन्तराल बन कर खड़ी हो जाती है। जब दूर हटना चाहती हूँ तो कोई आकर्षण बलपूर्वक खींच कर उसमें मिला देने, उसके साथ एकाकार कर देने की चेष्टा करता है। ओह! यह परिस्थिति कितनी दारुण है, कितनी अवाञ्छनीय!!"

एक बार सोए हुए मनोज की ओर उसने देखा। सारा विवेक भूल गई। उन्मत्त होकर उसने मनोज को बलपूर्वक अपनी भुजाओं में कस लिया।

च

"लोग क्या कहेंगे भौजी?"

"क्या?"

"हम दोनों एक साथ रहते हैं, यह बात क्या समाज सह सकेगा?"

"तुम सह सकोगे?"

"लेकिन उसका मूल्य ही क्या है?"

"सब कुछ है—मैं पूछती हूँ।"

"मैं तो सब सह सकता हूँ, लेकिन × × ×"

"तुम अगर सह सकते हो तो समाज झख मारेगा, सहेगा। वह क्या तुमसे अलग है?"

"इस बात को सभी लोग इसी तरह तो नहीं देखते न भौजी?"

"न देखें। तुम चाहते क्या हो—मैं तुम्हारे घर से चली जाऊँ?"

यमुना झपट उठी और दरवाज़े की ओर बढ़ी। दौड़ कर मनोज ने रास्ता रोक लिया। कहा—"तुम नाराज़ होकर मुझे समझने में ग़लती न करो भौजी! तुम्हें मेरी शपथ है, आगे पैर न बढ़ाना।" कातर आँखों से उसने यमुना की ओर देखा।

यमुना पिघली। बोली—तुम रहने भी न दोगे, जाने भी नहीं। मरने भी न दोगे, जीने भी नहीं। ओह! तुम्हारी यह कैसी लीला है मनोज!

कातर भाव से मनोज फिर भी चुपचाप ताकता रहा।

यमुना ने कहा—"तब कहो, 'दोनों तरफ़ है आग बराबर लगी हुई', क्यों?" यमुना गम्भीर भाव से हँसी।

"कैसी आग भौजी? कौन आग दोनों तरफ़ बराबर लगी हुई है?"

"ओ हो! तुम कितने नासमझ हो—जैसे दुधमुँहा बच्चा!!"

छ

मनोज ने स्पष्ट देख पाया कि यमुना उसे प्यार करती है। उसे यह भी दीख पड़ा कि वह स्वयं भी धीरे-धीरे उसी पथ पर अग्रसर हो रहा है; किन्तु क्या यह उचित है? अपने लिए नहीं तो कम से कम यमुना के कल्याण के लिए, वह यमुना के साथ ही साथ, सात पुरखों का घर-द्वार, गाँव तक सदा के लिए छोड़ देगा। जो यमुना उसे इतना प्यार करती है, उसके हित के लिए क्या वह इतना त्याग भी न कर सकेगा? अगर न कर सकेगा तो उसके समान कृतघ्न और कौन होगा? नहीं, वह यमुना के लिए सब कुछ करेगा, उसके प्यार का उचित बदला देगा।

उसने बहुत सोच-समझ कर देखा कि यमुना के साथ रह कर वह किसी प्रकार उसकी रक्षा न कर सकेगा। उसे कम से कम यमुना के लिए ही अपना सर्वस्व त्याग करना होगा। यमुना को छोड़ते हुए क्या उसे सुख होगा? लेकिन जो कुछ भी हो, छोड़ना तो पड़ेगा ही। इसी में यमुना का कल्याण है और उसका भी। वह उसी कल्याण का मार्ग पकड़ेगा।

मनोज ने सोचा—मनुष्य का हृदय कैसा अद्भुत है? वह ठीक एक ही समय दो भिन्न-भिन्न पथों पर दौड़ने के लिए उन्मत्त हो उठता है। विवेक की शक्ति उसे पथ-निर्देश करती है। वह एक फूल को तोड़ कर सूँघना इसलिए नहीं चाहता कि वह उसे प्यार करता है। मनोज भी यमुना को छोड़ कर चला जायगा, इसलिए कि वह क्षण-क्षण में उसके जीवन के सन्निकट आ रही है; इसलिए कि वह जमुना को प्राणों से भी अधिक सुरक्षित रखना चाहता है और इसलिए कि वह उसे सबसे अधिक प्यार करता है।

उसी दिन रात्रि के अन्धकार में मनोज घर से बाहर निकल गया।

ज

दो वर्ष बाद।

सन्ध्या का समय था, बरसात का मौसम। यमुना मनोज के घर में अभी भी रहती थी। दो वर्षों की अनवरत धूप-वर्षा सहने के कारण मकान जहाँ-तहाँ गिर पड़ा था। कोठरियाँ चू रही थीं। खपरैल टूट गई थी; इधर-उधर जङ्गली लताएँ और घास उग आई थीं।

उठ कर उसने दिया जलाया। फिर भोजन बनाया। दो थालियों में भोजन परस कर वह मनोज की प्रतीक्षा में बैठी रही। बड़ी देर हो गई—मनोज न आया। एक ऊँची साँस लेकर उसने अपने आप ही कहा—आज भी नहीं आए। अब शायद आज न आवेंगे। उसने अकेले ही भोजन किया। उसके बाद बरामदे में पास-पास दो खटिया बिछाईं—एक अपने लिए, दूसरी मनोज के लिए। सोचा, शायद रात में ही कहीं चले आवें। कौन जानता है?

किन्तु रात बीत जाती और मनोज न आता। इसी प्रकार मनोज के जाने के बाद से, उसने दो वर्ष बिता दिए थे। लोग उसे देखते; कहते, पागल हो गई है। लोगों की बातें सुन कर वह एक फीकी हँसी हँस देती थी। उस हँसी में कितनी वेदना होती थी, कितना विद्रूप!!

गर्मी की लम्बी दुपहरियों में खिड़की पर बैठ कर धू-धू जलते हुए अन्तहीन प्रान्तर की ओर वह चुपचाप देखा करती। सोचती—"इसी रास्ते से आवेंगे। शायद चल चुके हों। ओह! कितनी धूप है। तलवे जल जायँगे। तालू चटक जायगी, मगर वह आवेंगे ज़रूर। वह सुराहियों में पानी ठण्डा कर रखती। गुड़ की भेली और एक लोटा-गिलास लाकर पास रख लेती—इस दुपहरिया में ज़रूर उन्हें प्यास लगी होगी!"

वह दिन-रात दरवाज़े पर आँखें बिछाए बैठी रहती थी—न जाने कब मनोज आ जाय! लम्बी-लम्बी रातें आतीं और चली जाती थीं, सुख के सपनों की तरह दुपहरियाँ आतीं और बीत जाती थीं; बहते हुए दरिया की लहरों के समान सुनहले सवेरे एक के बाद एक आते और आँखों से ओझल हो जाते थे, किन्तु मनोज किसी दिन न देख पड़ता। रात होती तो यमुना सोचती, कल सवेरा होते ही मनोज आवेगा। अब तक वह चाहे जिस कारण से भी न आ सका हो, किन्तु कल वह आए बिना न रहेगा। किन्तु कल होता, सवेरा बीत जाता, दुपहरिया खो जाती, गोधूलि धूमिल पड़ जाती, मनोज फिर भी न दीख पड़ता था।

इसी प्रकार वर्षा की भयावनी काली रातें, गर्मी की लम्बी दुपहरियाँ, शीत की हाड़-हाड़ कँपा देने वाली सन्ध्या आतीं और चली जाती थीं। समय की गति में विराम न था, यमुना की प्रतीक्षा में अन्त भी नहीं।

लोग कहते, मनोज मर गया है। वह अब न आवेगा। यमुना उँगलियों से कान मूँद लेती—ऐसी बात न कहो। वे मुझे छोड़ कर नहीं रह सकते। आवेंगे ज़रूर, फिर चाहे आज आवें या दो दिन बाद। कोई कहता—वे साधू हो गए हैं। कोई कहता—देश छोड़ कर कहीं बहुत दूर चले गए हैं। इसी तरह भिन्न-भिन्न लोग, भिन्न-भिन्न तरह की बातें कहा करते थे, पर यमुना को किसी पर विश्वास न होता, होता भी तो वह विश्वास करती ही न थी।

उसके हृदय में गम्भीर आशा थी—कभी न कभी उसकी तपस्या सफल होगी। मनोज घर आवेगा। उसकी प्रतीक्षा में बल था, आशा में विश्वास की दृढ़ता। कौन कह सकता है, उसकी प्रतीक्षा का अन्त कब होगा? कभी होगा भी या नहीं, यही कौन बतला सकता है?

मैथिल महासभा और सौराठ सभा

[एक मैथिल]

इस वर्ष मैथिल महासभा का २१ वाँ अधिवेशन दरभङ्गा में तारीख़ १८, १९ और २० अप्रैल को दरभङ्गा के महाराजाधिराज श्रीमान कामेश्वरसिंह बहादुर की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। मैथिल महासभा एक निर्जीव संस्था है, इसका पर्याप्त प्रमाण इस अधिवेशन ने जनता को दिया। यह बात सच है कि इस संस्था का राजनीति से सम्बन्ध नहीं है, सामाजिक और आर्थिक उन्नति इसका मूल उद्देश्य है और इन्हीं दोनों उद्देश्यों को सामने रख कर यह सभा कार्य करती आई है। आरम्भ में इस संस्था ने कुछ काम किया था और उस समय यह मैथिल जाति के प्रतिनिधित्व का दावा भी कर सकती थी। यद्यपि दरभङ्गा-नरेश इसके आजीवन सभापति थे, तथापि बनैली, श्रीनगर, रजौर, खड़हरा तथा दरभङ्गा राज्य से सम्बन्ध रखने वाले सभी बाबुआना राज्यों के राजे और बाबू इसमें सम्मिलित होते थे और जातीय कार्य में भाग लेते थे। किन्तु समयानुकूल नियमों का पालन न करने से किसी संस्था की जैसी दुर्गति होती है, वैसी ही मैथिल महासभा की हुई। दुनिया भर की एकतन्त्रता नष्ट हो गई, ख़लीफ़ा और पोप उठ गए, मुल्ला और पण्डितों का साम्राज्य चला गया; किन्तु मैथिलों के जातीय जीवन से एकतन्त्रता का नाश अभी तक नहीं हुआ है! इसमें समानता के सिद्धान्त पर किसी सामूहिक शक्ति का उपयोग अभी तक नहीं हो सका है। इसी से समझा जा सकता है कि हम लोग कहाँ तक गिरे हुए हैं। फिर मिथिला भी आख़िर इसी दुनिया में है और संसार की लहरें यहाँ भी टकराती ही हैं। अतः अन्यान्य समझदार लोगों एवं श्रीमानों की श्रद्धा इस विचित्र संस्था से दिनानुदिन कम होती गई और यह महासभा मैथिल जाति की कोई प्रतिनिध्यात्मक संस्था न रह कर, एक दरबार बन गई! सुतराम् कुछ ही दिनों के पश्चात् जाति के सच्चे सेवकों और निस्स्वार्थ भक्तों ने इसमें आना-जाना छोड़ दिया। अब इसमें प्रायः वही लोग सम्मिलित होते हैं जिन्हें या तो नाम के लिए पदाधिकारी होने का भूत सवार है अथवा जो दरबार से कुछ स्वार्थ-साधन करना चाहते हैं। जिस जनता की भलाई के लिए सभा की स्थापना हुई थी, उसकी अवस्था का यहाँ कुछ भी विचार नहीं होता और न किसी प्रकार का उसे नेतृत्व ही मिलता है! इन्हीं बातों से ऊब कर कुछ दिन पूर्व कलकत्ता के कुछ मैथिल विद्वानों ने एक अलग सम्मेलन किया था। किन्तु दुर्भाग्यवश वह मैथिल युवकों की उदासीनता या अकर्मण्यता से एक ही वर्ष के बाद बन्द हो गया और महासभा की निरङ्कुशता बढ़ती ही गई। इस बार मालदह में फिर भी अखिल भारतीय मैथिल युवक-सम्मेलन की बैठक श्रीमान कुमार गङ्गानन्दसिंह साहेब, एम० ए० की अध्यक्षता में हुई है। इस सम्मेलन ने हम लोगों को बहुत कुछ आशा बँधाई है तथा गणतन्त्रात्मक रीति-नीति का सूत्रपात किया है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि इस सम्मेलन ने अपने को सङ्गठित किया एवं इसके अनुकूल कुछ कार्य हुआ तो देश और जाति का अशेष कल्याण होगा। मैथिल महासभा में ऐसी अनेक त्रुटियाँ हैं, जिनका सुधार हुए बिना इससे कोई लाभ नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियों से इसकी कतिपय त्रुटियों का पता लग जायगा:—

मैथिल महासभा के इस अधिवेशन में कोई प्रस्ताव काम में आने वाला पास नहीं हुआ। एक तो हमारा मैथिल समाज अपनी सङ्कीर्णता और रूढ़ियों से अन्यान्य समाजों की अपेक्षा कहीं बेतरह जकड़ा हुआ है, तिस पर इस महासभा ने तो मानो इसकी पराकाष्ठा ही कर दी। जैसे प्राचीन काल से उपनयन-संस्कार के लिए ब्रह्मा, आचार्य और याचक आदि की रूढ़ियाँ मनाई जाती हैं—यद्यपि उनका वास्तविक अर्थ कुछ नहीं होता—उसी प्रकार आरम्भ से ही मैथिल महासभा में राजभक्ति, विद्या-प्रचार, परस्पर-विरोध-परिहार, वाणिज्य-व्यवसाय, वैवाहिक सुधार, मातृभाषा की उन्नति आदि

सात विषयों पर व्याख्यान और प्रस्ताव पास होते आए हैं, किन्तु किसी निर्णय पर कार्य नहीं होता। इस बार भी इन्हीं विषयों पर कुछ व्याख्यान होकर थोड़े से टकसाली प्रस्ताव पास हुए। हाँ, राजभक्ति पर कोई प्रस्ताव या व्याख्यान नहीं हुआ। यह आश्चर्य की बात अवश्य हुई। किन्तु राजभक्ति का परिचय भरपूर दिया गया। इसी अभिप्राय से खद्दर पहिनने का प्रस्ताव पास नहीं हुआ। विषय-निर्वाचिनी सभा में स्वतन्त्र विचार के आदमी बहुत कम घुसने पाए, क्योंकि सभापति की आज्ञा से दो-तीन घण्टा पूर्व यह घोषणा कर दी गई कि जो व्यक्ति कम से कम आठ रुपए दें वे ही प्रवेश कर सकेंगे। इसलिए यह प्रस्ताव विषय-निर्वाचिनी सभा में ही बहुमत से अस्वीकृत कर दिया गया। एक सज्जन ने कई व्यक्तियों से हस्ताक्षर करा कर उसे महासभा के खुले अधिवेशन में उपस्थित करना चाहा, किन्तु उन्हें ऐसा करने का मौक़ा ही नहीं दिया गया। इस राष्ट्रीय क्रान्ति के समय में स्वदेशी और खद्दर के प्रस्ताव की यह दुर्दशा हो, यह क़यास के बाहर की बात है। किन्तु मैथिल महासभा में यही बात चरितार्थ हुई। दूसरा महत्वपूर्ण प्रस्ताव था—हिन्दू महासभा के अछूतोद्धार, शुद्धि और सङ्गठन विषयक प्रस्तावों के प्रति सहानुभूति-मात्र प्रगट करना, किन्तु उसकी भी वही दुर्दशा हुई, जो खद्दर वाले प्रस्ताव की हुई थी। मानो मैथिल जाति अपने को हिन्दू-जाति से बहिष्कृत समझती है। ज़रा सोचने की बात है यह स्थिति इस जाति के लिए कितनी भयानक है! इसका कारण यह बताया जाता है कि अछूतोद्धार, शुद्धि और सङ्गठन के प्रति सहानुभूति प्रगट करना भी सनातनधर्म के विरुद्ध है! एक और प्रस्ताव की हालत सुनिए। हिन्दी-संसार को मैथिल-भाषा की उन्नति से विरोध है और बिहार प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन मैथिल भाषा के आन्दोलन को कड़ी नज़र से देखता है, किन्तु तो भी कुछ मैथिल, जो हिन्दी को राष्ट्र-भाषा मान कर उसकी सेवा करते हैं, मैथिली के प्रति सद्भाव रखते हैं और उसकी उन्नति प्रान्तीय रीति पर करना चाहते हैं। मैथिल महासभा भी आज २० वर्षों से इसी भाषा में अपनी कार्यवाही करती रही है और केवल नाम के लिए उसकी उन्नति का राग अलापती आई है। किन्तु जब मैथिली भाषा की एक मात्र मासिक पत्रिका 'मिथिला' को स्थायी बनाने का प्रस्ताव आया तो चारों ओर से "उठा लीजिए, उठा लीजिए", "वापस लीजिए, वापस लीजिए" का शोर मच गया और प्रस्तावक को अन्त में उसे उठा ही लेना पड़ा। इसका कारण यह है कि उक्त पत्रिका कुछ गर्म लेख लिखा करती है। ज़रा इसकी गर्मी का हाल भी सुनिए। इसने पर्दा-प्रथा के बहिष्कार, स्त्री-शिक्षा के प्रचार, शारदा-क़ानून और अछूतोद्धार के समर्थन में कुछ लेख छापे। बस इसी कारण वह गर्म हो गई और उसकी मातृभाषा की सारी सेवा मिट्टी में मिल गई! एक महाशय को यहाँ तक उत्साह हुआ कि हाल में शारदा-ऐक्ट के भय से मैथिल समाज में—विशेषतः श्रोत्रियवर्ग में—जो अनेकानेक बाल-विवाह हुए हैं, उनकी निन्दा की जाय और विधवा-विवाह का समर्थन किया जाय। अब ज़रा विचार कीजिए, जहाँ पर्दा-प्रथा और स्त्री-शिक्षा विषयक प्रस्तावों की ऐसी दुर्दशा हुई, वहाँ इन प्रस्तावों की क्या हालत होगी? नक़्क़ारख़ाने में तूती की आवाज़ वाली कहावत चरितार्थ हुई; प्रस्तावक महोदय को अपना प्रस्ताव उपस्थित करने का अवसर ही नहीं मिला। इस प्रकार मैथिल महा-सभा का तमाशा ख़तम हुआ। ऐसी संस्था से इस जाति की क्या उन्नति हो सकती है? बहुतों को यह आशा थी कि इस बार नवीन मिथिलेश के सभापतित्व में कई सुधार के प्रस्ताव स्वीकृत होंगे, किन्तु वह सब आशा दुराशा मात्र सिद्ध हुई। इस बार कई बातें पहले की अपेक्षा और भी निराशाजनक हुईं। जब कि दरभङ्गा की जनता सत्याग्रह के राष्ट्रीय समर में आगे बढ़ रही थी, उस समय मैथिल जाति व्यर्थ अपना समय खो रही थी। यह महासभा नवीन मिथिलेश की प्रशंसा का पुल बाँधती हुई समाप्त हुई। महासभा को कई वर्षों पर चार-पाँच हज़ार रुपए मिले, यही उसकी एक मात्र सफलता है।

अब सौराठ सभा का भी कुछ हाल सुनिए। 'चाँद' के इन्हीं स्तम्भों में उक्त सभा का बहुत विवरण प्रकाशित हो चुका है, पाठक उससे परिचित ही हैं; पर इस वर्ष मैंने देखा था, आपके विशेष प्रतिनिधि ने कई फ़ोटो लेने का भी प्रबन्ध किया था। आशा है, आप उसका चित्र भी प्रकाशित कर सकें; अतः विशेष

मैथिल महासभा के अध्यक्ष श्रीमान दरभङ्गा-नरेश (कुर्सी पर बैठे हुए) और कुछ विशिष्ट सदस्य

विवरण न देकर, केवल इतना ही लिखना हम अलम् समझते हैं कि इस बार हैज़े के प्रकोप से उसकी उपस्थिति सन्तोषजनक नहीं थी, तथापि उसकी संख्या पचास और साठ हज़ार के बीच में थी। इस बार की सभा के विषय में महाराजाधिराज के पत्र "मिथिला-मिहिर" ने जो लेख लिखा है, उसके कुछ आवश्यक अंशों का अनुवाद इस प्रकार है :—

"सौराठ सभा की आधुनिक स्थिति यथावत् निम्न-लिखित है :—श्रीमान मिथिलेश से पञ्जीकार लोगों ने अनुमति लेकर वैशाख सुदी पञ्चमी को सभा का श्रीगणेश किया तथा वे लोग अपनी-अपनी पञ्जी लेकर 'सभागाछी' में रहने लगे। परम्परा से निर्द्धारित एवं निर्दिष्ट स्थान पर वरप्रद वरों के साथ उपस्थित होने लगे एवं कन्याप्रद अपने कुल, शील और परिचय प्रभृति के अनुसार वरों के गुणों की स्वयं परीक्षा करके अधिकारानुसार अपनी-अपनी कन्याओं के पाणिग्रहण का निश्चय करने लगे। अस्तु, 'सौराठ' नामक एक श्रेष्ठ ग्राम मधुबनी से प्रायः ढाई कोस पश्चिम अवस्थित है, जिसके वायव्य कोण में एक विशाल आम का बाग़ और उसमें एक वृहत्काय शिवालय है। इस शिवालय के प्रतिष्ठाता श्री० ५ मान मिथिलेश के पूर्वज थे। उसी बाग़ में वैवाहिक सम्मेलन होता है। इस वर्ष शुद्ध के शेष दिनों में साठ हज़ार से कम मनुष्यों का जमाव नहीं था।

"सभा में उपस्थित होने वाले लोगों की विभिन्न संख्या—इस सभा में प्रायः ६९ प्रतिशत मैथिल ब्राह्मण और शेष इतर लोग रहते हैं। उपर्युक्त ६९ प्रतिशत संख्या

मैथिल महासभा के कुछ दर्शक

में से २० प्रतिशत वर-कन्या के अभिभावक तथा शेष व्यक्ति (यानी ४५ प्रतिशत) विवाहार्थी वर रहते हैं। उपर्युक्त ४५ प्रतिशत वरों में से २० प्रतिशत की अवस्था इतनी कम थी कि उन्हें बाल-वर कहना उचित होगा।

"सभा में उपस्थित होने वाले लोगों की अभिरुचि—प्रायः सभा में जाते समय प्रत्येक यात्री अपनी वेश-भूषा अपने-अपने विभव के अनुसार सजा लिया करता है। लाल धोती और लाल चद्दर प्रायः उम्मीदवार वरों का चिन्ह है। सभा में छल-कपट का समावेश कुछ-कुछ इस वर्ष भी देखा गया। (लोग ?) अपनी वस्तुस्थिति को छिपा लेते हैं। परस्पर कटु वाक्यों का प्रयोग, किलकारी भरने और थपड़ी बजाने किम्वा कुचेष्टा करने की प्रवलेच्छा का समूल नाश नहीं हुआ है। केवल पगड़ी-मात्र अब भी सुरक्षित देखी जाती है। अनेक नई सभ्यता के प्रेमी, नवीनरुचि-सम्पन्न मैथिल युवकों को साहस नहीं होता है कि साँची (धोती), पाग (पगड़ी) और चन्दन को तिलाञ्जलि देकर सभा में उपस्थित होवें। सच पूछिए तो मैथिलत्व का यथार्थ रूप यहीं देखने में आता है। × × ×

"वैवाहिक विचार—थोड़े व्यक्ति कौलिक प्रतिष्ठा के पक्षपाती, और थोड़े केवल धन तथा अङ्गरेज़ी शिक्षा मात्र के इच्छुक देखे जाते हैं। किन्तु सम्प्रति कौलिक प्रतिष्ठा की रक्षा की तादृश तत्परता नहीं देखी जाती। एक हीन कुलोत्पन्न सम्पन्न बी० ए० का वैवाहिक मूल्य हज़ारों रुपए था, किन्तु उसके प्रतिकूल श्रेष्ठकुलोत्पन्न दरिद्र वर का उतना आदर नहीं था। सभा के अन्तिम दिन तक अधिकांश उपन्यास (अर्थात् विवाह की बात-चीत) स्थगित ही रहते हैं। प्रत्येक पक्ष को यही आशा बनी रहती है कि 'अन्ततो गत्वा' कम ख़र्च में अच्छा घर-वर मिल ही जायगा। फलतः अन्त में बड़ी जल्दीबाज़ी की जाने लगती है और उस गड़बड़ी में कुलग्न और सुलग्न दोनों में विवाह हो जाता है। अधवेसू (अर्थात् न वृद्ध न युवा) उम्मीदवार (वर) जब लाल धोती पहने, आसन लगा कर बैठते हैं तो उनकी रसिकता का अन्त नहीं रहता। वर लोग प्रति क्षण अपने-अपने उपन्यासों के निश्चित होते-होते पुनः अनिश्चित हो जाने से कठिन मनोवेदना का अनुभव करने लगते हैं। पूर्व-काल में जातीय दण्ड-स्वरूप कन्याप्रद किम्वा वरप्रद द्रव्य ग्रहण करते थे, किन्तु अब जातीयता का विषय ताक़ पर रख दिया जाता है। वरप्रद अपने-अपने विभव और

सौराठ सभा का दृश्य नं० १

गौरव के अनुसार हज़ारों का तोड़ा गिनाने पर तत्पर हो गए हैं। ऐसी स्थिति में कहीं-कहीं कन्याप्रद वर को फुसलाने का यत्न भी करते हैं!

"सभा की परिस्थिति—सभा के समीप एक पोखरा और एक कुँआ है। दोनों का जल प्रायः पेय नहीं है, किन्तु आवश्यकता पड़ने से वही अमृत हो जाता है। सभागाछी में जीवन-यात्रा के आवश्यकीय पदार्थों का हाट-बाज़ार भी लग जाता है। मैथिलेतर प्रान्त के कितने लोगों की धारणा है कि सभागाछी में कन्या और वर दोनों उपस्थित होते हैं तथा यह लड़के-लड़कियों का मेला है। उन लोगों की ऐसी धारणा मूर्खतापूर्ण है। मिथिला के समान पर्दा-प्रेमी प्रान्त की सलज्जा कन्याएँ पितृ-गृह, मातृ-गृह किम्बा ससुराल को छोड़ कर केवल तीर्थस्थानों में ही जाती हैं। भला सभागाछी में वे क्यों आने लगीं? यह भ्रान्ति एकदम निर्मूल है। साथ ही साथ वृद्ध-विवाह, बहु-विवाह आदि जो कुछ वैवाहिक कुरीतियाँ समाज में प्रविष्ट हो गई थीं, सहर्ष कहना पड़ता है कि उनका अब अङ्कुर भी देखने में नहीं आता।"

इसके उपरान्त सभा द्वारा विवाह-प्रणाली के लाभा-लाभ का विचार करते हुए यह पत्र परामर्श देता है कि सभा में कुछ दुर्गुण अवश्य घुस पड़े हैं, किन्तु उनका सुधार होना आवश्यक है, इस संस्था का ही नाश करना उचित नहीं, क्योंकि इससे लाभ ही अधिक है। आगे यह इस प्रकार निष्कर्ष निकालता है:—

"निष्कर्ष विचार—अतः कहना पड़ता है कि जो कुछ दुर्गुण इस संस्था में घुस गए हैं, उनका निराकरण-परिचालन सुष्ठुरूप से किया जाय। यह प्राकृतिक नियम है कि कृत्रिम वस्तु का सुधार समय-समय पर किया जाय। प्राकृतिक वस्तु का सुधार स्वयं प्रकृति ही किया करती है, किन्तु मानव कृतियों की सुरक्षा मनुष्य ही से हो सकती है। प्रत्येक वस्तु यथा पोखरा, कुँआ, सड़क आदि की यदि दस वर्ष पर भी मरम्मत न की जाय तो वह क्या होकर रहेगी? अतः कहना पड़ता है कि सौराठ सभा मानुषी संस्था होने के कारण इसमें आपेक्षिक परिशोधन की और भी आवश्यकता है। कन्या देने का विषय, वर की पात्रता, कन्या और वर के प्रति द्रव्य-ग्रहण का निषेध, श्रोत्र तथा सदाचार का पालन, इत्यादि-इत्यादि विषयों के सुधारार्थ थोड़े ही यत्न की आवश्यकता है। आशा है, यदि श्रीमान मिथिलेश के सभापतित्व में एक प्रहर भी लगातार चार-पाँच वर्ष तक उपर्युक्त विषयों के ऊपर विचार हो तो अनायास ऐसी संस्था विलक्षण विचक्षण लोगों का सम्मेलन तथा सर्व-हितकारिणी हो जायगी।"

सुना आपने 'मिथिला-मिहिर' क्या कहता है? यह पत्र इतना नर्म और सनातनधर्म का पक्षपाती है कि मैथिल जनता में भी इसका प्रचार 'नहीं' के बराबर है। तथापि इस बार इसने सभा की वर्तमान अधोगति को देख कर इतना लिख ही डाला! हो सकता है 'चाँद' की ही समालोचनाओं से क्षुब्ध होकर इतना दोष स्वीकार करने पर यह पत्र बाध्य हुआ हो। हम इस स्पष्टवादिता
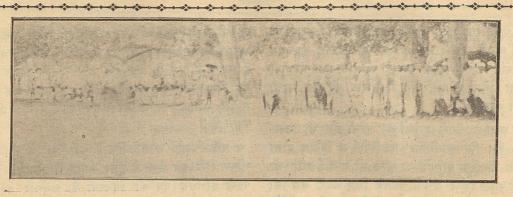
सौराठ सभा का दृश्य नं० २

के लिए इसकी प्रशंसा करते हैं और आशा करते हैं कि आगे यह और भी ज़ोरों से सुधार का समर्थन करेगा। किन्तु यथार्थ पूछिए तो इस संस्था में केवल इतनी ही गुञ्जाइश सुधार की नहीं है। एक मित्र, जो सभा से लौटे थे, यह कहते थे कि पहले तो वहाँ म्युनिसिपैलिटी का ही प्रबन्ध होना आवश्यक है। गवर्नमेण्ट इस सभा को सामाजिक सम्मेलन जान कर इसके कार्यों और प्रबन्ध में कुछ दख़ल नहीं देती है। किन्तु विचारने की बात है कि दो-दो सप्ताहों तक जहाँ लाखों मनुष्यों का जमाव रहता है, वहाँ खाने-पकाने, पाख़ाना-पेशाब से ही नहीं, वरन् थूकने-पीकने और चलने-फिरने से भी कितनी गन्दगी होती होगी। तिस पर भी यदि कोई प्रबन्ध जनता या गवर्नमेण्ट की ओर से सफ़ाई का न रहे, जैसा कि सभा में आमतौर से किसी साल नहीं रहता, तो हालत क्या होगी, इसका अन्दाज़ा आसानी से लगाया जा सकता है। वहाँ एक तालाब है, जिसे "लघियाही पोखर" कहते हैं, क्योंकि उसी में सब लोग लघुशङ्का (पेशाब) करते हैं। कहते हैं कि एक-एक बार कई सौ आदमी चारों ओर पानी के किनारे-किनारे बैठ कर पेशाब करते हैं और उसी अपवित्र पानी से शौच करके पवित्र होते हैं! यह क्रिया मेले के दिनों में अविराम बारह-चौदह घण्टे नित्य चला करती है। अन्तिम दिन तक उस पोखरे में इतना पेशाब जमा हो जाता है कि उसके पानी की सतह कई इञ्च ऊँची उठ आती है! फिर उसी जल से भोजन बनाना, उसी में नहाना और धोना कहाँ तक सनातनधर्म की रक्षा करना है, इसके विषय में क्या कहा जाय!!! यह तो एक ऐसा प्रश्न है, जिसका उत्तर कोई सनातनधर्मी मैथिल ही दे सकता है। पहले यह नियम था कि सौराठ और उसके आस-पास के गाँव वाले पहले ही से सभा की मेहमानदारी के लिए प्रस्तुत हो जाते थे। दिन भर सभा करके मेले के अधिकांश व्यक्ति उन्हीं गाँवों में किसी न किसी के यहाँ 'मान न मान, मैं तेरा मेहमान' वाली कहावत चरितार्थ करते थे। इसका नतीजा यह होता था कि मेले के दिनों में दरिद्र से दरिद्र ब्राह्मण के यहाँ भी नित्य तीस-चालीस व्यक्तियों का भोज हुआ करता था! जो लोग ज़रा धनी होते थे, उनकी हालत का तो कुछ पूछना ही नहीं। यद्यपि यह प्रथा आज भी बहुत कुछ बची हुई है, तथापि खाद्य पदार्थों की मँहगी के कारण लोगों में अतिथि-पूजा का वह पुराना उत्साह अब नहीं रहा और भलेमानस स्वयं भी किसी के यहाँ जाने में हिचकते हैं। इसलिए अब अधिक लोग अपने खाने-पकाने का प्रबन्ध स्वयं करते हैं। ऐसे लोग सभागाछी में ही रसोई बना लिया करते हैं। सफ़ाई का कोई प्रबन्ध तो होता नहीं, चारों ओर हाँड़ियों का ढेर लग जाता है, चूल्हों के कारण ज़मीन गड्ढों से भर जाती है, माँड़ और जूठी पत्तलों के इधर-उधर फैले रहने का कोई ठिकाना नहीं रहता है। पान और खैनी के कारण जिधर देखिए उधर ही की ज़मीन पीक और थूक से सनी रहती है। इसलिए लोगों को बैठने की जगह नहीं मिलती। अन्यान्य स्थानों की सभाओं में भी थोड़े बहुत ये दोष पाए जाते हैं, किन्तु कहीं भी म्युनिसिपैलिटी या सेवा-सङ्घ आदि की ओर से सफ़ाई का कुछ प्रबन्ध नहीं किया जाता। हम भारतीयों की दशा

ही ऐसी गई-गुज़री है कि हम सफ़ाई का महत्व तक नहीं जानते, किन्तु धार्मिक रीति से सफ़ाई का बहुत सा ढोंग रचते हैं ! हमें सफ़ाई का क-ख-ग-घ भी नहीं आता। ऐसी ही परिस्थिति में सौराठ की यह महती सभा लगती है !!

सभा के भीतरी दुर्गुणों का ब्योरा और भी भयानक है। 'मिथिला-मिहिर' की रिपोर्ट से विदित होता है कि वैवाहिक दुर्गुणों का अन्त हो गया है और जो थोड़े-बहुत दुर्गुण बचे हैं, उनके लिए अल्प श्रम की आवश्यकता है। इसमें शक नहीं कि वृद्ध-विवाह और बहुविवाह अब प्रायः नहीं होता है, फिर भी उसका समूल नाश नहीं हुआ है। सची बात तो यह है कि जहाँ वृद्ध-विवाह और बहुविवाह की कमी हुई है, वहाँ बाल-विवाह और तिलक की प्रथा बेहद बढ़ गई है। स्वयं 'मिहिर' भी इसे अस्वीकार नहीं कर सका कि ४१ प्रतिशत विवाहार्थियों में से २० प्रतिशत बच्चे ही होते हैं। यही नहीं, 'मिथिला' नाम की मासिक पत्रिका में एक वकील साहब ने लिखा है—"शिक्षित वरों के ग्राहक बहुत थे, किन्तु शिक्षित वर प्रायः सभी छात्रावस्था में ही थे। पाँच या सात व्यक्तियों को छोड़ और सब बारह से सोलह वर्ष के बीच की अवस्था में थे।" इसीसे अनुमान लगाया जा सकता है कि बाल-वरों की संख्या सभा में कितनी होगी। यथार्थ पूछिए तो मैथिल ब्राह्मणों में इस मेले के कारण लड़कों की नीलामी बोली बड़ी द्रुत गति से बढ़ रही है। शास्त्रों में यदि बाल-विवाह का कोई वचन पाया जाता है तो वह कन्याओं के लिए ही प्रयुक्त हुआ है, लड़कों के लिए नहीं। जब लड़कों के बाल-विवाह का सनातनधर्म ज़ोरों से विरोध करता है, तब यह आसुरी प्रथा इस समाज में कैसे बढ़ रही है, यह बात समझ में नहीं आती। उक्त वकील साहब लिखते हैं कि ये लड़के स्वयं विवाह से भागते थे, किन्तु उनके अभिभावकगण बलात् उन्हें विवाह-बन्धन में बाँध देते थे। वरों का दाम अधिक पाने के लिए उन्हें झूठ मूठ स्कूल या पाठशाला में भर्ती कराने का ढोंग भी रचा जाता है। फिर विवाह सम्पन्न हुआ नहीं कि उनकी पढ़ाई-लिखाई एकदम बन्द कर दी जाती है। प्राइमरी शिक्षा पाने वाले वरों की बोली साधारणतः एक हज़ार होती है। बहुत रोने-पीटने पर कहीं पाँच या सात सौ में सौदा तय हो पाता है। उच्च शिक्षित वरों का मूल्य तो विरला ही कोई दे सकता है। ऐसी स्थिति में उक्त वकील साहब का यह लिखना एकदम यथार्थ है कि यह प्रथा देख कर मैथिल-समाज का भविष्य बहुत अन्धकारमय दीख पड़ता है !!

बाल-विवाह और तिलक के अतिरिक्त एक और भी भीषण रोग इस सभा के द्वारा समाज में फैल रहा है। पहले हरिसिंह देव की व्यवस्था के अनुसार वर या कन्या-पक्ष वाले अपने कुल की बड़ाई-छोटाई के अनुसार एक-दूसरे से रुपया लेते थे। यह यथार्थ में वर या कन्या का मूल्य नहीं था, बल्कि उनके वंशों की प्रतिष्ठा का पुरस्कार था, किन्तु अब कन्या और वर का मूल्य बिलकुल बाज़ारू तरीक़े पर वसूल किया जाता है। अब उसमें वंश की प्रतिष्ठा का भाव बिलकुल नहीं रहा। जिस प्रकार लड़कों की अङ्गरेज़ी शिक्षा की योग्यता के अनुसार भिन्न-भिन्न श्रेणी का मूल्य कम या अधिक होता है, उसी प्रकार कन्याओं का मूल्य उनकी उम्र के अनुसार कम या बेशी होता है। जितने वर्षों की कन्या होती है, प्रायः उतने ही सौ रुपए उसका मूल्य होता है अर्थात् वह यदि ४ वर्ष की हुई तो ४००) और ५ वर्ष की हुई तो ५००) रुपए ऐंठे जाते हैं ! इस प्रकार अधिक मूल्य पाने के लिए छोटी-छोटी लड़कियाँ बड़ी उम्र की बतलाई जाती हैं। सभा में कन्या तो रहती ही नहीं कि उसे तत्काल देखा जा सके, इसलिए उसकी अनुपस्थिति से घटक और अभिभावक लोग खुल कर अनुचित लाभ उठाते हैं। घटक लोग अपनी दलाली पाने के लिए कन्याओं के युवती होने का वर्णन बड़ी वीभत्स, किन्तु रोचक रीति से करते हैं। उनके लम्बे-लम्बे बाल, बड़ी बड़ी आँखें और पूर्ण यौवना होने का इङ्गित इस प्रकार किया जाता है कि उम्मीदवारों के मुँह से लार टपकने लगती है और वे फ़ौरन अधिक मूल्य देने पर तैयार हो जाते हैं !! स्मरण रखना चाहिए कि ऐसे उम्मीदवार दूरदेशी गङ्गा पार के दक्षिण वाले धनी ब्राह्मण होते हैं अथवा इस पार के वे व्यक्ति होते हैं, जो धन और विद्या से वञ्चित हैं। ऐसे लोगों का विवाह होना बहुत ही कठिन हो गया है और अनेक व्यक्ति रुपए के अभाव से जन्म भर कुँवारे ही रह जाते हैं। वे

बेचारे पूरब में नौकरी करके या अपने खेत वग़ैरह बेच कर रुपए लाते हैं, इस पर भी यदि कमी रह जाती है तो सभा में अपने गाँव के किसी धनी आदमी से या कन्या-पक्ष से ही हैण्डनोट लिख कर ऋण लेते हैं ! तब कहीं जाकर उनके विवाह का निश्चय हो पाता है। इतना होने पर भी जब उन्हें विवाह के उपरान्त कन्या का दर्शन होता है तो उनकी सारी आशाओं पर पानी फिर जाता है और बहुधा अपने को धोखे में पाते हैं !! चाहे तो कन्या वैसी रूपवती नहीं होती, जैसा कि उन्हें बताया गया था अथवा उस उम्र की नहीं होती, जिसका मूल्य उन्होंने दिया है ! कहीं-कहीं दूसरी ही कन्या विवाह के लिए उपस्थित कर दी जाती है !! कहीं पर तो किसी लड़के के साथ ही झूठ-मूठ का विवाह करा दिया जाता है तथा किसी बहाने से दूल्हे को जल्दी विदा कर दिया जाता है, फिर पीछे उसे ख़बर दे दी जाती है कि लड़की मर गई ! परसाल एक मामला दरभङ्गा में इसी प्रकार का उठा था, जिसमें वर-पक्ष ने यह दावा उपस्थित किया था कि मुझसे १०००) या ८००) रुपए ठग कर एक लड़के के साथ मेरी शादी कर दी गई। सौभाग्य से कुछ ले-दे करके आपस में सुलह हो गई। यद्यपि इस प्रकार की ठगी बहुत कम होती है, फिर भी सभा की प्रथा के कारण इसमें कुछ साहाय्य अवश्य मिलता है। यदि इन सब आपत्तियों का ख़याल छोड़ भी दिया जाय तो विचारने की बात यह है कि दरिद्र लोग अपने बचे हुए खेत वग़ैरह बेच कर या जन्म भर की कमाई कन्या के मूल्य में देकर, उसको किस प्रकार अपने यहाँ सुख से रख सकते हैं ? और अनेक व्यक्ति, जो अविवाहित ही रह जाते हैं उनकी क्या गति होगी ?

'मिथिला-मिहिर' यद्यपि यह स्वीकार करता है कि २० प्रतिशत उम्मीदवार बच्चे ही रहते हैं, तथापि वह इन अमित बाल-विवाहों का कहीं ज़िक्र तक नहीं करता। मिथिला की पण्डित-मण्डली यद्यपि कन्या के बाल-विवाह के समर्थन में शास्त्रों की बाल की खाल निकालती रहती है, तथापि इन पण्डितों में से कोई यह आपत्ति करने का साहस नहीं करता है कि भई ! लड़कों का बाल-विवाह शास्त्र-विरुद्ध है, इसे क्यों करते हो ? वे जिस तत्परता से शारदा-क़ानून के खण्डन में व्यस्त हैं, यदि उसकी आधी या चतुर्थांश तत्परता भी इस ओर लगाई जाती तो कुछ सन्तोष का विषय था, किन्तु वे स्वयं इन शास्त्र-विरुद्ध, लोक-विरुद्ध और युक्ति-विरुद्ध बाल-विवाहों में हाथ बटाते हैं और अपने-अपने लड़कों का विवाह बारह-चौदह वर्ष की उम्र में कर डालते हैं ! इस प्रथा के बढ़ने से दूसरी आपत्ति यह उपस्थित हुई है कि कितनी लड़कियों का अपने समान या अपने से भी छोटे लड़कों के साथ गँठजोड़ हो जाता है। बाल्यावस्था में लड़कों की शादी हो जाने से उनके भविष्य पर तुषार-पात हो जाता है और जातीय शक्ति का क्षय होता है, किन्तु इस ओर किसी का कुछ भी ध्यान नहीं है। मैथिल महासभा ने एक छोटा सा आदेश-पत्र सभा में बँटवाया था, किन्तु उससे क्या होता है ? बाल-विवाह, तिलक और कन्या-विक्रय का बाज़ार गर्म ही रहा, यद्यपि इस वर्ष कन्या-विक्रय में बहुत कमी देखी गई। इसके अतिरिक्त, जैसा 'मिथिला-मिहिर' का कहना है, वस्तुस्थिति को छिपा लेना, ठगपनी करना, हड़बड़ी में पड़ कर कुलग्न-सुलग्न का ख़याल न रखना, विवाह को बाज़ारू सौदा बना देना आदि, इस प्रथा की आनुसङ्गिक बुराइयाँ हैं ! कुछ बातों को मिला कर देखने से इसे वैवाहिक मेला कहना कदापि असङ्गत नहीं है, तो भी 'मेले' के नाम से अच्छे-अच्छे मैथिल भी चिढ़ते हैं। इससे स्पष्ट है कि वे विवाह को मेले की चीज़ नहीं बनाना चाहते हैं, किन्तु तो भी हम यह कहने के लिए मजबूर हैं कि सचमुच के मेले इन वैवाहिक मेलों से अच्छे होते हैं, क्योंकि वहाँ वस्तुओं की ख़रीद-बिक्री होती है और यहाँ व्यक्तियों की ! यदि व्यक्तियों की ख़रीद-बिक्री अच्छी होती तो संसार की और-और जातियाँ भी करतीं। आजकल ऐसी बर्बरतापूर्ण प्रथा का नामोनिशान संसार से लगभग मिट चुका है। शायद प्राचीन काल में रोमन लोगों के यहाँ दासों और स्त्रियों की हाट लगती थी और कुछ असभ्य जातियों में अब भी लगती है, किन्तु सभ्य जातियों में तो ऐसी प्रथा कहीं नहीं दीख पड़ती है। सब से बड़े आश्चर्य की बात यह है कि मैथिल जनता को इस प्रथा में बुराई की अपेक्षा भलाई ही अधिक दीखती है। इतना तो सत्य है कि एक जगह भिन्न-भिन्न स्थानों के लोगों के एकत्र होने से वरान्वेषण में कन्या-पक्ष को सुविधा अवश्य होती है और यदि वे चाहें तो इस संस्था का सदुपयोग कर सकते हैं—बहुत आदमी करते

भी हैं—तथापि इससे वर्तमान समय में लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक है।

आजकल अधिकांश व्यक्ति मूर्ख और धर्महीन हैं, स्वार्थ के लिए सब कुछ कर सकते हैं। जब तक मैथिल जाति इस प्रथा को घृणित नहीं समझती है, तब तक इसके निराकरण का उपाय सोचना व्यर्थ है। हाँ, इसके सुधार पर विशेष ध्यान देना निस्सन्देह आवश्यक है। 'मिहिर' के लेखानुसार इसके लिए अल्प श्रम की आवश्यकता है। परन्तु यह कथन कदापि ठीक नहीं है। वस्तुतः मैथिल जाति के समक्ष वैवाहिक सुधार का महान प्रश्न उपस्थित है, जिसका उत्तर किसी ज़बरदस्त सङ्गठनात्मक क्रिया से ही मिल सकता है। जिस प्रकार विदेशी कपड़ों के बहिष्कार के लिए चारों ओर पिकेटिङ्ग जारी है, उसी प्रकार यहाँ भी इन कुरीतियों के विरुद्ध ज़बरदस्त सत्याग्रह की आवश्यकता है। यह काम सुधार-प्रिय मैथिल युवकों को अपने हाथ में लेना चाहिए, उन्हें इसके लिए महान परिश्रम करना चाहिए, स्वयं सभा में जाकर उपदेश द्वारा तथा लैण्टर्न स्लाइड आदि के ज़रिए इन बुराइयों का दुष्परिणाम दिखलाना चाहिए और प्रत्येक विवाह पर कड़ी दृष्टि रखना चाहिए, शारदा-क़ानून की उपयोगिता लोगों को समझानी चाहिए, इसका विरुद्धाचरण करने वालों को सामाजिक दण्डों का भय दिखाना चाहिए और यदि वे केवल भय दिखाने से न मानें तो उन्हें सचमुच दण्ड भी दिलाना चाहिए। धीरे-धीरे यह आदर्श उपस्थित करना होगा कि सभा के बाहर—'शुद्ध' के पहले ही—वर-वर देख कर विवाह का निश्चय करना इससे श्रेयस्कर है।

वेदना

[कुमारी बिजली बाला बसु]

(१)

जीवन की नीरस घड़ियों में
मेरी हृत्तन्त्री के तार!
कौन किया करता है तुझ पर
भाँति-भाँति के अत्याचार?

(२)

उन घड़ियों में बैठ किसे तू
ऐ मेरे उर के झङ्कार!
सदा सुनाया करता छिप कर
अपनी मर्मव्यथा का सार?

(३)

कितने दुःख भरे स्वर में तू
अपनी कथा सुनाता है?
करुण रागिनी में क्यों विह्वल
राग पहाड़ी गाता है?

(४)

कितने रात्रि-दिवस तू ने
जग कर काटे हैं कितनी बार!
रो-राकर गूँथा है तू ने
आँसू के सुमनों का हार॥

(५)

सन! रह मौन सहो तुम निशिदिन
जग का यह निष्ठुर व्यवहार!
फटे हुए अञ्चल में 'बिजली'
सञ्चित कर ले यह उपहार!!

सुशिक्षा

[श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक]

अब तो सुमित्रा का विवाह हो जाना चाहिए।"

"हाँ, विवाह तो होना ही चाहिए, परन्तु × × ×।"

"परन्तु क्या?"

"मैट्रिक की परीक्षा का नतीजा निकल आवे।"

"सो तो निकल ही आवेगा।"

मई मास की दोपहर का समय है। एक बड़े कमरे में बिजली के पङ्खे के नीचे बैठे हुए एक प्रौढ़ा स्त्री तथा एक प्रौढ़ पुरुष परस्पर उपर्युक्त वार्त्तालाप कर रहे हैं। स्त्री के इस वाक्य पर कि "सो तो निकल ही आवेगा" पुरुष ने कहा—"निकल तो आवेगा, परन्तु यह भी तो देखना है कि सुमित्रा पास होती है अथवा फ़ेल।"

"यदि फ़ेल हो गई तो क्या करोगे?"—स्त्री ने पूछा।

"तो एक साल और पढ़ावेंगे। कम से कम उसे मैट्रिक तो पास कर ही लेना चाहिए, अन्यथा मैट्रिक तक पढ़ाने से क्या लाभ होगा?"

"उसे नौकरी करनी है क्या?"

"नौकरी न करनी हो तब भी मैट्रिक पास तो हो ही जाना चाहिए।"

"लड़की सयानी बहुत हो गई, यह समझ लो। इस वैशाख से सत्रहवें बरस में पड़ी है।"

पुरुष हँस पड़ा, बोला—तो इससे क्या हुआ? सत्रह-अठारह वर्ष से कम में तो विवाह होना ही न चाहिए।

"कहाँ आठ-नौ बरस में विवाह हो जाता था, कहाँ सत्रह-अठारह पर नौबत पहुँच गई।"

"आठ-नौ वर्ष की उम्र में होता था तभी तो सारी ख़राबियाँ थीं।"

"न कहीं ख़राबी थी। क्या ख़राबी थी?"

"विधवाएँ अधिक होती थीं, लड़कियों का स्वास्थ्य बिगड़ जाता था, समय के पूर्व बच्चे होते थे, अतएव दुर्बल तथा अल्पायु होते थे, तीस वर्ष के भीतर ही स्त्रियाँ वृद्धा हो जाती थीं।"

स्त्री ने मुस्करा कर कहा—अब कहने को चाहे जो कहो, मेरा ब्याह भी तो दस बरस की उमर में हुआ था, मैं कौन बूढ़ी हो गई या मेरा स्वास्थ्य ख़राब हो गया?

"अपनी बात जाने दो, वह समय ही और था।"

"वही समय अब भी है।"

"हम लोग कितने संयम से रहे हैं, यह भी पता है? इतना संयम इस ज़माने में कोई कर सकता है?"

"समझदार करते ही हैं।"

"समझदार शिक्षा से ही होता है। इसीलिए आजकल भली भाँति शिक्षा देने के पश्चात् विवाह करना चाहिए।"

"सारी उमर शिक्षा ही दिए जाय, बस?"

"सोलह-सत्रह वर्ष अधिक नहीं होते।"

"ख़ैर, तुम जानो, मुझे जो कुछ ठीक जँचा वह मैंने कह दिया। अपने-पराए नित्य टोकते हैं।"

"टोकने दो। हमें अपनी समझ से काम करना चाहिए, दूसरों की समझ से नहीं।"

दोनों मौन हो गए। इसी समय हठात् कमरे के द्वार पर पद-शब्द सुनाई पड़ा। स्त्री ने चौंक कर द्वार की ओर ताकते हुए पुकारा—सुमित्रा!

द्वार पर से मधुर स्वर में किसी ने कहा—हाँ माता जी।

"चली आ बेटी, बाहर क्यों खड़ी है।" द्वार पर की चिक उठी और एक षोड़शी ने कमरे में प्रवेश किया। षोड़शी का वर्ण गौर तथा नख-शिख साधारणतया सुन्दर था। वह आकर शिष्टतापूर्वक माता के समीप बैठ गई।

थोड़ी देर तक तीनों आदमी चुप बैठे रहे। हठात् पुरुष ने कहा—तेरा रिज़ल्ट आने ही वाला है?

षोड़शी ने कहा—हाँ, तीन-चार दिन में आ जावेगा।

"तू तो पास हो ही जावेगी?"

"देखिए, आशा तो ऐसी ही है।"

स्त्री बोल उठी—मैंने तो सत्यनारायण की कथा

मान रक्खी है। भगवान पास कर दे, पढ़ाई से छुट्टी तो मिले।

सुमित्रा बोल उठी—अभी छुट्टी कैसे मिलेगी, अभी तो बी० ए० पास करना है।

इतना सुन कर पुरुष ने स्त्री की ओर एक मर्मभेदी दृष्टि डाली। वह दृष्टि स्त्री से मौन-भाषा में कह रही थी, अब कहो?

स्त्री बोली—बी० ए०, वी० ए० कुछ नहीं, इतना पढ़ लिया, बहुत है।

सुमित्रा ने कहा—वाह! अभी मैंने पढ़ा ही क्या है? असली पढ़ाई तो कॉलेज में आरम्भ होती है।

"होती हो चाहे न होती हो, अब तेरा पढ़ना नहीं होगा। क्या सारी उमर पढ़ा ही करेगी?"

"सारी उमर क्यों, केवल चार वर्ष की बात और रह जायगी।"

"चार बरस कुछ होते ही नहीं?"

"चार वर्ष पलक झपकते बीत जाते हैं।"

"हूँ, बीत जाते हैं, कहने में कुछ लगता है? विवाह हो जायगा तो चार वर्ष में दो बच्चों की माँ हो जायगी।"

सुमित्रा ने लज्जावश अपना सिर नीचा कर लिया। पुरुष ने मुस्कराते हुए कहा—तेरी माँ को तेरे विवाह की बड़ी जल्दी है।

सुमित्रा की माता बोली—हाँ, हाँ, मुझे जल्दी है, तुम्हें जल्दी थोड़ा है, तुम तो बुढ़ापे में विवाह करोगे!

सुमित्रा मुख नीचा किए हुए धीमे स्वर में बोली—अभी से विवाह की कौन जल्दी है?

"तुझे जल्दी नहीं है कि हमें?"—सुमित्रा की माता बोली।

"मैं बी० ए० पास करने के पहले विवाह ही न करूँगी।"—सुमित्रा ने उसी प्रकार मुख नीचा किए हुए कहा।

"हाँ, न करेगी, बाप की शह पा रही है न!"

पुरुष ने मुस्करा कर कहा—मेरी शह क्यों पा रही है? यह तो उसकी इच्छा की बात है।

"चलो, बस रहने दो। सारा काम इसी की इच्छा से होगा, हम तो जैसे कोई चीज़ ही नहीं।"

"यह कौन कहता है, तुम तो बहुत बड़ी चीज़ हो।"—सुमित्रा के पिता ने मुस्करा कर कहा।

"बड़ी चीज़ होने से क्या होता है, मेरी कोई सुनता है?"

"ढङ्ग की बात कहोगी तो अवश्य सुनी जायगी।"

"तो मैं सब बेढङ्गी ही कहती हूँ?"

"तुम्हें दूसरे की इच्छाओं और अभिलाषाओं का भी ध्यान रखना चाहिए।"

"जो बात उचित होगी उसका ध्यान रक्खा जायगा, बेढङ्गी बातों का ध्यान नहीं रक्खा जाता।"

सुमित्रा ने सिर उठा कर दृढ़तापूर्वक कहा—माता जी, मैं बी० ए० तक तो अवश्य पढ़ूँगी।

"ज़बरदस्ती पढ़ेगी?"

"नहीं, ज़बरदस्ती नहीं, आपकी आज्ञा से।"

"मैं तो ऐसी आज्ञा देने से रही।"

"क्यों?"—सुमित्रा ने पूछा।

"सबसे पहली बात तो यह है कि अब तेरा विवाह होना चाहिए। विवाह होने के पश्चात् तेरी ससुराल वाले चाहें तो तुझे उमर भर पढ़ावें, हमें कोई आपत्ति नहीं।"

सुमित्रा के पिता ने कहा—ससुराल वाले तो पढ़ा चुके।

"आवश्यकता क्या है, इसे नौकरी करना है क्या?"

"शिक्षा, शिक्षा के लिए होती है, नौकरी के लिए नहीं।"—सुमित्रा के पिता ने कहा।

"होती होगी, हमें क्या करना है?"

"चाहे जो हो, मैं बी० ए० तक अवश्य पढ़ूँगी—"। इतना कह कर सुमित्रा वहाँ से उठ गई।

२

सुमित्रा के पिता पं० लक्ष्मणप्रसाद मिश्र एडवोकेट एक प्रतिष्ठित वकील हैं। उनके केवल दो सन्तान हैं, एक सुमित्रा, दूसरा एक पुत्र, जिसका वयस ८-६ वर्ष के लगभग है।

मिश्र जी सुधरे हुए विचारों के आदमी हैं। अपनी कन्या सुमित्रा को उच्च शिक्षा देना उनके जीवन की एक महत्वाकांक्षा थी। परन्तु उनकी अर्द्धाङ्गिनी उनकी इस महत्वाकांक्षा की पूर्ति में बाधा डालती थी। उनकी पत्नी चाहती थी कि सुमित्रा का विवाह शीघ्र से शीघ्र हो जाय। परन्तु सुमित्रा की हार्दिक इच्छा यह थी कि वह कॉलेज की शिक्षा प्राप्त करे, और सुमित्रा के पिता भी

यही चाहते थे। विवाह होने के पश्चात् शिक्षा प्राप्त करना असम्भव हो जायगा, इस कारण मिश्र जी सुमित्रा के विवाह के सम्बन्ध में निश्चेष्ट थे।

सुमित्रा ने मैट्रिक क्लास प्रथम श्रेणी में पास किया, इससे सुमित्रा और उसके पिता दोनों का उत्साह बढ़ गया। माता के विरोध करते रहने पर भी सुमित्रा कॉलेज में प्रविष्ट हो गई। माता बेचारी विवश होकर बैठ रही। दो शक्तियों के सामने उसकी शक्ति व्यर्थ हो गई।

एक दिन मिश्र जी के कनिष्ठ भ्राता पं० शङ्करप्रसाद आए। पं० शङ्करप्रसाद नौकरी पेशा आदमी थे और बाहर रहा करते थे। जिस समय वह आए उस समय मिश्र जी कचहरी गए हुए थे और सुमित्रा कॉलेज।

शङ्करप्रसाद ने भावज से पूछा—सुमित्रा नहीं दिखाई पड़ती?

भावज ने रूखेपन के साथ उत्तर दिया—कॉलेज गई है।

"हैं! कॉलेज गई है? क्या कॉलेज में पढ़ती है?"

"हाँ, कॉलेज में पढ़ती है।"—भावज ने यह वाक्य स्पष्ट व्यङ्ग्य के साथ कहा।

"कॉलेज में पढ़ाने की कौन आवश्यकता थी? विवाह कब होगा?"

"पहले पढ़ तो ले, विवाह हो चाहे न हो।"

"अब तो सोलह-सत्रह वर्ष की हो गई होगी?"

"सत्रहवें में पड़ी है।"

"तब तो अब शीघ्र से शीघ्र विवाह होना चाहिए।"

"होना तो सब कुछ चाहिए; पर कोई देखे और समझे तब तो।"

"तुमने नहीं कहा?"

"मेरी कोई सुनता है? मुझे तो मूरख समझते हैं। वे दोनों बाप-बेटी एक हो गए, मेरी कुछ नहीं चली। और चले कैसे? वे दोनों पढ़े-लिखे हैं, मैं गँवार हूँ।"

"भाई साहब यह बात बेजा कर रहे हैं।"

"बेजा तो ऐसी कर रहे हैं कि भगवान ने चाहा तो हाथ मल कर पछताएँगे।"

"और क्या, बहुत सयानी हो जायगी तो फिर विवाह होना कठिन हो जायगा।"

"जो कुछ भाग्य में बदा है वह होगा, किया क्या जाय!"

"भाई साहब को आने दो, मैं कहूँगा।"

"कहना, शायद तुम्हारे कहने से ही कुछ प्रभाव पड़े, मैं तो कह कर हार गई।" शाम को जब मिश्र जी कचहरी से वापस आए तो शङ्करप्रसाद ने कुछ देर तक इधर-उधर की बातें करने के पश्चात् पूछा—सुमित्रा के विवाह की बातचीत कहीं लगी है?

मिश्र जी मुस्करा कर बोले—अभी तो वह पढ़ ही रही है, अभी विवाह की कौन जल्दी है?

"सुमित्रा के लिए कॉलेज की शिक्षा तो अनावश्यक थी।"

"क्यों, अनावश्यक क्यों थी?"

"आवश्यकता ही क्या थी?"

"यदि लड़कों के लिए कॉलेज की शिक्षा आवश्यक है तो लड़कियों के लिए भी है। जो लड़कों के लिए अमृत है वही लड़कियों के लिए भी है। जो लड़कों के लिए विष है वही लड़कियों के लिए भी है।"

"विष और अमृत की बात दूसरी है। मैं तो शिक्षा की बात कह रहा हूँ।"

"वही बात शिक्षा के लिए भी लागू है।"

"क्या आप यह नहीं सोचते कि लड़की का वयस अधिक हो गया तो विवाह में अड़चन पड़ेगी?"

यह बात सुन कर मिश्र जी बहुत हँसे, हँसते हुए बोले—तुम पढ़े-लिखे होकर ऐसी बात कहते हो? ऐसी सुशिक्षित लड़की से अपने लड़के का विवाह करने में लोग अपना सौभाग्य समझेंगे। जिस समय यह बी० ए० पास कर लेगी उस समय देखना लोग कैसे लालायित होते हैं।

"मुझे इसमें थोड़ा सन्देह है।"

"तुम्हें बिलकुल सन्देह न होना चाहिए।"

"ख़ैर, यह अपना-अपना विचार है। मुझे तो यह बात अच्छी नहीं लगी। यह वयस विवाह का है, इस वयस में विवाह अवश्य हो जाना चाहिए।"

"यह कोई आवश्यक बात नहीं है!"

"अभी तक तो आवश्यक ही रही है।"

"हाँ, परन्तु अब ज़माना उन्नति कर रहा है।"

"ख़ैर, मैं इस विषय पर आपसे बहस नहीं करना चाहता। मेरे विचार बहस से नहीं बदल सकते।"

"यह तुम्हारी सङ्कीर्णता है।"

"जो कुछ समझिए।"

"समझना क्या? दो ही रास्ते हैं, या तो मान लो या मनवा दो।"

"न मैं मान सकता हूँ और न मनवा सकता हूँ। दोनों बातें मेरी सामर्थ्य के बाहर हैं।"

"तब इस विषय पर कुछ कहना-सुनना बिल्कुल व्यर्थ है।"

"अच्छी बात है, न कहूँगा।"

इसके पश्चात् फिर दोनों में इस विषय पर कोई वार्त्तालाप नहीं हुआ।

अवसर पाकर भावज ने देवर से पूछा—क्यों, बातचीत की थी?

"हाँ, की थी, परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ।"

"मैं तो जानती ही थी, वह किसी की मानने वाले नहीं हैं।"

"क्या कहूँ, भाई साहब बड़ी भूल कर रहे हैं। अभी उन्हें नहीं जान पड़ता, परन्तु आगे चल कर पता लगेगा।"

"मेरी जान को आफ़त होगी।"—सुमित्रा की माता बोली।

"इसमें क्या सन्देह है।"

"इसीसे मैं तो रात-दिन यही मनाती रहती हूँ कि भगवान मुझे बुला ले।"

"ख़ैर, इन बातों से कोई लाभ नहीं। जो पड़े उसे धैर्य के साथ सहन करना चाहिए। और यह कोई आवश्यक नहीं कि जो कुछ हम-तुम सोचते हैं वैसा ही हो। सम्भव है, ईश्वर सब अच्छा ही करे। कम से कम आशा ऐसी ही रखनी चाहिए।"

"मैं भी भगवान से यही मनाती रहती हूँ कि जो कुछ हो, अच्छा ही हो। भूल तो हो ही रही है।"

"भूल तो बहुत बड़ी हो रही है।"

३

तेईस वर्ष के वयस में सुमित्रा ने बी० ए० की डिगरी प्राप्त कर ली। दो बार वह फ़ेल हुई—एक बार सेकेण्ड इयर में और एक बार फ़ोर्थ इयर में। इस समय सुमित्रा देवी पूरी लेडी बनी रहती हैं। आँखों पर चश्मा चढ़ा रहता है, जो आवश्यकता की अपेक्षा अधिकतर शृङ्गार के विचार से धारण किया गया है; क्योंकि चश्मा लगाना सुशिक्षितों का शृङ्गार है। ऊँची एड़ी का शू पैरों को सुशोभित करता है। जिस समय सुमित्रा देवी अपने इन सुशिक्षा के चिन्हों से सुसज्जित होकर निकलती हैं, उन्हें संसार तृणवत् दिखाई पड़ता है। पुरुष-जाति उन्हें स्वार्थी तथा स्वेच्छाचारी दिखाई पड़ती है और स्त्री-जाति (अपने को छोड़ कर) मूर्ख और गँवार।

सुमित्रा देवी ने लड़कों के साथ कॉलेज में शिक्षा प्राप्त की थी, इस कारण उनमें स्त्रियोचित लज्जा की मात्रा बहुत कम हो गई थी। और मुख पर कर्कशता तथा धृष्टता का रङ्ग चढ़ गया था। अब मिश्र जी को सुमित्रा के विवाह की चिन्ता उत्पन्न हुई। वह शीघ्र से शीघ्र उसका विवाह कर डालने को उद्यत थे। प्रतिष्ठित और धनाढ्य आदमी थे, इस कारण प्रभावशाली भी यथेष्ट थे। उनका सङ्केत होते ही लोग चारों ओर लड़के की खोज करने लगे। सुशिक्षित लड़की के लिए लड़का भी सुशिक्षित होना चाहिए, इस कारण लड़का मिलने में कुछ विलम्ब लगा। अन्त में एक लड़का ऐसा मिल गया जो सुशिक्षित भी था और कुल इत्यादि की दृष्टि से मिश्र जी के मनोनुकूल था।

लड़के के पिता पं० गजाधरप्रसाद शुक्ल ने यह कहा कि हमें तो सम्बन्ध करने में कोई आपत्ति नहीं है, एक बार हम अपने बड़े भाई साहब से परामर्श कर लें।

अपने भाई साहब से परामर्श करने के लिए शुक्ल जी को समय दिया गया।

बड़े भाई से वार्त्तालाप होने पर उन्होंने पूछा—लड़की का वयस क्या है?

"तेईस वर्ष की है।"—शुक्ल जी ने उत्तर दिया।

"हैं! तेईस वर्ष की! बहुत सयानी हो गई, अभी तक विवाह क्यों नहीं किया गया?"

"अभी तक पढ़ती रही। बी० ए० पास है।"

"अच्छा!"

"हाँ, साधारण लड़की थोड़ी ही है।"—बड़े भाई साहब ने सिर हिलाया और कुछ मुस्कराए।

शुक्ल जी ने पूछा—क्यों, क्या बात है?

"बात कुछ नहीं; परन्तु यह सम्बन्ध नहीं होगा।"

"क्यों?"

"लड़की बहुत सयानी हो गई है और लड़कों के साथ पढ़ती रही है।"

शुक्ल जी ने सिर झुका लिया। थोड़ी देर तक विचार करने के पश्चात् बोले—आपका कथन यथार्थ है, यह सम्बन्ध नहीं होना चाहिए।

"समझ गए न? मेरा विचार ग़लत तो नहीं है?"

"नहीं, आपका विचार ठीक है।"

"सुशिक्षित लड़की लेकर हमें करना क्या है, कुछ नौकरी तो कराना नहीं है? हमारे लिए तो इतना ही यथेष्ट है कि हिन्दी भली-भाँति पढ़-लिख लेती हो, कुछ अङ्गरेज़ी भी जानती हो तो हर्ज नहीं, और गृह-कार्य में कुशल हो।"

"ठीक है?"

"सुशिक्षित लड़कियों की अपने पति से बहुत कम पटती है, क्योंकि वे बात-बात में अपनी सुशिक्षा और अधिकारों को पेश करती हैं।"

"आपका विचार ठीक है।"

इस प्रकार अपने बड़े भाई से परामर्श करने के पश्चात् शुक्ल जी ने सम्बन्ध करने से इन्कार कर दिया।

शुक्ल जी की अस्वीकृति पाकर मिश्र जी को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्हें स्वप्न में भी यह आशा नहीं थी कि उनकी सुमित्रा जैसी सुशिक्षिता कन्या से कोई भी समझदार आदमी अपने लड़के का विवाह करना नापसन्द करेगा। इसके प्रतिकूल उन्हें यह आशा थी कि सुमित्रा से विवाह करने के लिए लोग लालायित हो उठेंगे। अन्त में उन्होंने सोचा कि शुक्ल जी पुराने आचार-विचार के आदमी हैं, अतएव एक सुशिक्षिता कन्या से अपने लड़के का विवाह करने में भय खाते हैं। आधुनिक सुधरे हुए आचार-विचार के मनुष्य विवाह-सम्बन्ध करने के लिए सहर्ष तैयार हो जाएँगे।

यह सोच कर उन्होंने नवीन उत्साह के साथ पुनः वर की खोज आरम्भ की।

परन्तु उन्हें इस बार भी हतोत्साहित होना पड़ा। जहाँ कहीं भी उन्होंने विवाह की बातचीत की, वहीं से उन्हें टका-सा जवाब मिला। अब वह धैर्यच्युत होने लगे।

एक दिन उन्होंने अपने एक मित्र से बातचीत करते हुए कहा—मुझे नहीं मालूम था कि संसार में इतने मूर्ख लोग हैं कि गुण की क़द्र करना भी नहीं जानते।

मित्र ने कहा—वे गुण समझें तब तो क़द्र करें? जिसे आप गुण समझते हैं उसे वे अवगुण समझते हैं।

"ओफ़ ओह! इस मूर्खता का भी कुछ ठिकाना है!"

"इसमें थोड़ी कठिनता यह पड़ गई कि एक तो लड़का लड़की के बराबर पढ़ा-लिखा होना चाहिए, दूसरे उम्र में भी साल-दो साल बड़ा होना चाहिए।"

मिश्र जी बोले—तो यह कौन कठिन बात है? सुशिक्षित लड़कियाँ नहीं मिलतीं, लड़के तो तमाम हैं। लड़कों की कमी थोड़ा ही है, कमी साहस और समझ की है।

"यदि कोई सुशिक्षित लड़का स्वतन्त्र विचार का हो अर्थात् वह अपने माता-पिता की परवा न करे, तो वह विवाह कर सकता है, अन्यथा कान्यकुब्जों में ऐसे लोग तो बहुत कम निकलेंगे जो इतनी सयानी लड़की से अपने लड़के का विवाह करने को तैयार हो जावें।"

"सयानी हो गई तो कुछ पाप किया है, घर में बैठे-बैठे सयानी थोड़ी हो गई।"

"यह ठीक है, परन्तु जब कोई समझे तब न?"

"न समझें तो अपनी ऐसी-तैसी में जायँ, मैं अन्तर्जातीय विवाह कर दूँगा।"

"इसका आपको पूर्ण अधिकार है, शौक़ से कीजिए।"

"मुझे नहीं मालूम था कि हमारी जाति में इतने सङ्कुचित विचार के लोग भरे पड़े हैं। तमाशा यह है कि जिन्हें मैं सुशिक्षित और सुधरे हुए विचारों का समझता था, वे भी बग़लें झाँकते हैं।"

"यही बात है। हाथी के खाने के दाँत और, दिखाने के और होते हैं। दूसरों को उपदेश देने या दूसरों की खिल्ली उड़ाने के लिए लोग बड़ी जल्दी तैयार हो जाते हैं, परन्तु जब अपने ऊपर पड़ती है तो बग़लें झाँकने लगते हैं। संसार इसी का नाम है।"

"ऐसे संसार को दूर से नमस्कार है।"

अन्त में सब ओर से निराश होकर एक दिन उन्होंने सुमित्रा की माता से कहा—सुमित्रा से विवाह करने के लिए तो कोई माई का लाल तैयार नहीं होता, अब क्या किया जाय?

सुमित्रा की माता बोली—मैं तो पहले ही कहती

थी कि अब न पढ़ाओ, ब्याह कर दो। परन्तु तुम न माने, अब मैं क्या बताऊँ ?

"अरे तो मैं क्या जानता था कि लोग इतने मूर्ख हैं ?"

"मूर्खता की बात नहीं, चलन की बात है।"

"ख़ाक चलन की बात है ! इसमें चलन काहे का है ? बात सारी यह है कि हमारी जाति बड़े सङ्कुचित विचारों की जाति है। इसीलिए यह ख़राबी है।"

"जब लोगों को कम उम्र की, अच्छी पढ़ी-लिखी और गृह-कार्य में चतुर लड़कियाँ मिलती हैं, तो इतनी सयानी लड़की से वह क्यों विवाह करें ?"

"बी० ए० पास लड़की मिलती है ?"

"बी० ए० पास लेकर किसी को क्या करना है ?"

"हाँ, गँवारों को बी० ए० पास लड़की लेकर क्या करना है ?"

"दुनिया में सब गँवार ही तो बसते हैं। लाख वह मेरी लड़की है, पर बात साफ़ ही कहूँगी। घर का काम-काज उसे रत्ती भर नहीं आता। मुझे वह समझती ही नहीं कि किस खेत की मूली है। रात-दिन किताबें लिए बैठी रहती है। पानी भी कोई दूसरा पिलाए तभी पिए, नहीं प्यासी ही बैठी रहे। घमण्ड इतना हो गया है कि अपने आगे किसी को कुछ समझती ही नहीं। ऐसी लड़की को लेकर कौन आफ़त मोल ले ? इसके अतिरिक्त लड़कों के साथ पढ़ी है, लोग सौ तरह की बातें सोचते हैं। इतनी सयानी लड़की और लड़कों के बीच में चार-पाँच बरस रही, यह कोई अच्छी बात है ? यदि मेरा लड़का होता तो मैं भी ऐसी लड़की से उसका विवाह करने को तैयार न होती। अभी उस दिन पड़ोस की एक स्त्री आई थी। कहती थी कि उसके पति ने सुमित्रा को सन्ध्या समय दो लड़कों के साथ जाते देखा था। यह तो दशा है, फिर भी दूसरों को दोष देते हो। मैं तो अभी तक अपने मुँह पर ताला लगाए बैठी थी, आज बात पड़ी तब कहना पड़ा। अपना दाम खोटा, परखने वाले का क्या दोष ? भाग्य में यह देखना भी बदा था।"

इतना कहते-कहते सुमित्रा की माता के नेत्रों से अश्रुपात होने लगा।

पत्नी की बात सुन कर मिश्र जी अवाक् हो गए, उनके मुँह से एक शब्द भी न निकला।

सुमित्रा की माता आँसू पोंछते हुए बोली—जिस समय पड़ोसिन ने लड़कों के साथ सुमित्रा के घूमने की बात कही थी, उस समय यही इच्छा होती थी कि धरती फट जाय और मैं उसमें समा जाऊँ।

इस बार मिश्र जी गला साफ़ करके बोले—तो इसमें हर्ज क्या है ? शिक्षित लड़कियों से यह आशा कैसे हो सकती है कि वे घर में क़ैदी बन कर रहेंगी ?

"हर्ज न हो, पर कहने वालों की जीभ तो नहीं पकड़ी जा सकती और देखने में भी बुरा लगता है। सयानी लड़की का लड़कों के साथ घूमना कोई अच्छी बात नहीं। हाँ, घर का कोई बड़ा-बूढ़ा साथ हो तो कोई हर्ज नहीं।"

मिश्र जी विचार में पड़ गए। कुछ देर तक विचार करने के पश्चात् बोले—निस्सन्देह लड़कियों को उच्च शिक्षा देने में यह अड़चन अवश्य पड़ती है। अभी हमारा समाज इतना उन्नत नहीं हुआ कि इन बातों को सीधी दृष्टि से देख सके।

"उन्नत हो भी जाय तब भी यह तो कभी अच्छा नहीं समझा जा सकता कि सयानी लड़कियाँ लड़कों के साथ बेरोक-टोक घूमें।"

"ख़ैर, यह तो सब ठीक है; पर अब सुमित्रा के विवाह के लिए क्या उपाय किया जाय ?"

"मैं क्या बताऊँ, मैं पर्दे में बैठने वाली क्या कर सकती हूँ ?"

"अब केवल दो उपाय हैं—या तो ग़ैर जाति में विवाह किया जाए या तो लड़की को डॉक्टरी-वकालत पढ़ाया जाय।"

"ग़ैर जाति में विवाह कैसा ?"

"यही दूसरे ब्राह्मणों में, क्षत्री अथवा वैश्यों में।"

मिश्र जी की पत्नी ने पति की ओर इस प्रकार देखा मानो पति की इस बात को उपहास समझ रही हो। उसने कहा—क्या उलटी-पलटी बातें कहते हो, मुझे ऐसी हँसी अच्छी नहीं लगती।

"हँसी नहीं, ऐसा होता है।"

पत्नी नेत्र विस्फारित करके बोली—नीच जातियों में होता होगा, भले आदमियों में कभी न होता होगा।

"भले आदमियों में भी होता है।"

इतना कह कर मिश्र जी ने कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों के उदाहरण पेश किए।

सब सुन कर पत्नी बोली—होता होगा, हमसे यह नहीं होगा। कुँवारी बैठी रहे वह अच्छा ; पर ग़ैर जाति से ब्याह नहीं करेंगे।

"पहले लड़की से भी तो पूछो कि उसके क्या इरादे हैं। वह कुँवारी बैठना चाहेगी तब तो बैठेगी। तुम्हारे बिठाए से थोड़ा ही बैठेगी ?"

"बैठेगी नहीं तो जायगी कहाँ ? मनमानी करेगी तो यहाँ रहने पायगी ?"

"मेरी समझ में तो अब यही अच्छा है कि जब स्वतन्त्र किया है तो पूरी तरह स्वतन्त्र कर देना चाहिए, जो उसकी इच्छा हो, वह करे।"

"ख़ैर आज पूछूँगी, देखूँ क्या कहती है।"

दूसरे दिन सुमित्रा की माता ने पति से कहा—मैंने सुमित्रा से बात की थी। उसे तो विवाह की बिल्कुल चिन्ता नहीं है।

"तो फिर करना क्या चाहती है ?"

"वह कहती है कि वकालत पढ़ूँगी।"

"तो फिर क्या राय है ?"

"जैसी तुम्हारी राय हो।"

"मैं अपनी राय तो बता चुका। मेरी राय में तो उसे वकालत पढ़ा कर पूर्णतया स्वतन्त्र कर दो। यदि उसे विवाह करना होगा तो वह अपना पति स्वयम् ढूँढ लेगी। हम-तुम दोष से मुक्त रहेंगे।"

पत्नी ने एक दीर्घ-निश्वास छोड़ कर कहा—अच्छी बात है, ऐसा ही करो। जो उसके भाग्य में बदा है वह हो रहा है, हम-तुम उसका भाग्य थोड़ा ही पलट सकते हैं।

इसके पश्चात् मिश्र जी ने सुमित्रा के विवाह का विचार बिल्कुल त्याग दिया और उसे वकालत पढ़ाना आरम्भ कर दिया।

☾ ☾ ☾

आँसू

[श्री० 'वीरात्मा']

(१)

वह रहे हिय के करुण हैं भाव क्या ?
  या छलकते प्रेम के रस-बिन्दु हैं ?
या व्यथित नैराश्य-निशि में मोददा,
  आँख-नभ में उग रहे नव इन्दु हैं ?

(२)

स्वर्ग के अनमोल मोती ओस क्या—
  चूमते हैं चाव से आँखें कमल ?
या कपोलों पर मलिनता देख कर—
  नेत्र जल की कर रहे झड़ियाँ अमल ?

(३)

या सहज कोमल लजीली आँख पर,
  हो गया निष्ठुर-नज़र-आघात क्या ?
सूज कर बहने लगीं जो दुःख से,
  खा चुकी हैं चोट हा ! अज्ञात क्या ?

(४)

या विरह की ताप से झुलसा हृदय,
  हो रहा अभिषिक्त शीतल वारि से ?
भर रही हैं आँख प्याले प्रेम के,
  पी रहा प्यासा 'हृदय' आभार से ॥

हिन्दू-समाज और स्त्री

प्रारम्भिक काल की भारतीय संस्कृति में हिन्दू-स्त्री का जो कुछ भी स्थान रहा हो, किन्तु इस समय उसकी अवस्था सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती। यह कहा जा सकता है कि अनेकानेक शताब्दियों के आने और चले जाने के साथ ही साथ आर्य संस्कृति के मौलिक रूप में भी रूपान्तर होता चला आया और उस गौरवपूर्ण अतीत के समाज की अवस्था का अनुमान इस समय की अवस्था से करना असम्भव है। पर इससे तो इस बात की आवश्यकता और भी सिद्ध हुई कि समाज में जो-जो दूषण आ घुसे हैं—चाहे वे आन्तरिक अवस्थाओं के कारण उत्पन्न हुए हों या उन पर वाह्य परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा हो—उन्हें दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। और उस सुधार-योजना के सिलसिले में जिन अवस्थाओं में सुधार करने मात्र से काम चल जाय उनमें सुधार करना चाहिए और जिनमें मौलिक परिवर्तन करने की आवश्यकता पड़े उनमें (शास्त्रीय विधान इस सम्बन्ध में कोई स्पष्ट आदेश दे या न दे) अपनी परम्परागत धारणाओं को आधुनिक प्रकाश के सामने रख कर—अन्य जातियों, राष्ट्रों और समाजों की प्रचलित प्रथाओं और उन प्रचलित प्रथाओं के हानि-लाभों पर विचार करके उदारमति के साथ उनमें परिवर्तन भी कर डालना चाहिए। मानवी स्वभाव को परिस्थितियों के अनुरूप एक विशिष्ट रूप से आचरण करना पड़ता है, अन्यथा इस जीवन-सङ्घर्ष में उसका कोई सफल स्थान नहीं रहता। और जो बात व्यष्टि के सम्बन्ध में ठीक है, वही समूह और समष्टि के सम्बन्ध में भी ठीक होनी चाहिए।

यह मानवी स्वभाव है—और इसे न मैं बदल सकता हूँ, न बड़े से बड़ा नैतिक आदर्शवादी—कि वह संयम से घबराता है, उच्छृङ्खलता और निरङ्कुशता, अबाध्यता और स्वच्छन्दता से प्रेम करता है और—यदि देश अथवा समाज की अवस्था प्लैटोनिक आदर्श प्रजातन्त्र के अनुरूप उन्नत न हुई जिसमें प्रत्येक नागरिक के असली भावों में नागरिकता के आचरण की अपेक्षा की जाती है, जिसमें प्रत्येक नागरिक को दैशिक और सामाजिक विधानों का उतना ज्ञान और मान रहता है कि उसे बलात् प्रकृत रूप देने के लिए किसी व्यवस्थाकारिणी संस्था (गवर्नमेण्ट) की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती (और कम से कम अब तक इस प्रकार का आदर्श प्रजातन्त्र केवल आदर्श ही रहा है)—समाज और देश के सामूहिक मङ्गल का ध्यान छोड़ कर उस समाज और उस देश के नियन्त्रित विधानों को मनमाना रूप दे दिया करता है। अतः यदि यह मान भी लिया जाय कि किसी समय स्त्री वास्तव में परिवार की सम्राज्ञी होती थी तो उपरोक्त सिद्धान्त के अनुसार पुरुष-समाज ने धीरे-धीरे इन अनेक शताब्दियों में—उसके अशक्त हाथ से वे सारे अधिकार छीन कर शनैः-शनैः उसे आश्रित मात्र बना डाला। हिन्दू स्त्री की वर्तमान अधोगति का कारण एक मात्र इसी तथ्य के द्वारा समझाया जा सकता है।

और जहाँ पुरुष-समाज स्वयं मनमाना आचरण करना पसन्द करता है, अपने आश्रित वर्ग में वह अत्यन्त

व्यवस्थित, एक रूप और वैध आचरण की आशा रखता है। इसी में स्त्रियों को पति की ईश्वर के तुल्य पूजा करने की शास्त्राज्ञा का मर्म छिपा दिखाई देता है। स्त्री से आशा रक्खी गई है कि वह एक पतिव्रत धारण करके जीवन बिताए, चाहे वह पति कैसा ही क्यों न हो। वासनाओं और प्रलोभनों का हृदय से निकलना असम्भव है—अतः जहाँ कहीं किसी स्त्री का पैर उस 'व्यवस्थित' एक रूप, और वैध पथ से विचला कि फिर समाज में उसका कोई स्थान न रहा। (यद्यपि उसे पथ-भ्रष्ट करने वाला व्यक्ति स्वयं अपने परिवार से वही व्यवस्थित आचरण चाहेगा।) इस असम्भव आदर्श को यद्यपि भारतीय स्त्री ने बहुत हद तक सम्भव करके दिखा दिया, फिर भी था वह आदर्श ही, और इतने बड़े समुदाय की प्रत्येक स्त्री से इस बात की आशा रखना नितान्त अनुचित था।

व्यक्तिगत उच्छृङ्खलताएँ उस समय तक मौजूद रहेंगी जब तक मनुष्य के हृदय में वासना नाम की एक वस्तु विद्यमान है। यह बात दूसरी है कि उन वासनाओं को परिष्कृत और संयत कर लिया जाय। और जब एक बार मानवी हृदय के इस प्रधान और अनिवार्य गुण का अस्तित्व स्वीकार कर लिया गया, तो इसकी भी आवश्यकता आ पड़ी कि समाज के नियम-विधानों की रचना करते समय इस बात का ध्यान रक्खा जाय। उस समय इस प्रकार के नियम-विधान की निस्सारता और कृत्रिमता और भी स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगती है जब हम देखते हैं कि मानव जाति के एक लिङ्ग के ऊपर वे नियम-विधान नितान्त कठोर रूप से लागू किए जाते हैं और दूसरे लिङ्ग को उनसे मुक्त समझा जाता है।

समाज के इस अन्याय के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा पहले यूरोप के आदर्शवादियों ने खड़ा किया। उन्होंने प्रतिपादित किया कि इस प्रकार का नियम या तो दोनों पर लागू होना चाहिए या किसी पर नहीं। यह बात मुँह से निकली नहीं थी कि सारे सभ्य जगत में—हमारा अभिप्राय उन लोगों से है, जिन्होंने आधुनिक काल की प्रबल प्रेरणा की अनुभूति की है; उन पुराने खूसटों और दक़ियानूसियों से हमें कुछ नहीं लेना-देना जो मिथ्या और हानिकर धारणाओं और रिवाजों को केवल उनके अस्तित्व की आयु पर ध्यान रख कर, धार्मिक रूप दे देते हैं—व्याप्त हो गई। इमरसन के शब्दों में, सत्य किसी व्यक्ति, जाति वा राष्ट्र की सम्पत्ति नहीं है; वह समान भाव से मानव जाति के प्रत्येक सदस्य के मर्मस्थल पर आघात करता है। पुस्तकें निकलीं और उनकी तिक्त समालोचनाएँ की गईं, पर इससे उनके बहुल प्रचार में बाधा पहुँचने के बजाय सहायता पहुँची। नवीन सन्तति—स्त्री और पुरुष, समान भाव से—उस नवीन मत की उपासक हो गई। आप किसी पढ़े-लिखे पाश्चात्य युवक के सामने अपनी दक़ियानूसी भारतीय सती-प्रथा और भारतीय पति-पत्नी सम्बन्ध का चित्र खींचिए, वह आपकी ओर आश्चर्य से आँखें फाड़ कर देखने लगेगा। वास्तव में वहाँ के नागरिक इतने आगे बढ़ गए हैं कि इस बात की कल्पना तक उनके लिए कष्टसाध्य है कि इतना बड़ा जनसमुदाय इस प्रकार के अतीत विचारों और रिवाजों के साथ जीवित रह सकता है।

बात परिवार में स्त्री-पुरुष के समान व असमान अधिकारों तक ही सीमित नहीं रही; पाश्चात्य नीतिवादी और भी आगे बढ़े। हाल में ही Bertrand Russel की Marriage & Morals नाम्नी एक पुस्तक प्रकाशित हुई है जिसने यूरोप तक में सनसनी फैला दी। वह कहता है कि परिवार की सुख-शान्ति तभी अक्षुण्ण रह सकती है जब स्त्री को भी हर बात में उतनी ही स्वच्छन्दता दी जाय जितनी का पुरुष अपने आपको अधिकारी समझता है। वह कहता है कि यदि पुरुष पारिवारिक जीवन की नीरस एकरूपता से ऊब कर किसी अन्य स्त्री से कुछ मनोरञ्जन कर लेता है तो स्त्री को भी उसका अधिकार मिलना चाहिए। बल्कि परस्पर प्रेम और आकर्षण के लिए वह इसे आवश्यक भी समझता है। हमारा भारतीय भद्र समाज शायद इसे पढ़ते ही काँप उठेगा और कहेगा कि यह तो खुल्लम-खुल्ला आचारहीनता और भ्रष्टता का प्रसार करना है, जिसका अनिवार्य परिणाम सामाजिक विशृङ्खलता और पारिवारिक नाश के रूप में प्रकट होगा। भारतीय जन-समाज अस्मरणीय अतीत से ही स्त्री को 'भोग्य वस्तु' समझता आ रहा है। 'रमणी' शब्द उसके हृदय की कुत्सा को भली-भाँति प्रकट करता है। शैशव काल से ही पुरुष के मस्तिष्क में इन अणुओं को जन्म दे दिया जाता है कि वह ईश्वर के यहाँ से वे विशेष अधिकार लेकर उतरा है जो

स्त्री को प्राप्त नहीं हैं। मुस्लिम संस्कृति ने हिन्दुओं की इस धारणा को और भी बल दिया। उसमें भी इसी प्रकार के दुर्गुणों को देख कर उसने अपने स्वतः प्राप्त अधिकार को और भी न्याय्य समझा। इस प्रकार स्त्री-समुदाय के विरुद्ध भारत में एक व्यवस्थित वातावरण उत्पन्न हो गया और अन्य बातों में चाहे दोनों जातियाँ एक-दूसरे का सिर तोड़ती रही हों, कम से कम मानव जाति की जन्मदात्री को मनुष्योचित अधिकारों से वञ्चित रखने में दोनों ने अपूर्व एकता का परिचय दिया। बहुत दिन हुए बड़ी व्यवस्थापिका सभा में वर्तमान डिप्टी प्रेसीडेण्ट मौलवी मुहम्मद याक़ूब ने अपनी ओजस्विता के धाराप्रवाह में बह कर यहाँ तक कह डाला था कि पुरुष-स्त्री दो अलग-अलग लिङ्ग हैं, दोनों को प्रकृति ने अलग-अलग काम सौंपे हैं, और हमारे पूर्वजों ने इस बात को समझा और इसीके अनुरूप वे आचरण करते रहे; और अब तक का अनुभव बताता है कि वे ग़लती पर नहीं थे। यदि वर्तमान सामाजिक सङ्गठन में कोई नवीनता प्रकट की गई तो उसका रूप क्या होगा, इसका कोई निर्णय नहीं किया जा सकता। शायद बुरा ही होगा। (हमें माननीय मौलवी साहब के ठीक-ठीक शब्द स्मरण नहीं हैं।)

पर मौलवी साहब इस बात को भूल गए कि समय की प्रेरणा (Spirit of the time) भी कोई वस्तु होती है। जो नियम-उपनियम पुराने ज़माने के लोगों के लिए लागू हो सकते थे, उन्हीं को यदि उनके असली रूप में आज बर्ता जाय तो शायद स्वयं मौलवी साहब ही सबसे पहले असन्तुष्ट हो उठेंगे। मानव जाति आगे बढ़ रही है। यही उसके जीवन का लक्षण है। और उस जाति का जो अङ्ग इस विश्वव्यापी 'मार्च' की दुन्दुभी की ओर से कान बन्द किए रहेगा उसके अङ्ग शिथिल पड़ जायँगे और धीरे-धीरे उनमें सड़ाव उत्पन्न होने लगेगा। और वृद्ध समुदाय 'धर्म-सङ्कट में' का चीत्कार चाहे जितना किया करे, नवीन सन्तति अपेक्षित सुधार किए बिना कभी सन्तुष्ट न रहेगी। सत्य विश्वव्यापी और चिरन्तन है ही और उसके प्रकाश से हम अपने समाज के मुख्य अङ्ग को और अधिक वञ्चित नहीं रख सकते। भारतीय नारी स्वभाव से ही अल्प सन्तोषी है, और यदि उसे केवल मनुष्योचित अधिकार दे दिए जायँ, केवल उसके स्त्री होने के कारण उसे कार्यशीलता के किसी विशिष्ट अंश के अनुपयुक्त न समझा जाय तो वह और कुछ न चाहेगी। अन्यथा उसमें भी विद्रोह के लक्षण दिखाई देने लगे हैं और यदि हमने उसे उसके अधिकार हँसी-ख़ुशी न दे दिए तो वह कुछ समय बाद न केवल अपने अधिकार ही छीन लेगी, बल्कि वह और आगे बढ़ेगी, और फिर उसमें भी उसी उच्छृङ्खलता के अणु उत्पन्न हो जायँगे जिनसे यूरोपीय पुरुष तङ्ग आ गए हैं। बाँध टूटने पर प्रवाह प्रबल रूप धारण कर लेता है, और एक बार मनुष्य उद्दण्डता धारण कर लेने पर सीमा तक जा पहुँचता है। यही जगत का नित्य नियम है और इसके आगे हमें चुपचाप सिर झुका देना चाहिए।

बहुत से लोग कह उठते हैं कि ये सब व्यर्थ की बातें हैं। यह जो सुधार, अधिकार और उद्धार का वितण्डावाद खड़ा किया गया है, इसमें स्त्रियों की कोई सहानुभूति नहीं है। वे अपनी स्थिति से सन्तुष्ट हैं। उन्हें और चाहिए क्या?—दो रोटी और सन्तान। पर इस प्रकार का दुर्बल तर्क पेश करने वाले शायद यह भूल जाते हैं कि इस प्रकार वे हमारे ही तथ्य की पुष्टि कर रहे हैं। स्त्रियों को इतना अपढ़ और पङ्गु बना दिया गया है कि न वे कुछ सोच-समझ सकती हैं और न कहीं चल-फिर सकती हैं। हम ऐसे अनेक नैतिक आदर्शवादियों को जानते हैं जो स्त्री-समाज को उच्च शिक्षा देना बाइबिल के निषिद्ध फल (Fobridden fruit) की नाईं भयानक समझते हैं; और जन-साधारण में तो यह धारणा फैली ही हुई है कि स्त्री पढ़ कर दुश्चरित्र हो जाती है। फिर इस विशाल समुदाय से किसी सहानुभूति की क्या आशा रक्खी जा सकती है। हमें याद पड़ता है कि हमने किसी अङ्गरेज़ी पुस्तक में पढ़ा था कि उस समय उस देश को पूर्णतया विजित समझना चाहिए जब स्वयं वहाँ के निवासी ही अपने आपको अपने विजेता से हेय समझने लगें। स्त्रियों के सम्बन्ध में भी यही बात है। हमने उन्हें लौह-शासन के नीचे दबा-दबा कर इतना स्वाभिमानहीन बना दिया है कि वे अपने लिङ्ग की उत्कृष्टता को भूल गई हैं। उनके सामने किसी ऐसे सुधार-अधिकार का नाम लीजिए, और वे विस्मय से अवाक् रह जायँगी। इससे

बम्बई सेवा-सदन की मन्त्रिणी

कुमारी बी० ए० इञ्जीनियर

एम० ए०, एल्-एल्० बी०, एम० बी० ई०, जे० पी०

अर्थात्—

ईसा-चरित्र पर एक आलोचनात्मक दृष्टि

लेखक—श्री० प्रो० विश्वेश्वर जी, 'सिद्धान्त-शिरोमणि'

भूमिका-लेखक—आचार्य श्री० गङ्गाप्रसाद जी, एम० ए०, एम० आर० ए० एस०, चीफ़ जज

प्रोटेक्टिंग कवर सहित

सजिल्द

मूल्य २।) रु० मात्र !
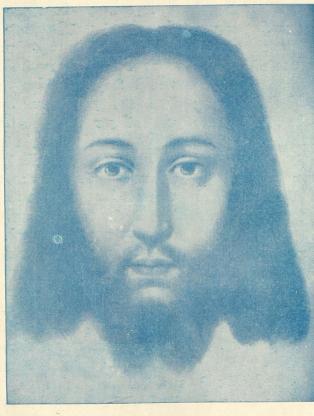
अत्यन्त सुन्दर छपाई

सचित्र

स्था० ग्रा० से १।।।≈) मात्र !!

महात्मा ईसा

पुस्तक की भाषा परिमार्जित, मुहावरेदार और ओजस्विनी है तथा भाव अत्यन्त ऊँचे दर्जे के, सुन्दर और मँजे हुए; शैली अभिनव, आलोचनात्मक और मनोहारिणी; विषय चरम, चित्रण प्रथम श्रेणी का; और आलोचना एकदम निष्पक्ष सत्यं, शिवं, सुन्दरं है। पुस्तक साहित्य की स्थायी चीज़ है, उससे हिन्दी-साहित्य की गौरव-वृद्धि और आपकी अलमारी की श्री-वृद्धि होगी। कम से कम एक प्रति तो आप अवश्य ही ख़रीदिए !

व्यवस्थापक 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

अधिक दयनीय अवस्था और क्या हो सकती है ! इस आश्रित अस्तित्व (Parasitical existence) का अन्त करना व्यष्टि का भी उतना ही कर्त्तव्य है जितना समष्टि का, और बिना व्यक्तिगत सहयोग के इस प्रकार की कोई योजना सफल नहीं हो सकती ।

—रुद्रनारायण अग्रवाल, बी० ए०

* * *

समाज-सुधार तथा 'चाँद'

'चाँद' की समाज-सेवाओं के विषय में अनेक लेख 'चाँद' तथा अन्य हिन्दी-पत्रों में निकल चुके हैं। कुछ लोग 'चाँद' की सुधार-प्रणाली से सहमत हैं, कुछ विरक्त, कुछ अप्रसन्न और कुछ क्रुद्ध। हिन्दू-समाज तथा हिन्दी-साहित्य में वर्षों से 'चाँद' की कार्य-प्रणाली पर टीका-टिप्पणी हो रही है। विदेश में होने से मुझे इस विषय का सम्पूर्ण साहित्य तो पढ़ने के लिए प्राप्त नहीं हो सका, परन्तु हाँ, जो कुछ भी मैंने पढ़ा है, उससे विदित हुआ है कि 'चाँद' की जिस शैली का लोगों ने—कुछ लोगों ने—विरोध किया है, उसी शैली में, परन्तु एक असमर्थनीय रूप में, 'चाँद' के विरुद्ध उन्होंने प्रहार किया है।

इस वाद-विवाद के होते हुए मैं इस विषय में कुछ लिखना अनावश्यक तथा अनुपयोगी समझता था। परन्तु कई घटनाओं ने मुझे इन पंक्तियों के लिखने के लिए विवश कर दिया। पहली बात तो यह है कि 'चाँद' का सम्बन्ध—मेरे विचार से—हिन्दी-साहित्य से उतना नहीं है, जितना हिन्दू-समाज से। 'चाँद' सहगल जी या अन्य व्यक्तियों के व्यक्तित्व से बहुत परे है। वह समाज की सम्पत्ति है, समाज का सेवक है। इस कारण समाज के प्रत्येक सदस्य को निष्पक्ष रूप से 'चाँद' के कार्य की विवेचना का अधिकार है।

दूसरी बात बड़ी मनोरञ्जक है। इसका सम्बन्ध है हमारे समाज के अर्द्ध इङ्गलिश-हिन्दी-शिक्षित नवयुवकों से। ऐसे अनेक नवयुवकों ने 'चाँद' को कभी स्वप्न में भी नहीं पढ़ा; परन्तु उनके मस्तिष्क में 'चाँद' के साहित्य के विषय में बड़े हास्यास्पद विचार भरे हुए हैं। वे समझते हैं कि 'चाँद' एक तोता-मैना के क़िस्सों जैसी पुस्तिका है। अतः यदि वे 'चाँद' का कलेवर देखेंगे तो घृणा से नाक-भौं सिकोड़ लेंगे, उसे पढ़ना तो कदाचित वे छूत की बीमारी मोल लेना समझते हैं। उनके यह विचार कहाँ से आए? अन्य मित्रों की सम्मतियों से—जो शायद उन्हीं की भाँति Second hand हों—तथा कुछ समाचार-पत्रों की समालोचनाओं से। जब मैं एडिनबरा से लन्दन आया तो एक मित्र बोले—भई, तुम्हारा एक लेख मैंने 'माधुरी' में पढ़ा था।

"कौन सा ?"

"वही जो तुमने लन्दन के विषय में लिखा था।"

"परन्तु 'माधुरी' में तो मैंने इस विषय का कोई लेख नहीं भेजा।"

"वाह, भेजा कैसे नहीं ? उसकी नक़ल मैं एक कॉपी पर कर लाया हूँ।"

मैंने वह कॉपी देखी। वह 'चाँद' में प्रकाशित मेरे 'लन्दन का प्रथम दर्शन' नामक लेख की नक़ल थी। मैं बोला—परन्तु, महाशय, यह लेख तो 'चाँद' में छपा था।

उनके मस्तक पर सिकुड़न पड़ गई और वे उपेक्षा-भरे स्वर में बोले—'चाँद ?' 'चाँद' को तो मैं छूता भी नहीं।

मुझे हँसी आई। मैंने पूछा—फिर यह लेख आपने नक़ल काहे में से कर लिया ?

वे कुछ देर सोच कर बोले—शायद वह 'चाँद' होगा। मैंने तो उसे 'माधुरी' समझ कर पढ़ा था।

मुझे हँसी भी आई और कौतूहल भी हुआ। इसी कारण मैंने फिर पूछा—ख़ैर, यह तो रहा। परन्तु आपको 'चाँद' बेचारे से इतनी घृणा क्यों है ?

"घृणा न हो तो क्या प्यार हो ? उसने हमारी स्त्रियों को ख़राब कर दिया है। सब वाहियात बातें उसमें भरी रहती हैं।"

"आपने 'चाँद' के कितने अङ्क पढ़े हैं ?"

"पढ़े हैं ? मैं उसे पढ़ना चाहता ही नहीं। उसकी वाहियात बातों के ही कारण उसे यू० पी० और सी० पी० में घुसने नहीं दिया जाता (?)। सारे समाचार-पत्र उसकी बुराई कर रहे हैं (?) अब उसे पढ़ता ही कौन है ? और यही हाल उसकी पुस्तकों का है। 'अबलाओं का इन्साफ़' तो बड़ी गन्दी पुस्तक है।"

मुझे उनके 'चाँद' सम्बन्धी विचारों से कुछ मतलब न था, परन्तु मुझे यह बात खटकी कि उनका आधार स्वयं-अनुभव न था। 'अबलाओं का इन्साफ़' तो मुझे पढ़ने को मिल न सकी। परन्तु खोज कर मैं एक अङ्क 'चाँद' का लाया और उनसे कुछ लेख पढ़ने के लिए कहा। पढ़ने के बाद वे कहने लगे—सब अङ्क बुरे ही थोड़े होते हैं। कभी-कभी अच्छा अङ्क भी निकल जाता है।

इस घटना का विस्तृत वर्णन देने का तात्पर्य यह दिखाना है कि कुछ महाशय 'चाँद' की नीति को समझे बिना ही उसके विषय में बेतुकी सम्मतियाँ बना लेते हैं।

तीसरी बात, जिसके कारण मुझे इन पंक्तियों के लिखने का विचार हुआ है, स्वयं 'चाँद' की नीति है। शायद मेरी धारणा को सम्पादक महोदय ठीक न समझें अथवा पाठक उससे सहमत न हों, परन्तु मैं समझता हूँ कि 'चाँद' की नीति है, 'भारत को समुन्नत राष्ट्रों की श्रेणी में पहुँचाना।' अनेक पाठक इस मत का समर्थन करेंगे कि हम अभी एक राष्ट्र नहीं बने हैं। यदि हम एक राष्ट्र हो जाते तो अब तक दूसरा राष्ट्र हमारे ऊपर आधिपत्य जमाए हुए न बैठा रहता। इसके अतिरिक्त हमारा समाज भी एक सङ्गठित तथा सुसम्बद्ध समाज नहीं है। अतः 'चाँद' की नीति पहले 'भारत को एक राष्ट्र बनाना' तथा फिर 'उसे समुन्नत राष्ट्रों की श्रेणी में पहुँचाना' हो जाती है। इस नीति को 'चाँद' किस प्रकार व्यवहार में ला रहा है तथा उस व्यवहार-शैली से लोग क्यों असहमत हैं, यह समझने के लिए यहाँ, उसके मार्ग में जो आपत्तियाँ हैं, उनका विचार करना असङ्गत न होगा।

इस समय भारत की आत्मा जाग पड़ी है। लोग स्वतन्त्रता के लिए पागल हो रहे हैं। उन्हें बन्धन असह्य प्रतीत होने लगा है। परन्तु हममें से अनेक की दृष्टि केवल राजनैतिक बन्धन ही पर जाती है। उनका मत यह है कि राजनैतिक बन्धन ही हमारी सारी कुरीतियों का मूल है और ज्योंही हम उस बन्धन से मुक्त हुए कि देश का उत्थान हुआ। यह उनकी भूल है। और इस भूल का कारण यह है कि स्वतन्त्रता का उनका विचार मौलिक नहीं है, पश्चिम से लिया हुआ है। परन्तु पश्चिम में वह सामाजिक कुरीतियाँ नहीं हैं, जो हमारे यहाँ हैं। अतः हमें समाज, धर्म तथा राजनीति को साथ-साथ लेकर चलना है। मेरी समझ में, हम अपने बन्धन को तीन श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं—(१) राजनैतिक बन्धन (२) धार्मिक बन्धन (३) सामाजिक बन्धन।

राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना और बात है और वास्तविक स्वतन्त्रता प्राप्त करना और बात। देश की स्वतन्त्रता और व्यक्तियों की स्वतन्त्रता में अन्तर है। अमेरिका स्वतन्त्र देश है, परन्तु केवल इसी कारण नीगरो लोग अपने को स्वतन्त्र नहीं कह सकते। इसी प्रकार, मान लीजिए कि आज भारत को राजनैतिक स्वतन्त्रता मिल जाती है, तो क्या वह स्वतन्त्रता सबके लिए समान होगी? क्या अछूतों को उच्च वर्ण के हिन्दू समानता के अधिकार दे देंगे? क्या हिन्दू पुरुष अपनी स्त्रियों को समानता के अधिकार दे देंगे? अतः जब तक हमें धार्मिक तथा सामाजिक स्वतन्त्रता भी नहीं मिलती, केवल राजनैतिक स्वतन्त्रता ही हमें समुन्नत राष्ट्रों की श्रेणी में नहीं पहुँचा सकती। जो यह कहते हैं कि राजनैतिक सुधारों के साथ सामाजिक सुधारों की आवश्यकता नहीं, वे भूल करते हैं। वास्तव में हमारी धार्मिक तथा सामाजिक गुलामी ही हमें आज राजनैतिक गुलाम बनाए हुए है। स्वतन्त्रता की अग्नि अभी तक हमारे बच्चे-बच्चे के हृदय में क्यों जाग्रत नहीं हुई? इसीलिए कि हमने समाज में, धर्म में, घर में कभी स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ा ही नहीं। बच्चे माँ-बाप के गुलाम, स्त्रियाँ पुरुषों की गुलाम, अछूत उच्च वर्णों के गुलाम, उच्च वर्ण वाले ब्राह्मणों के गुलाम और ब्राह्मण अपने मनगढ़न्त शास्त्रों के गुलाम। इस प्रकार इस गुलामी ने बन्धनों से जकड़े हुए समाज को रसातल में गिरा दिया है। हमारे उद्धार के लिए यह आवश्यक है कि राजनैतिक आन्दोलन के साथ-साथ समाज-सुधार का आन्दोलन भी पूर्ण वेग से जारी रक्खा जाय। यदि समाज की यही दशा रही तो स्वराज्य-गवर्नमेण्ट में भी, मालवीय-आचार्य जैसे महापुरुषों के रहते हुए, कुछ उद्धार होना कठिन है।

जो हिन्दू-समाज को दोष-रहित समझते हैं, वे मनमोदक खाते रहें, परन्तु जो वास्तविकता को जानना चाहते हैं, उन्हें समाज के पतन का दृश्य व्याकुल बना देगा। संसार के अन्य समाजों की दशा देख कर, हमें

स्वयं ही अपने समाज से घृणा हो जाती है। यहाँ कुछ सामाजिक समस्याओं का उल्लेख ही किया जाता है :—

(१) हमारे समाज में एक बड़ा दोष है कि हमें यही प्रतीत नहीं होता कि हममें दोष हैं। हम अब भी अपनी प्राचीन सभ्यता की डींगें मारते हैं। जो रोगी यह स्वीकार ही नहीं करता कि उसे कोई रोग है, उसका अस्तित्व यदि मिट जाय तो इसमें दोष किसका? आर्य-समाज बड़ी उन्नत संस्था है, परन्तु उसके सभासद भी वेदों की दुहाई देकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री कर देते हैं। चाहे उन्हें हिन्दी का भी सम्यक् ज्ञान न हो, परन्तु यदि कहीं कोई नया आविष्कार हुआ तो वे चिल्ला उठेंगे—"यह तो हमारे वेदों में भी लिखा है।" सनातनधर्मी हैं रूढ़ियों के ग़ुलाम। समाज के सारे दोष 'पुरखाओं' से चले आ रहे हैं, भला उन्हें अब वे कैसे दूर कर सकते हैं?

(२) समाज का सङ्गठन—जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, इसमें निरङ्कुशता का राज्य है। अछूतों तथा स्त्रियों की पराधीनता इसकी द्योतक हैं।

(३) शिक्षा का अभाव।

(४) स्वास्थ्य-रक्षा के प्रबन्ध की कमी।

(५) व्यभिचार—यह एक कीड़ा है, जो समाज के ढाँचे को खाए जा रहा है। हमारे आचार-विचार रसातल को जा रहे हैं। घरों में होने वाले व्यभिचार की सीमा नहीं। पिता-पुत्री और श्वसुर-बहू तक नौबत पहुँच चुकी है। और इसको रोकना तब तक असम्भव होगा, जब तक हमारे समाज के गले में, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह विधवा-विवाह-निषेध, तलाक़ के नियमों का अभाव, अनमेल-विवाह, छोटी-छोटी बिरादरियों का जीवित रहना, तथा काम-विज्ञान की शिक्षा का अभाव आदि कुरीतियाँ, तौक़ की भाँति पड़ी रहेंगी।

(६) आपस का व्यवहार—इस विषय में तो हम बिलकुल शून्य हैं। सौजन्य का हमारे यहाँ कोई नियम नहीं। चाहे जब, चाहे जहाँ नङ्गे-उघारे चल दिए। न स्त्रियों का विचार; न पड़ोसियों की सुविधा-असुविधा का विचार। बोलचाल में शिष्टता नहीं। बेईमानी परले दरजे की है। समाज में से एक-दूसरे का विश्वास उठ गया है। भाई को भाई पर विश्वास नहीं, स्त्री को पुरुष पर नहीं, नौकर को स्वामी पर नहीं, स्वामी को नौकर पर नहीं। दूसरा मरे या जिए, अपने मतलब से काम है।

(७) एक भाषा, एक वेश आदि का अभाव।

(८) वेश्याओं का प्रश्न।

यह हैं हमारी कुछ सामाजिक समस्याएँ, जिनके सुलझाए बिना समाज एक आदर्श समाज नहीं बन सकता। और इन्हीं समस्याओं पर प्रकाश डालने का कार्य 'चाँद' ने अपने ऊपर लिया है। इस सूची के एक-एक प्रश्न पर विचार करने से पता लग सकता है कि 'चाँद' ने समाज का कितना उपकार किया है।

(१) प्रथम तो 'चाँद' ने अपने प्रभावशाली तथा निर्भीक सम्पादकीय स्तम्भों में इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि राजनैतिक सुधारों से पूर्व समाज-सुधार की आवश्यकता है। राष्ट्र-निर्माण में सामाजिक स्वातन्त्र्य की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी राजनैतिक स्वातन्त्र्य की। पाठकों ने यदि 'चाँद' के फ़रवरी के अङ्क में कॉङ्ग्रेस के सभापति के सम्भाषण पर सम्पादकीय टिप्पणी पढ़ी होगी तो उन्हें विदित हो गया होगा कि 'चाँद' को राजनैतिक अत्याचारों से भी अधिक व्याकुल बनाए हुए हैं सामाजिक अत्याचार, और जहाँ वह राजनैतिक स्वतन्त्रता का पक्षपाती है, वहाँ समाज-सुधार का भी उतना ही कट्टर हामी। 'चाँद' की इन टिप्पणियों का यह बड़ा नैतिक बल-प्रदर्शन है। जहाँ देश के पूज्य नेता लोग स्वराज्य लेकर भी दस वर्ष की बच्चियों के विवाह नियमानुकूल रहने देना चाहते हैं, वहाँ 'चाँद' की यह खरी बातें साधारण अर्थ नहीं रखतीं। 'चाँद' का शब्द समाज के क्रन्दन की प्रतिध्वनि है और इसके लिए समाज एक दिन अवश्य आभारी होगा।

(२) शिक्षा, स्त्री-शिक्षा, अछूतोद्धार स्त्रियों के समानाधिकार आदि विषयों पर 'चाँद' ने जो कार्य किया है, वह अनुकरणीय है तथा देश-विख्यात है।

(३) जात-पाँत तथा उनकी कुरीतियों के खण्डन का कार्य अत्यन्त प्रशंसनीय है, जो 'चाँद' के विशेषाङ्कों से ही प्रतीत होता है।

(४) व्यभिचार के दूर करने के लिए 'चाँद' ने जिस साहस से काम लिया है, वह यदि आज के बगुला-भगत स्वीकार न करेंगे तो समाज की भावी सन्तान अवश्य उसके लिए ऋणी रहेगी। ऊँची नाक वालों का

भण्डाफोड़ करके, अत्याचार-पीड़ित अबलाओं के रक्त खौलाने वाले लोमहर्षण पत्रों को प्रकाशित करके, विधवा-विवाह, तलाक़, मातृ-मन्दिर आदि के पक्ष में आन्दोलन करके 'चाँद' ने समाज की अनुपमेय सेवा की है। सदाचार जिस प्रकार एक व्यक्ति का, उसी प्रकार एक समाज का, आभूषण है, नहीं-नहीं जीवन है। और जब उस पर कुठाराघात हो गया तो फिर रह क्या गया? अतः प्रत्येक समाज-सुधारक का कर्त्तव्य है कि वह समाज के सदाचार की सबसे पहले रक्षा करे। परन्तु कितने ऐसे हैं जो निर्भीक होकर सचाई को प्रकाशित कर सकें? राजाओं, रानियों, धनिकों तथा धर्म के ठेकेदारों के पापों के विषय में जब तक खुल्लमखुल्ला आन्दोलन न होगा, तब तक वे चेतेंगे नहीं। समाज की जीवन-शक्ति के ह्रास का सबसे बड़ा कारण समाज के यह भीतरी शत्रु हैं और इनके विरुद्ध युद्ध घोषित करके 'चाँद' ने एक अपूर्व साहस का परिचय दिया है।

यह सब कुछ होने पर भी 'चाँद' का विरोध क्यों? इसका उत्तर कठिन नहीं। किसी भी देश का इतिहास उठा कर पढ़िए, समाज के तीव्र समालोचकों का किसी न किसी रूप में विरोध अवश्य हुआ है। फ़्रान्स में प्रसिद्ध समाज-सुधारक रूसो का विरोध हुआ था। सुक़रात को विष-पान करना पड़ा था। जर्मनी में लूथर का विरोध हुआ था। अमेरिका में ग़ुलामी के विरोधियों को बड़ी यातनाएँ सहनी पड़ी थीं। ईसा को सूली पर चढ़ना पड़ा था। इङ्गलैण्ड में प्यूरीटन लोगों (Puritans) को, जो समाज की कुरीतियों को दूर करना चाहते थे, बड़ी यन्त्रणाएँ भोगनी पड़ी थीं। हमारे ही देश में, प्रातःस्मरणीय महर्षि दयानन्द को विष-पान करना पड़ा था। फिर यदि 'चाँद' का विरोध हो रहा है तो इसमें आश्चर्य ही क्या? यह एक स्वाभाविक बात है कि लोग चाहे स्वयं अपने दोषों को जानते हों, परन्तु यदि कोई दूसरा उन दोषों की ओर इशारा करे तो उसे वह अपनी पराजय समझ लेते हैं।

'चाँद' के विरोधियों में कुछ तो वह हैं, जिनका विरोध 'चाँद' करता है। उनके विषय में कुछ कहना व्यर्थ है। एक प्रकार से समाज के लिए यह शुभ चिन्ह है कि उन लोगों में प्रतिक्रिया के भाव तो उत्पन्न हुए।

विरोधियों की दूसरी श्रेणी में वे हैं, जो 'चाँद' की प्रणाली से सहमत नहीं हैं। उनकी दो-तीन सच्ची, परन्तु शिथिल, आपत्तियाँ हैं।

एक आपत्ति तो यह है कि 'चाँद' मिस मेयो तथा अन्य विदेशियों की भाँति समाज की निन्दा करता है। परन्तु इस आपत्ति के करने वाले यह नहीं देखते कि एक ही बात को भिन्न-भिन्न उद्देश्यों से कह कर भिन्न-भिन्न रूप दिया जा सकता है। यह तो महात्मा गाँधी जैसे नेता भी मान चुके हैं कि मिस मेयो ने अनेक बातें सच्ची कही हैं और उनसे भारतवासियों की आँखें खुलनी चाहिएँ। क्या राष्ट्रीयता के इस युग में अछूतों के साथ पूना जैसे नगर में भी अमानुषिकता का व्यवहार नहीं किया जा रहा है? क्या कलकत्ते के काली-मन्दिर में अब भी धर्म के नाम पर सैकड़ों जीवों की हिंसा नहीं होती? क्या बड़े-बड़े तीर्थों में अब भी व्यभिचार का बाज़ार गर्म नहीं रहता? क्या इस जाग्रति के दिनों में भी मालवीय जी जैसे नेता एसेम्बली में शारदा-बिल का विरोध नहीं करते? यह ठीक है कि मिस मेयो इन्हीं बातों का उल्लेख करती है और 'चाँद' भी इन्हीं के विरुद्ध प्रहार करता है। परन्तु मिस मेयो का उद्देश्य है इन बातों को दिखा कर ब्रिटिश सत्ता का समर्थन करना और 'चाँद' का उद्देश्य है इनके विरुद्ध आन्दोलन करके समाज को ब्रिटिश सत्ता के विरोध के लिए तैयार करना। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि एक पुरुष व्यभिचारी हो गया है। दो व्यक्ति उसके इस दोष को उस पर प्रगट करते हैं। पहला कहता है—'तुम व्यभिचारी हो, अतः तुम अपनी स्त्री को रखने योग्य नहीं, उसे मुझे दे दो।' दूसरा उसी बात को दूसरे उद्देश्य से कहता है—'तुम व्यभिचारी हो, अतः तुम्हारी साध्वी स्त्री दुखी हो रही है। उसके लिए तुम व्यभिचार छोड़ दो।' क्या पाठकों को इन दोनों के कथन एक समान दीख पड़ते हैं?

दूसरी आपत्ति है कि 'चाँद' हिन्दू-समाज में विदेशी—विशेष कर पश्चिमी—आदर्शों का प्रचार कर रहा है। कभी-कभी तो यह आपत्ति उनके मुखों से सुनाई देती है, जो सोलहों आने विदेशी सभ्यता में रँगे हुए हैं। कुछ भी हो, यह विचार समाज की सङ्कुचित मनोवृत्ति के द्योतक हैं। यदि पश्चिम का कोई सिद्धान्त हमारे लिए लाभदायक है, तो उसे क्यों न अपनाया जाय? पश्चिम वाले क्यों उन्नति कर रहे हैं? इसीलिए कि वे चारों ओर के

विचारों से समाज के भण्डार को भरते हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि वे उसे ऐसा रूप दे देते हैं कि वह विदेशी नहीं दीखता। किसी भी समाज में यह एक बड़ा भारी गुण है। इङ्गलैण्ड का उदाहरण लीजिए—इनकी भाषा दूसरों से ली हुई है और अब भी सैकड़ों शब्द अन्य भाषाओं से लेकर शुद्ध कर लिए जाते हैं। Loot, Dacoity, Bazar, Khaki आदि सैकड़ों शब्द भारतीय भाषाओं से लिए गए हैं। इनकी लिपि रोमन लोगों से ली गई है। इनके अङ्क अरब वालों से, इनका चिकित्सा-शास्त्र ग्रीक लोगों से; आदि-आदि। रस्म-रिवाजों के अपनाने में भी यह पीछे नहीं रहते। फिर हम यदि तलाक़ तथा अन्य उपयोगी प्रथाओं को अपना लें तो क्या हानि होगी? जिनका धर्म एक लकीर खींच देने से नष्ट हो जाता है, वह अपना तमाशा बनाए रक्खें; परन्तु समाज की आवश्यकताएँ तो समय के परिवर्तन के ऊपर छोड़नी पड़ेगी। इसके अतिरिक्त, यह सबका अनुभव है कि ज्यों-ज्यों संसार के भिन्न-भिन्न भागों के बीच आवागमन सरल होता जाता है, त्यों-त्यों एक देश के आचार-विचार दूसरे देशों पर प्रभाव डालते जाते हैं। भारत को विदेश के अनेक सिद्धान्तों को अपनाना ही पड़ेगा। अच्छा तो यह है कि उन्हें अभी से संशोधित करके भारतीयता का रूप दे दिया जाय।

तीसरी आपत्ति—शायद सबसे ज़ोरदार है कि 'चाँद' के साहित्य में अश्लीलता का आधिक्य रहता है। जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, इस आपत्ति के उठाने वाले यह भूल जाते हैं कि 'चाँद' का सम्बन्ध साहित्य से उतना नहीं है जितना समाज से। अतः सामाजिक कुरीतियों के ऊपर लिखने में साहित्यिक शिष्टता को पूर्णतया निभाया नहीं जा सकता। 'व्यभिचार' जैसे विषयों पर खुली बातें लिखने में कुछ अश्लीलता आए बिना रह ही नहीं सकती। पश्चिमी देशों में भी इस विषय के सुधारकों की भाषा कभी शिष्ट नहीं होती। यह ठीक है कि प्रयत्न करने पर कहीं-कहीं भाषा को अधिक परिमार्जित किया जा सकता है, परन्तु कठिनता तो यह है कि लोगों के अश्लीलता के विचार की कोई कसौटी नहीं है। जिस बात को एक अश्लीलता कहता है, दूसरे को वही शिष्ट मालूम होती है। हमारे साहित्य में तो गुप्तेन्द्रियों का वर्णन करना ही अश्लीलता है। वैज्ञानिकों का मत है कि नवयुवकों को इन्द्रिय-विज्ञान की शिक्षा अवश्य ही देनी चाहिए, नहीं तो उन्हें बड़ी हानि उठानी पड़ती है। पश्चिमीय देशों में गुप्तेन्द्रिय रोग (Venereal diseases), सन्तति-निग्रह (Birth control) आदि के लिए शिक्षा-संस्थाएँ (Clinics) स्थापित हो गई हैं। हमारे यहाँ इन बातों की चर्चा करना अश्लीलता है। मुझे अच्छी तरह से याद है कि कई वर्ष पूर्व 'चाँद' में 'सन्तति-निग्रह' के ऊपर एक लेख निकला था, उस पर कई आधुनिक पत्रों तक ने आपत्ति उठाई थी। शायद अब बहुत से व्यक्ति इसका समर्थन करते हैं, फिर भी कट्टरता के रिश्तेदारों की कमी नहीं है। और यह एक गर्व की बात है कि 'चाँद' ने इन प्रश्नों का महत्व समझ लिया है और विरोध की उपस्थिति में भी वह इन पर प्रकाश डालता आ रहा है।

'चाँद' के मार्ग में अनेक बाधाएँ हैं, इसमें सन्देह नहीं। उसका ध्येय असीम है, इसमें भी सन्देह नहीं। परन्तु आशा है कि उसके सञ्चालक निर्भयता तथा साहस से समाज की सेवा इसी प्रकार करते जायँगे। आज समाज उनकी सेवाओं का मूल्य न समझे, परन्तु कभी वह भावी इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में लिखी जायँगी। 'चाँद' यदि दृढ़तापूर्वक मार्ग-प्रदर्शन करेगा तो मुझे विश्वास है कि वे नवयुवक, जिनके हृदय समाज के पतन पर रक्त के आँसू रो रहे हैं, 'चाँद' के पीछे और उसके साथ अवश्य होंगे।

—(डॉक्टर) धनीराम 'प्रेम', लन्दन

* * *

जापान में विवाह-सम्बन्धी नए विचार

संसार के सब उन्नत देशों में विवाह के प्रश्न पर बड़ी गम्भीरता के साथ विचार हो रहा है और विवाह-सम्बन्धी बहुत से पुराने विचार, रस्म व रिवाज उठते जा रहे हैं। जापान पर पश्चिमीय देशों के विचारों का बड़ा असर पड़ा है। जैसे उसने अनेक बातों में बड़ी उन्नति कर ली है, उसी तरह वह विवाह-सम्बन्धी पुराने विचार छोड़ कर नए विचार ग्रहण कर रहा है और इस सम्बन्ध में भी बहुत आगे बढ़ रहा है। वहाँ को

बम्बई में महिलाओं की एक विराट सभा का दृश्य, जिसमें पं० मोतीलाल जी नेहरू व्याख्यान दे रहे हैं ।

लड़कियाँ अब यह पसन्द नहीं करतीं कि वे पत्थर मानी जायँ और उनके माता-पिता बिना समझे-बूझे उन्हें किसी के भी सुपुर्द कर दें। वे अपने को मनुष्य समझने लग गई हैं और मनुष्य की तरह जीवन बिताना चाहती हैं।

जापान में मध्य युग में यही होता था कि माता-पिता छोटी उम्र में ही अपनी लड़की के लिए वर खोजते भी पुरुष के साथ अपनी ज़िन्दगी बिताने के लिए बाध्य कर दी जाती थी।

अब जापान में शिक्षा का बड़ा प्रचार हुआ है और वहाँ बड़ी जाग्रति हुई है। पश्चिमीय देशों के आचार-विचार का उस पर बड़ा प्रभाव पड़ रहा है। अब वहाँ मध्य युग के रस्म-रिवाजों का अन्त हो रहा है और नए-नए विचार फैल रहे हैं। अब वहाँ छोटी उम्र में विवाह

बम्बई के आजाद-मैदान में जुलूस में भाग लेने वाली स्त्रियों को पुलिस वाले लाठियों से पीट रहे हैं।

थे और विवाह कर देते थे। प्रायः वर-वधू की उम्र बहुत कम होती थी और अनेक बार वधू की अपेक्षा वर की उम्र बहुत अधिक होती थी। एक बार वैवाहिक सम्बन्ध हो जाने पर फिर वह टूट नहीं सकता था। स्त्री के जीवन का एकमात्र उद्देश्य अपने पतिदेव की इच्छा के अनुकूल जीवन बिताना और उसे हर तरह से खुश रखना होता था। उसे अपनी कोई आकांक्षा न होती थी। उसकी हालत पशुओं से भी बदतर होती थी। वह किसी

नहीं होता और स्त्रियाँ मनुष्य मानी जाती हैं। युवतियों का विवाह सामान्यतः बीस-बाईस वर्ष की उम्र में और युवकों का विवाह पचीस-छब्बीस वर्ष की उम्र में होता है। इस उम्र में वे विवाह का अर्थ समझने के योग्य हो जाते हैं, और उनका मानसिक तथा शारीरिक विकास भी पर्याप्त रूप से हो चुका रहता है। सामान्यतः माता-पिता ही अपने लड़के-लड़कियों के लिए विवाह ठहराते हैं, लेकिन वे प्रायः अपने लड़के-लड़कियों की इच्छा
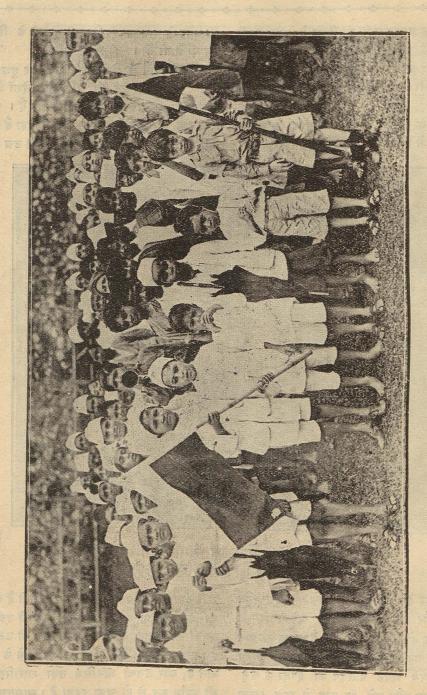
बम्बई के बालकों की बानर-सेना का एक दृश्य । इसमें दस वर्ष से कम उम्र के बालक सम्मिलित हो सकते हैं ।
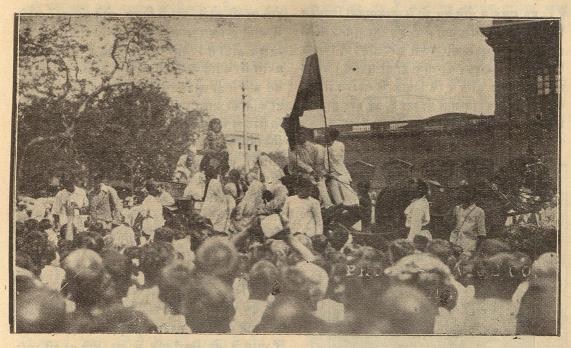
देहली में श्रीमती सत्यवती जी की जेल-यात्रा का दृश्य। श्रीमती जी पुष्प-हारों से लदी गाड़ी में खड़ी हुई हैं।

जान लेते हैं। अगर किसी युवती को किसी युवक से वैवाहिक सम्बन्ध जोड़ना पसन्द नहीं होता तो माता-पिता उसकी बात मान लेते हैं और उसकी इच्छा के विरुद्ध काम नहीं करते।

सच बात तो यह है कि युवक और युवतियों को अपनी पसन्द से अपना-अपना साथी चुनने का अधिकार है। माता-पिता, मित्र और सम्बन्धियों को चाहिए कि वे युवकों और युवतियों को इस तरह अपनी पसन्द से विवाह करने में पूरी-पूरी मदद करें। विवाहों की सफलता पर समाज की बहुत कुछ भलाई निर्भर है। इसीलिए यह बड़े पुण्य का काम है कि युवकों और युवतियों को अपनी पसन्द के अनुसार विवाह करने में पूरी सहायता दी जाय।

भारत के युवकों और युवतियों को भी अब उठना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि उनके विचारों में परिवर्तन हो रहा है और वे यह नहीं चाहते कि उनकी इच्छा जाने बिना ही उनका विवाह हो जाय, लेकिन अभी उनकी दृढ़ता में बड़ी कमी मालूम होती है। युवकों और युवतियों को साफ़-साफ़ और दृढ़ता के साथ कह देना चाहिए कि किसी युवक का किसी युवती से तब तक वैवाहिक सम्बन्ध नहीं हो सकता जब तक एक-दूसरे को देख न लें तथा एक-दूसरे का मन मिल न जाय। विवाह पवित्र सम्बन्ध है और यह सम्बन्ध सारी ज़िन्दगी के लिए होता है। ऐसी स्थिति में यह सम्बन्ध तब तक नहीं किया जाना चाहिए जब तक युवक और युवती एक-दूसरे को जान न लें। मित्रता तभी होती है जब अच्छी तरह जान-पहचान हो जाती है और मन मिल जाता है। विवाह तो मैत्री से बढ़ कर है। विवाह का अर्थ तो युवक और युवती का परस्पर स्नेह, एक का दूसरे के दुख से दुखी और सुख से सुखी होना, एक का दूसरे के हर काम में सहायता करने की योग्यता रखना और सदा सहायता करना है। अगर विवाह है तो यही है, बाजा-गाजा, पालकी-नालकी, हाथी-घोड़ा, फुलवाड़ी-आतशबाज़ी, नाच-गाना, खाना-पीना आदि विवाह नहीं

है। इन सबके न होते हुए भी वे युवक-युवती विवाहित हैं, जिनका मन मिल गया है। इन सारे धूम-धामों के होते हुए भी वे युवक और युवती अविवाहित हैं, जिनका विवाह बिना एक-दूसरे को जाने ही हो गया है। उचित तो यही मालूम होता है कि विवाह के सम्बन्ध में जो बहुत सा व्यर्थ का दिखावा हो रहा है, वह बन्द हो और विवाह का वास्तविक अर्थ समझा जाय।

स्त्रियाँ क्या नहीं कर सकतीं !

इङ्गलैण्ड की सुप्रसिद्ध महिला उड़ाका मिस ए० जॉन्सन अपने वायुयान सहित, जिसने लन्दन से ऑस्ट्रेलिया तक अकेले वायु-यात्रा की। इस अनुपम साहस के लिए गत १२ अगस्त को सम्राट पञ्चम जार्ज ने मिस जॉन्सन को अपने महल में बुला कर सी० बी० ओ० का तमग़ा प्रदान किया।

इस बात के लिए कि विवाह वास्तविक अर्थ में विवाह हो, यह ज़रूरी है कि छोटी उम्र में लड़के-लड़कियों का एक-दूसरे से सम्बन्ध जोड़ना बन्द कर दिया जाय। बाल-विवाह-निषेध विधान (शारदा-क़ानून) बन गया है। यह ठीक है कि इस क़ानून के प्रचलित होने पर भी छोटी उम्र में विवाह होने की ख़बरें सुनने में आती हैं। इस सम्बन्ध में सरकार की भी कुछ ढिलाई मालूम होती है। ऐसा मालूम होता है कि क़ानून के प्रयोग में कड़ाई नहीं हो रही है। इसके सिवा क़ानून बन जाने से ही छोटी उम्र में विवाह होना बिलकुल बन्द हो जाने की आशा नहीं की जा सकती। चोरी और डाके के सम्बन्ध में भी क़ानून बने हुए हैं। इन अभियोगों में गिरफ़्तारियाँ होती हैं और सज़ाएँ भी। किन्तु फिर भी चोरियाँ होती ही हैं और डाके पड़ते ही हैं। अभी ये बन्द नहीं हुए हैं। हत्या करने पर फाँसी की सज़ा होती है, तो भी हत्याएँ होती ही हैं। इसी तरह यह नहीं कहा जा सकता कि बाल-विवाह-निषेध विधान के बनने से बाल-विवाह होना बिलकुल बन्द हो जायगा। तो भी यह निश्चय है कि इस क़ानून का कड़ाई के साथ प्रयोग होने तथा शिक्षा-प्रचार होने पर मुश्किल से ही छोटी उम्र में विवाह होने की ख़बर सुनने में आवेगी।

इस समय भारत में स्त्री-पुरुष का एक बार विवाह हो जाने पर फिर सम्बन्ध-विच्छेद नहीं हो सकता। (भारत में तो स्त्रियाँ पति के मर जाने पर भी सारी ज़िन्दगी अविवाहित ही रक्खी जाती हैं।) मध्य युग में जापान में भी सम्बन्ध-विच्छेद की प्रणाली नहीं थी। किन्तु अमेरिका के स्वतन्त्र विचारों का जापान पर बड़ा असर पड़ा है। अब जापान में स्त्री-पुरुष में पटरी न बैठने पर सम्बन्ध-विच्छेद हो सकता है और होता है। अवश्य ही सम्बन्ध-विच्छेद सामान्य नहीं है, बहुत कम ही होता है। आदर्श मैत्री वही है कि वह कभी न टूटे। एक बार मित्रता कर लेने पर उसे यथा-सम्भव निबाहना चाहिए। एक बार विवाह हो जाने पर उसे आजीवन निबाहने का प्रयत्न करना चाहिए। यही उत्तम और यही आदर्श विवाह है। लेकिन यदि किसी स्त्री और पुरुष के बीच न पटती हो, बराबर टण्टा-बखेड़ा हुआ करता हो, दोनों के लिए वैवाहिक जीवन बिताना बहुत ही दुःखमय हो गया हो, तो ऐसी सूरत में स्त्री और पुरुष दोनों के लिए यही उचित और उत्तम है कि वे सम्बन्ध-विच्छेद कर लें। विवाह सुख के लिए होता है और यदि विवाह से जीवन बड़ा दुःखमय हो जाय तो सम्बन्ध-विच्छेद ही धर्म हो जाता है। सम्बन्ध-विच्छेद की आवश्यकता ही न पड़े तो अच्छा है, लेकिन मजबूरी की हालत में

स्त्री और पुरुष को सम्बन्ध तोड़ने का अधिकार अवश्य होना चाहिए।

अच्छा तो यह है कि युवक और युवती एक-दूसरे से सम्बन्ध जोड़ते समय समाज के सामने भरी सभा में प्रतिज्ञा करें कि हम एक-दूसरे से सदा स्नेह करेंगे, एक-दूसरे की सदा सहायता करेंगे और सदा एक-दूसरे के सुख से सुखी और दुःख से दुखी होंगे। हम आजीवन अपना वैवाहिक सम्बन्ध निबाहेंगे, किन्तु यदि किसी कारण हमारा एक साथ जीवन बिताना असम्भव हो गया तो हम सम्बन्ध-विच्छेद कर लेंगे और उसके बाद हम आजीवन अविवाहित रहेंगे। अगर ऐसी प्रतिज्ञा की जाय, और इस प्रतिज्ञा के अनुसार चलने का पूरा प्रयत्न किया जाय तो सम्बन्ध-विच्छेद की सम्भावना मुश्किल से ही रह जायगी। अगर किसी स्त्री-पुरुष से इस पर भी न पटे तो वे निश्चय ही पृथक् जीवन बितावें। कुछ समय बाद यह स्थिति उत्पन्न हो सकती है कि दोनों एक-दूसरे के प्रति किए व्यवहार के लिए पश्चात्ताप करें और एक साथ रहना स्वीकार कर लें। सच बात तो यह है कि आदर्श विवाह वही है, जिसमें सम्बन्ध-विच्छेद का अवसर ही उपस्थित न हो।

जापान में विवाह तथा सम्बन्ध-विच्छेद सम्बन्धी जो नए विचार फैले हैं, उन्हें वहाँ के पुराने ख़याल के बूढ़े लोग पसन्द नहीं करते। वे समझते हैं कि लोगों का आचार-विचार भ्रष्ट हो रहा है। लेकिन जापान का युवक-समाज उनकी परवाह नहीं करता। वहाँ के युवक समझते हैं कि वे पुरानी हानिकर कुप्रथाओं का त्याग करके समाज का उद्धार कर रहे हैं।

माता-पिता का कर्त्तव्य है कि वे अपने लड़के-लड़कियों का उचित प्रकार से पालन-पोषण करें, उनकी शिक्षा का उचित प्रबन्ध करें, लड़कों को किसी उपयुक्त काम में लगावें, लड़कियों को भोजन बनाने, सीने-पिरोने तथा गृहस्थी के अन्य कामों में कुशल बनावें, छोटी उम्र में उनका विवाह कदापि न करें, अपने लड़के-लड़कियों को विवाह का अर्थ समझावें और उन्हें अपना साथी चुनने में सहायता करें। जो माता-पिता इतना करते हैं, वे निश्चय ही अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं। अपने लड़के के लिए वधू या लड़की के लिए वर खोजना पिता का कर्त्तव्य नहीं है, वे व्यर्थ में अपने ऊपर यह झंझट लिए हुए हैं, उन्हें यह अनर्थक दायित्व छोड़ देना चाहिए और इस झंझट से बचे समय को लाभदायक कामों में लगाना चाहिए।

जापान के सामाजिक जीवन में अब स्त्रियों को उचित स्थान मिल रहा है और उनके अधिकार माने जाने लगे हैं। जापान की स्त्रियों के अधिकार के सम्बन्ध में एक बात जो बहुत खटकती है, वह यह है कि अभी तक उन्हें मताधिकार नहीं मिला है। लेकिन इस सम्बन्ध में

सौभाग्यशाली माता-पिता

मिस ए० जॉन्सन के माता-पिता और बहिनें लन्दन में बैठे हुए टेलीफ़ोन द्वारा ऑस्ट्रेलिया में अपनी पुत्री से बातें कर रहे हैं और उसकी वायुयान-यात्रा का वर्णन सुन रहे हैं।

आन्दोलन हो रहा है और आशा की जाती है कि उन्हें राजनीतिक क्षेत्र में पुरुषों के समान अधिकार शीघ्र ही मिल जाएँगे तथा वे इस क्षेत्र में आकर समाज-हितकर कार्यों में पूर्ण सहयोग और योग्यता के साथ काम कर सकेंगी।

—उमाशङ्कर, उप-सम्पादक 'आज'

* * *

पुरुष और स्त्री की तुलना

स्त्री एक विषम समस्या है। उसकी मीमांसा विधाता भी नहीं कर सकता।

पुरुष कार्य है, स्त्री कारण है; स्त्री शक्ति है, पुरुष

सञ्चालक है; पुरुष का मस्तिष्क पाशविक वृत्तियों के क्षेत्र में अत्यधिक बलवान है, स्त्री स्नेह-सरोवर की सर्वोत्तम तैराक है।

पुरुष का निर्माण लड़ने वाले यन्त्र के समान किया

एक बर्मी महिला-सम्पादिका

आप बर्मीज़ भाषा में 'स्वतन्त्र' नाम का समाचार-पत्र प्रकाशित और सम्पादन करती हैं, जो कि उस देश में एक नई बात है। आपका नाम मासान है।

गया है और उसमें जीवन-निर्वाह के साधनों के संग्रह करने की शक्ति और साहस दिया गया है। इसके विपरीत स्त्री को लावण्य और रूप की अनुपम राशि प्रदान की गई है।

साधारणतः पुरुष उद्दण्ड होते हैं, और स्त्रियाँ शान्ति-प्रिय! पुरुष-शक्ति आक्रमक है; स्त्री-शक्ति आत्म-रक्षक। पुरुष निश्चयी होता है, स्त्री अनिश्चित। पुरुष में साहस होता है, स्त्री में सहनशीलता। पुरुष उन्नतिशील होता है, स्त्री धैर्यवान। पुरुष अधिकार व आज्ञा से शासन करता है, स्त्री प्रेम से।

पुरुष शब्दों से विनय करता है; स्त्री दृष्टि और नम्रता से। प्रायः उसकी दृष्टि में पुरुष के नियमों से अधिक शक्ति होती है और उसकी अश्रु-धारा पुरुष की दलीलों से अधिक बलवती होती है।

पुरुष वर्तमान में भविष्य को भूल जाता है, स्त्री भविष्य को सँभालने व अधिक सुखकर बनाने के लिए सदैव सचिन्त रहती है।

पुरुष बड़े से बड़े अपराधी को भी क्षमा कर सकता है, परन्तु स्त्री में जब बदला लेने की आग सुलग जाती है तब वह विषधर सर्पिणी की भाँति सर्वनाश किए बिना नहीं शान्त होती।

एक महिला मैजिस्ट्रेट

आपका नाम श्रीमती के० राजरत्नम् है। हाल में आप मद्रास शहर की ऑनरेरी प्रेसीडेन्सी मैजिस्ट्रेट नियत की गई हैं।

स्त्री के मातृ-भाव के लिए पूर्ण त्याग व निस्स्वार्थ परिश्रम की आवश्यकता है। पुरुष अपने प्रेम को केन्द्रित कर सकता है, परन्तु स्त्री जब मातृत्व का भार ग्रहण

करती है, तो उसकी प्रेम-धारा सर्वतोमुखी होकर प्रवाहित होने लगती है।

स्त्री दूसरों के हृदय में अनायास ही स्थान कर लेती है। उदारता स्त्री-गुण है। स्त्री की भावनाएँ इतनी तीव्र होती हैं कि वह बहुत सुख भोग करती है, परन्तु दुःख भी बहुत उठाती है। दूसरों की विपत्तियों का अनुभव वह बहुत शीघ्र कर लेती है और दूसरों के मनोभावों को समझने में भी उसे विलम्ब नहीं होता। अधिकांश स्त्रियाँ एक तीव्र दृष्टि से ही जान लेंगी कि किसी मनुष्य पर कैसी बीत रही है। वह प्रसन्न-चित्त है अथवा खिन्न। वह अपनी चेष्टाओं में सफल हुआ अथवा असफल, और विशेषतः वह अब भी उससे प्रेम करता है अथवा नहीं। स्त्री सहानुभूति की एक अपूर्व भेंट है, इसी से रोगी और पीड़ितों के लिए वह अत्यन्त आवश्यक व अमूल्य वस्तु है।

स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक भावुक हैं और उनके मनोभाव पुरुषों से ज़्यादा दृढ़ हैं। इसीसे स्त्रियाँ पुरानी रूढ़ियों और रीति-रिवाजों की अधिक हामी होती हैं। उनको अपने परिवार से सम्बन्ध रखने वाली किसी वस्तु के विछोह से असहनीय दुख होता है और वह अपने धार्मिक विचारों में दृढ़ होती हैं।

पुरुष अग्रगामी है, परन्तु स्त्री मार्ग-प्रदर्शक। साधारणतः स्त्री किसी आकस्मिक और प्रबल परिवर्तन को, नए नियमों और सिद्धान्तों को घृणा की दृष्टि से देखती है और वह जाति-भेद रखने में कट्टर होती है। मनुष्य सब अवस्थाओं के मनुष्यों से परस्पर मिलते हैं, परन्तु स्त्रियाँ नहीं।

पुरुष-स्वभाव बलिष्ट होता है, स्त्री-स्वभाव तीव्र। वह शारीरिक बल में पुरुष से कम है, अतएव वह अपना क्रोध वाणी से प्रकाशित करती है। इसीसे कहा गया है कि यद्यपि स्त्री की जिह्वा तीन इञ्च की ही होती है, परन्तु जब वह दुष्ट स्वभाव की होती है, तब छः फ़ीट लम्बे आदमी को उससे मार सकती है।

पुरुष नियमपूर्वक काम करने में अधिक निपुण होते हैं, स्त्री कार्य-चतुर अधिक होती है। पुरुष नियम बनाते हैं, स्त्री शिष्टाचार की नींव डालती है। वह अधिक व्यवहार-कुशल होती है। स्त्री का रसज्ञान लोक-प्रसिद्ध है। वे अल्प सामग्री से ही सुन्दरता व शोभा दिखला सकती हैं और निर्धनावस्था में भी सौन्दर्य की अनुपम छटा प्रदर्शित कर सकती हैं। वे श्रृङ्गार-प्रिय होती हैं।

स्त्रियाँ साधारणतः अपने व्यवहार में बड़ी उदार होती हैं। पुरुष किसी मनुष्य अथवा वस्तु को प्यार कर सकता है और नहीं भी कर सकता; परन्तु स्त्री सदा सीमा पर रहती है; वह या तो किसी वस्तु या मनुष्य को प्यार की दृष्टि से देखती है अथवा घृणा की।

पुरुष शीघ्रता में प्यार करता है। परन्तु स्त्री-प्रेम इतना प्रबल होता है कि वह जिसको प्यार करती है उसके किसी दोष को स्वीकार नहीं कर सकती और जिससे घृणा करती है उसका कोई गुण भी नहीं देख सकती। वह जिससे प्रेम करती है उसकी भूलों के लिए सैकड़ों बहाने ढूँढ़ निकालती है, किन्तु जिससे वह घृणा करती है, उसकी साधारण भूल भी उसके लिए असहनीय है। यही कारण है कि स्त्रियाँ वास्तविक असत्य बहुत कम बोलती हैं, क्योंकि वे प्रथम इसके कि कुछ कहती हैं अपने को समझा लेती हैं कि उनका कहना ठीक है। स्त्री चाहे कभी अपना पाप स्वीकार कर ले, पर अपना दोष नहीं स्वीकार करेगी। पुरुष कह देगा कि उससे अपराध हुआ, पर स्त्री केवल इतना कहेगी कि भूल हो गई।

स्त्री अपने गुप्त भेद को विशेषतः अपनी सम अवस्था वाली स्त्रियों के भेद को छिपाने में बड़ी निपुण होती है, पर दूसरों के भेद को नहीं।

पुरुष राज्य करता है, परन्तु स्त्री शासन करती है। पुरुष चाहे अगुआ बन जाय, परन्तु मार्ग स्त्री ही दिखाती है। पुरुष प्रस्ताव करता है, मनसूबे बाँधता है, परन्तु साहस स्त्री ही बँधाती है। पुरुष चाहे स्त्री को सता ले, परन्तु स्त्री का ही प्रभाव उस पर पड़ता है।

पुरुष परिवार का मुखिया होता है, परन्तु स्त्री परिवार का हृदय होती है। बिना स्त्री के गृह सुखी नहीं हो सकता, इसी कारण उसे गृहिणी कहते हैं। गृह की वास्तविक स्वामिनी वही है। पुरुष-प्रकृति प्रेम-रूपी जल की वैसी धारा नहीं है, जैसी स्त्री-प्रकृति। पुरुष प्रेम के प्रमाण नहीं चाहता, स्त्री का आत्मसमर्पण ही उसके लिए यथेष्ट प्रमाण है। परन्तु स्त्री पुरुष के प्रेम पर सर्वदा विचार करती रहती है। वह उसके प्रेम के निश्चित प्रमाण दिन में कई बार उसके मुख से व उसके नेत्रों द्वारा चाहती है।

पुरुष प्रेम में शीघ्रता करता है। वह क्रमागत तीव्र

भावों की प्रत्येक अवस्था में भागता-सा है ; मानो वह उनसे पीछा छुड़ाना चाहता है। किन्तु स्त्री पग-पग पर रुकती है। पुरुष थोड़ा प्रेम करता है और अनेक बार, परन्तु स्त्री अधिक और कभी-कभी। स्त्री प्रेम की वेदी पर अपने समस्त जीवन को बलि कर सकती है, परन्तु पुरुष अपनी तृष्णा बुझाने के लिए कभी-कभी अपनी प्राणप्रिया की भी बलि दे देगा। स्त्री का प्यार लगातार होता है, परन्तु पुरुष को प्रेम के दौरे से आते हैं।

प्रेम पुरुष-जीवन की एक साधारण घटना है, परन्तु स्त्री-जीवन प्रेम पर ही अवलम्बित है। प्रेम की भिखारिणी को ठुकराना मानो सर्पिणी से खेलना है।

पुरुष अधिक निश्चयी, पुरुषार्थी और स्फूर्तिमान होता है, स्त्री अधिक सहनशील, शान्त, प्रेमी उदार व एकरस। अतएव पुरुष अच्छा सर्जन (चीर-फाड़ करने वाला) और स्त्री अच्छी नर्स (सेवा-शुश्रूषा करने वाली) बनती है।

स्त्री नम्र, लज्जावान, शीलवान और कोमल होती है। इसके विपरीत पुरुष कठोर, ढीठ और चञ्चल होता है।

स्त्री-पुरुष यदि एक दूसरे के मनोभावों को समझ लें तो उनका जीवन स्वर्गीय प्रकाश एवं स्फूर्ति से भर जाय और उनके जीवन में प्रेम की सुखद निर्झरिणी शत-शत धाराओं में प्रवाहित हो चले।*

—राधाकृष्ण अग्रवाल

* * *

हमारा कर्त्तव्य

यह नहीं कहा जा सकता कि कोई बात सनातन है, इसलिए स्वाभाविक भी है। हमारे समाज में कई चालें ऐसी हैं जिन्हें हम यदि सनातन ही कहें तो अनुचित न होगा। यहाँ तक कि ऐसी प्रथाओं और चालों ने कहीं-कहीं क़ानून का भी रूप धारण कर लिया है। ऐसी प्रथाएँ अभ्यास पड़ जाने के कारण भले ही स्वाभाविक मालूम पड़ें, पर स्वाभाविक शब्द के असली अर्थ में इनका अस्तित्व कहीं नहीं है। किसी ज़माने में—और शिक्षित कहे जाने वाले इस ज़माने में भी कहीं-कहीं—मनुष्य के द्वारा मनुष्य को दास बना कर रखना स्वाभाविक समझा जाता था। साम्राज्यवादियों की दृष्टि में "हमीं सब तरह से योग्य हैं, इसलिए हम दूसरों का रक्त चूस-चूस कर जिएँ" का सिद्धान्त बिलकुल स्वाभाविक दीखता है। किसी काल में वैधव्य प्राप्त होते ही स्त्री का अपने पति के साथ सती न होना अस्वाभाविक सा देख कर लोगों का विधवा पत्नी को पकड़ कर आग में झोंक देना भी स्वाभाविक समझा जाता था। कुछ समाजों में स्त्री का परदे के अन्दर सड़ना ही स्वाभाविक समझा जाता है। आज तक लड़की का अपने माता-पिता का घर छोड़ कर एक-दूसरे ही पुरुष के घर जीवन भर के लिए चला जाना और उसके लिए अपने सारे व्यक्तित्व की हत्या कर डालना स्वाभाविक समझा जाता है। एक पुरुष के तीन-तीन, चार-चार स्त्रियों से विवाह करने में कोई अस्वाभाविकता नहीं समझी जाती, पर एक स्त्री का एक से दूसरी शादी करना ज़रूर अस्वाभाविक समझा जाता है। और क्या कहें, स्त्री का मुग्धा, लज्जालु, भीरु और अबला तथा पुरुष की सदा आज्ञाकारिणी बना रहना आज भी स्वाभाविक गुण समझा जाता है। हमारा धर्म भी सनातन होने से हमें अपने लिए स्वाभाविक और नई बातें, नए सिद्धान्त अस्वाभाविक मालूम पड़ते हैं। पर अब प्रश्न यह है कि माता-पिता का अपनी सन्तान के पालने-पोसने और शिक्षा देने का भार जो सदा से चला आया है, स्वाभाविक है या अस्वाभाविक? यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो पिता के लिए यह भ्रम के कारण भले ही स्वाभाविक दिखाई दे, पर वास्तव में है यह उसी प्रकार अस्वाभाविक जिस प्रकार पति के ऊपर पत्नी के भरण-पोषण का भार। अपढ़ और अज्ञानान्ध स्त्रियाँ भले ही इस विचार का स्वागत न करें, पर समझदार स्त्रियाँ पति सरीखे किसी भी पुरुष द्वारा, साधारण स्थिति के रहते हुए, अपना पाला जाना अपमानजनक समझेंगी। हम पुरुष जब देखते हैं कि हमारे पास अपने पालन-पोषण के लिए पर्याप्त साधन हैं तो इस निमित्त अन्य किसी द्वारा द्रव्य ग्रहण करने में अपमान समझ कर सङ्कोच करते हैं। प्रेम से किसी का दिया हुआ लेना अथवा निकम्मेपन के कारण लेना अलग बात है। इसी प्रकार स्त्री भी अपने भर्ता के, अथवा लड़की अपने पिता के समर्थ रहते हुए अन्य पुरुष

* डॉ० बरनार्ड हॉलैण्डर के एक लेख के आधार पर।

द्वारा दिए हुए द्रव्य को स्वीकार करते हुए अपमान समझती है। कन्या पिता के समर्थ रहते हुए पति के अथवा अन्य रिश्तेदारों के द्रव्य को इसलिए स्वीकार करती है कि उसको सिखाया जाता है कि "पति ही तेरा पालन-पोषण करेगा और इसलिए अब तू पति की दी हुई वस्तु द्रव्य आदि से सन्तोष करना" अथवा "फ़लाने फ़लाने रिश्तेदारों से तो रुपया लिया ही जाता है, इनसे न लेगी तो किससे लेगी" इत्यादि। यह बात यदि स्वाभाविक ही हो तो इसका स्त्री-समाज पर उतना हानिकारक प्रभाव न पड़े जितना कि इस समय पड़ रहा है! लड़की और उसकी माता यही समझती है कि शादी हो जाने के बाद लड़की के भरण-पोषण की सारी चिन्ता दूर हो जायगी। वह फिर चाहे जैसी बनी रहे। यही कारण है कि लड़कियों की शिक्षा पर ध्यान बहुत कम दिया जाता है और उन्हें अपने पैर पर खड़े होने की कोई बात नहीं सिखाई जाती। वे केवल घर सजाने की और भोगने की पुतलियाँ बनाई जाती हैं और नहीं तो दासियाँ। और ऐसी अयोग्य कन्याओं की चिन्ता से मुक्त होने के ही अभिप्राय से पढ़े-लिखे, कमाऊ पूत फुसला-लुभा कर दामाद बना लिए जाते हैं। पर ऐसे अनमेल विवाहों का यही परिणाम होता है कि सारा दाम्पत्य जीवन दुःखमय हो जाता है और पति-पत्नी अपने दुर्भाग्य के लिए आमरण रोते रहते हैं। ऐसी लड़की बिरली ही मिलेगी जो अपने प्राणेश्वर का भरण-पोषण काम पड़े पर कर सके। पिता को लीजिए। उसको उसकी शादी होने के पहले ही से यह सिखाया जाता है कि शादी होने पर उसे अपनी स्त्री और सन्तान के पालन-पोषण का भार अपने ही ऊपर लेना पड़ेगा। यह है कारण, जिससे विवाहित पुरुष अपनी स्त्री और बच्चों के भरण-पोषण कार्य को बिलकुल स्वाभाविक समझने लगता है। वह कई बार इसी चिन्ता में ग़ोते खाते-खाते क्षीणायु हो, शीघ्र काल के गाल में स्थान पाता है। फिर यदि विवाहित बेटे को कहीं यह बात अच्छी तरह मालूम हो गई कि बेटे और बेटे के आश्रितों का प्रबन्ध बाप ही करता है तो फिर वह निश्चिन्त हो, दुपट्टा तान, सुख की नींद सोता है, तथा माँ से सङ्कोचाभाव के कारण अड़-अड़ कर पिता का रुपया खींचता रहता है। अर्थात् जहाँ लड़कों को यह बतला दिया जाता है कि उनके भरण-पोषण का भार पिता पर पड़ता है, वहाँ वे नौकरी मिलने के पूर्व निकम्मी और फ़िज़ूलख़र्ची की आदतें डाल लेते हैं और नौकरी मिलने के उपरान्त अपने कुटुम्ब की चिन्ता के कारण सुख से अपनी कमाई का भी उपभोग नहीं कर पाते। पिता को अनुभव होने लगता है कि लड़कों का पालन-पोषण उसके द्वारा ही होना अस्वाभाविक है। यह स्पष्ट रूप से लड़के-लड़कियों की उपेक्षा और दुर्दशा में दिखाई पड़ता है।

अब माता के सन्तान के पालन-पोषण के सनातन भार की स्वाभाविकता या अस्वाभाविकता जाँचने की बात रही। एक तरह से यही स्वाभाविक जान पड़ता है कि स्त्री को किसी की भी अपेक्षा न करते हुए अपनी सन्तान के लालन-पालन का भार अपने ही ऊपर लेना चाहिए। पर सनातन से तो स्त्री ने सन्तान को उत्पन्न कर उसे अपना दूध भर पिलाने में स्वाभाविकता दिखलाई है। सन्तान के लालन-पालन में पुरुष ने स्त्री के साथ सहयोग किया है तथा ऊपर से स्त्री के और बच्चों के अन्न, वस्त्र, औषधि, शिक्षा आदि का भार किसी विशेष संस्कार या शिक्षा के कारण अपने ही ऊपर लिया है, जो बात ऊपर बतला दी जा चुकी है कि अस्वाभाविक है। स्त्रियों ने अशिक्षा के कारण सन्तान-शास्त्र से अपरिचित रह कर प्रजोत्पादन और प्रजापालन में भी सदियों से त्रुटियाँ की हैं और साथ ही अत्याचार, जो अस्वाभाविक है। कितनी माताओं ने गर्भधारण के पूर्व और फिर गर्भधारण काल में आवश्यक नियमों का पालन न कर, कुरूप तथा विकलाङ्ग और निर्बल सन्तानें उत्पन्न कीं। कितनी माताओं ने बच्चों को ठूँस-ठूँस कर खिला कर उनकी जानें लीं। कितनी माताओं ने अपने कठोर हाथों से नवजात शिशुओं को असहाय अवस्था में फेंक कर अथवा उनका गला घोंट कर यमपुर पहुँचाया। अर्थात् जो कार्य करना स्त्री को स्वाभाविक था उसमें से अधिकांश पुरुषों ने किया। जो कार्य करना स्त्री को अस्वाभाविक था वह उसने किया। और यह कम से कम हमारे समाज में तो सनातन से चला आया है।

इस तर्क-प्रणाली से पाठक समझेंगे कि माता-पिता का सन्तानोत्पादन के पूर्व और तदुपरान्त आधुनिक रूप में प्रचलित कर्त्तव्य किसी सीमा तक भले ही स्वाभाविक हो, पर समस्त रूप में स्वाभाविक नहीं

है। जिन्हें इस बात में विश्वास न हो उन्हें स्पार्टा नगर के पुरातन इतिहास का निरीक्षण करना चाहिए। किशोरावस्था के पहले ही स्पार्टन बालकों को अपने माता-पिता का साथ छोड़ देना पड़ता था और माता-पिता उनके पालन-पोषण से निश्चिन्त रहते थे। यह बात प्रेमाभाव के कारण न थी, प्रत्युत उनकी तत्कालीन शिक्षा का प्रभाव था जिसके कारण उन्हें अपनी सन्तान का मोह न रहता था। प्रकृति में तो यही देखा जाता है कि किसी पशु का बच्चा जब तक हाथ-पैर हिलाने में समर्थ नहीं हुआ है, तब तक ही केवल उसकी माता—पिता नहीं—उसका उदर-पोषण करती है। इस बात से पिता निश्चिन्त रहता है। ज्योंही वह काफ़ी बड़ा हो जाता है, त्योंही माता उसका साथ देना और सहायता करना छोड़ती जाती है। यदि कोई इस स्थान पर कहे कि मनुष्य सभी बातों में पशुवत् नहीं हो सकता। वह उससे अपनी बुद्धि के कारण श्रेष्ठ है। पर यह स्मरण रहे कि इसी बुद्धि ने मनुष्य से ऐसे नीच कार्य कराए हैं और करा रही है, जिन्हें पशु तक कभी न करेगा और जो मनुष्य के नाम को कलङ्कित करते हैं। उदाहरण की कमी नहीं। असहाय नवजात शिशु की हत्या इसलिए करना कि जिसमें माता-पिता का अवैध सम्बन्ध प्रकट न हो, अथवा अबोध, वयस्क बालिका का एक यमपुर की यात्रा की तैयारी किए बैठे अयोग्य बुड्ढे के गले बाँध कर उसे जन्म भर रुलाना आदि पशुओं में नहीं देखा जाता। कहा जाता है कि "आहार निद्रा भय मैथुनंच सामान्य मेतत्पशुभिर्नराणां, धर्मोहितेष्यामधिको विशेषो धर्मेणहीना पशुभिः समानाः।" आह! इसी बुद्धि के बल से मनुष्य ने धर्म बनाए। वे धर्म, जिनके कारण मनुष्य ने पशु से भी अधिक दुष्ट बन कर इस पृथ्वी की छाती को पशु के ख़ून से भी नहीं, पशु से श्रेष्ठ कहे जाने वाले मनुष्य के ही ख़ून से रँगी है। यह वही बुद्धि है, जिसने धर्म के न पालने वाले की मृत्यु कराने के लिए भिन्न-भिन्न उपायों और यन्त्रों का आविष्कार करने में अपना कौशल दिखाया है। मानव जाति का उद्धार करने वाले सत्पुरुषों को मनुष्य की इसी धर्म-बुद्धि ने सूली पर चढ़ाया है, विष पिलाया है, दीवालों में चुनवाया है, तलवार से क़त्ल किया है और बन्दूक़ की गोली से उड़ाया है! माना कि मनुष्य ने इसी बुद्धि से लाखों मूक पशुओं की प्राण-रक्षा भी की है, जङ्गली लोगों को सभ्य बनाया है, मनुष्य-मनुष्य में भ्रातृ-प्रेम उत्पन्न किया है, साहित्य, सङ्गीत और कला से "पुच्छ विषाणहीन साक्षात्पशुओं" को देवताओं के स्थान तक उठाया है, पर जिन बातों से यह किसी ज़माने में किया गया है वे ही बातें इस ज़माने में उसे क़ायम रखने के लिए सर्वथा उपयुक्त नहीं हो सकतीं। उनमें से कई अस्वाभाविक प्रतीत होंगी। स्वाभाविक वही है, जो भिन्न-भिन्न सामयिक परिस्थितियों के अनुकूल हो। आज हमें जो बात आवश्यक है वह स्वाभाविक है, न कि करोड़ों वर्षों पहले जो आवश्यक समझी जाती थी वह। स्वाभाविक जीवन का यही रहस्य है कि उसमें आवश्यक परिवर्तन होते रहा करें। समयानुकूल परिवर्तन कर लेने की आदत (Adaptability) ही उन्नति और विकास का प्राण है।

आज हम जो इस पतितावस्था में आ गिरे हैं वह हमारे रूढ़ियों के पोषण और प्राचीनता की अन्ध-पूजा के कारण ही गिरे हैं। हमारी मानसिक वृत्ति इतनी दब्बू हो गई है कि अपने ही ऊपर अत्याचार करने वाली क्या, अपना सर्वनाश करने वाली बातों और मनुष्यों को उठा-कर हम पछाड़ नहीं सकते। हमारी स्वाभाविकता रफ़ू हो चुकी। हम क्रान्ति करने से हिचकिचाते हैं। अपना अस्तित्व क़ायम रखने के लिए जो मर मिटने की आदत होती है, उसे हम अपने में पड़ने नहीं देते। अभी हमें यदि कुछ आता है तो वह है मुर्दा सरीखा पड़ा रहना। और कहते हैं कि हम जी रहे हैं! हम कहते हैं कि हमारे आँखें हैं, पर हम यह नहीं देखते कि संसार की अन्य जातियाँ किस तरह हथेली पर जान रख कर गुफाओं में से और नदियों के ऊपर से सैकड़ों मील प्रति घण्टे के वेग से दौड़ लगा रही हैं, दिन-रात बिजली, आग, पानी के बीच में रह रही हैं, हवा में उड़ रही हैं, समुद्रों में ग़ोते लगा रही हैं, भयङ्कर हिंसक पशुओं से दोस्ती कर रही हैं, गोला-बारूद और विषैली हवाओं से खेल रही हैं और हँसते-खेलते तरह-तरह की क्रान्तियाँ कर सच्चे जीवन का आनन्द लूट रही हैं। यही हमें सीखना है। यही हमारे लिए स्वाभाविक दीखता है।

सन्तान को आवश्यक समय के हो जाने पर, अर्थात् जब तक बच्चे को माता का स्तन्यपान मिलता हो

अथवा डॉक्टरों की सम्मति से मिलना चाहिए, अपने पास न रखना चाहिए। स्थानीय राष्ट्रीय बाल-मन्दिरों में भेज देना चाहिए और निश्चिन्त हो, आत्मोन्नति में लगा रहना चाहिए। बच्चों को घर में साथ रखने से माता-पिता की उन्नति में बाधा आती है तथा उनके हृदय में स्वार्थ और ईर्ष्या की उत्पत्ति होती है। घरों में उचित वातावरण न होने से बच्चों की भी आदतें, विचार, संस्कार आदि बिगड़ जाते हैं। न तो उनके राष्ट्रीय विचार हो सकते हैं, न उनमें देशभक्ति उपज सकती है और न वे मानव जाति की सेवा कर सकते हैं। आज हमारे देश में जो ऐक्य का अभाव है उसका बड़ा भारी कारण बच्चों का माता-पिता के साथ आवश्यक समय से अधिक रहना है। बाल-मन्दिरों में बच्चे किन्हीं ख़ास माता-पिता के न कहला कर समाज और देश के बच्चे कहलाएँ और ये एक ही माँ या बाप से उत्पन्न होने के कारण भाई-भाई या बहिन-बहिन या बहिन-भाई न कहलावें, किन्तु एक राष्ट्र के होने के कारण कहे जायँ। इन बच्चों को यह कि वे किस स्त्री-पुरुष के बच्चे हैं, तब तक न बतलाया जाय जब तक कि वे विवाहोचित आयु के न हो जावें। यदि यह ज्ञान इस अवस्था के पूर्व कराना है तो उनके सम्मुख राष्ट्र के उन स्त्री-पुरुषों के नाम रक्खे जायँ जिनके कारण राष्ट्र देदीप्यमान हुआ है। आज-कल क्या होता है कि अधिक बच्चों को पहले अपने-अपने अकर्मण्य माता-पिताओं के नाम मालूम होने से वे उनसे प्रेम करने लगते हैं और उन्हीं का अनुकरण। राम, कृष्ण, प्रताप, शिवाजी आदि से प्रेम होता है तो चिरकाल बाद, और नहीं तो होता ही नहीं। प्रत्येक बालक-बालिका चाहे वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र, किसी भी माता-पिता से उत्पन्न हुआ हो, पर वह बड़े-बड़े ऋषि, राजा और नेताओं को ही अपना पूर्व पुरुष और सीता, सावित्री, दमयन्ती और उनकी समकालीन प्रख्यात महिलाओं को माता समझेगा। राष्ट्रीय बाल-मन्दिरों में बालक-बालिकाएँ एक ही साथ सम्वर्धित और शिक्षित किए जायँ और जहाँ तक हो सके, वेष और शिक्षा में समानता हो। प्रारम्भिक शिक्षा को छोड़, बाक़ी की शिक्षा में ऐच्छिक विषयों का आधिक्य रहे और किसी भी ऐच्छिक विषय को बालक-बालिकाएँ एक साथ ले सकें। ऐसी संस्थाओं में, चाहे वे भरत-खण्ड के किसी भी प्रान्त में क्यों न हों, केवल राष्ट्र-भाषा बोली और लिखी जाय। भारत की अन्य प्रान्तिक भाषाएँ उच्च शिक्षा के ऐच्छिक विषयों में ही सिखाई जायँ। राष्ट्र-भाषा के सर्वनाम, क्रिया, विशेषण में लिङ्ग का भेद न रक्खा जाय। बच्चों का वेष वह हो जो संसार भर में सरल, आवश्यक तथा उपयोगी हो। वस्त्र स्वदेशी ही हों। बचपन से लेकर बड़ी अवस्था तक बच्चों के एक-दूसरे के निरीक्षण में किसी प्रकार की बाधा न डाली जाय। अर्थात् बच्चों के सम्मुख बड़ी अवस्था वाले स्त्री-पुरुष भी नग्नावस्था में रह कर बच्चों को यह न मालूम होने दें कि वे किसी अङ्ग के उघाड़े रहने से लजाते हैं। इस लज्जा की साहित्य-रसिक भले ही भूरि-भूरि प्रशंसा कर आवश्यकता बतलाएँ, पर यह बड़ी हानिकारक है, क्योंकि बच्चों पर इसका एक विशेष कुप्रभाव पड़ता है। यह तो सभी मानेंगे कि पुरुष के सम्मुख हृष्ट-पुष्टाङ्ग सुन्दर मादा-पशु और स्त्री के सम्मुख नर-पशु नग्नावस्था ही में विचरते और किलोल करते फिरते हैं और किसी प्रकार का विकार उनके मन में नहीं उत्पन्न होता। इसलिए वस्त्र केवल शरीर-रक्षा ही के लिए न कि किन्हीं गुप्त अङ्गों के ढकने के लिए पहने जायँ। हम दिगम्बरावस्था में रहने से जङ्गली नहीं कहलाए जा सकते, क्योंकि हमें अब सब प्रकार के वस्त्र और फ़ैशन बनाना आता है। हमारी वस्त्र की सभ्यता तो इतनी बढ़ चुकी है कि हमारी स्त्रियाँ परदे, बुरक़े और चादरों में पहचानी भी नहीं जा सकती हैं कि वे मनुष्य ही हैं अथवा अन्य प्राणी। उपर्युक्त बात कोई नई बात नहीं है। अङ्गरेज़ पुरुष जाति में तथा स्त्रियों-स्त्रियों में अपने देश में भी कई जगह यह बात अब भी प्रचलित है। स्पार्टा में तो यह बात सफल भी हो चुकी, जो सुप्रसिद्ध है। जर्मनी की स्त्रियाँ पुनः स्पार्टा का दृश्य दिखलाने की इच्छुक हो रही हैं। बाल-मन्दिरों में रहने वालों को यह भी पता न लगने दिया जाय कि उन्होंने फ़लानी-फ़लानी जाति (Caste) में जन्म लिया था अथवा वे वैध या अवैध संयोग से उत्पन्न हुए थे। राष्ट्रीय-धर्म में ईश्वरोपासना के सभी समान रूप से अधिकारी रहें। जो भोजन राष्ट्र के स्वास्थ्य के लिए उपयुक्त हो वही सबों को दिया जाय। अवस्था बढ़ने पर रुचि के अनुसार भोजन किया जाय, पर विशेष वस्तु के लिए

बाध्यता कहीं भी न रहे। खान-पान में उन साथियों ही से परहेज किया जाय, जिनका किसी ख़ास रोग के कारण सहभोज में सम्मिलित होना दूसरों के लिए अहितकर समझा जाय। माता-पिता शिशु की हत्या इसलिए न करें कि उसका, उनके किसी विशेष अवस्था में पड़ जाने के कारण अवैध सम्बन्ध का फल होने से, समाज में तिरस्कार होगा अथवा उन्हें ही कलङ्कित होना पड़ेगा। ऐसे माता-पिता बालक को न्यायालय के सुपुर्द कर अपनी विशेष परिस्थिति का सन्तोषजनक प्रमाण देकर क्षमादान प्राप्त कर सकते हैं। बालहत्या दण्डनीय होगी। अवैध सम्बन्ध से बालक उत्पन्न करने वाली माता को भी बालक की प्रारम्भिक शिक्षा का ख़र्च देना पड़ेगा। सन्तान के मन्दिर में रहते हुए किसी भी प्रकार से माता-पिता का उसमें कदापि प्रवेश न हो। यदि पहले ही से वे प्रवेश पाए हुए हों तो उन्हें उसे छोड़ देना पड़ेगा। जब तक विवाह न हो तभी तक लड़के-लड़कियाँ राष्ट्रीय बाल-मन्दिरों से सहायता पाने के अधिकारी हों। विवाह होने पर संस्था से सम्बन्ध छूट जायगा। जब तक बालक-बालिकाएँ संस्था में रहेंगे तब तक माता-पिता द्वारा संस्था के प्रबन्धक के सिवाय सीधा बालक-बालिकाओं को आर्थिक सहायता देना नियम के विरुद्ध होगा। संस्था छोड़ने पर कोई भी अपने माता-पिता को अपनी सहायतार्थ बाध्य नहीं कर सकता। संस्था सिवाय अवैध विवाह करने के अपराध के तथा प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त होने के पहले नहीं छूट सकती। अवैध सम्बन्ध के कारण संस्था से निकले हुए बालक-बालिकाओं की सहायता करना दण्डनीय अपराध समझा जायगा। विवाह की अनुमति लड़की को सोलह और लड़के को बीस वर्ष के नीचे मिलेगी ही नहीं। विवाह केवल ठेका (Contract) रहे जिसमें कुछ शर्तें रहें। विवाह में माता-पिता का किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न रहे। वे केवल सलाह देने के अधिकारी रहें। बाल-मन्दिर के निरीक्षकों (Superintendents) की सलाह न लेने वालों का विवाह नाजायज़ समझा जाय। पति पर अपनी विवाहिता स्त्री के पालन-पोषण का भार अनिवार्य नहीं है। सब विवाह रजिस्टर्ड हों। बच्चे सिवाय सरकारी (राष्ट्रीय) प्रसूतिका गृहों के अन्यत्र कहीं न जने जायँ। प्रसव-काल में स्त्री के लिए जो कुछ ख़र्च आवश्यक होगा उसे स्त्री को ही देना पड़ेगा। उस स्त्री का पति उसके लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। एक ही स्त्री से एक सन्तान के बाद दो साल के अन्दर दूसरी सन्तान उत्पन्न करने वाले पुरुष से आर्थिक दण्ड लिया जाय। विवाहानन्तर एक वर्ष के पहले विवाहोच्छेद नहीं किया जा सकता और विवाहोच्छेद एक ही बार हो सकता है। किसी एक की मृत्यु हो जाने से दूसरा अविवाहित की तौर पर पुनर्विवाह कर सकता है। कोई भी विवाहोच्छेद बिना किसी विशेष कारण के साबित किए स्वीकृत न होवे। हर एक विवाहित पुरुष को अपनी कमाई में से अपने विवाह के दिन से एक बालक (बालिका) की प्रारम्भिक शिक्षा का पूरा ख़र्च प्रति मास देना पड़ेगा। सन्तान वाले पिता को सन्तान के हिसाब से ख़र्च देना पड़ेगा। विवाहोच्छेदक के यदि सन्तान न हो तो वह यह ख़र्च देने को बाध्य नहीं किया जा सकता। यह ख़र्च राष्ट्र के एक बालक के नाम से जमा किया जाय, न कि किसी ख़ास व्यक्ति के बेटे या बेटी के नाम से। प्रेमवश बालक-बालिका की उच्च शिक्षा के लिए माता-पिता या अन्य व्यक्ति द्वारा संस्था को जिसके नाम पर जो कुछ धन दिया जाय वह उसी की शिक्षा में ख़र्च किया जाय, और ऐसे ही शिक्षित बालक को अपने पिता द्वारा न अपनाए जाने पर दत्तक लेने का, विशेष सहायता देने वाले पुरुष को, अधिकार रहे। बालक-बालिकाएँ वयस्क होने पर अपने नाम पर दिए गए द्रव्य का हिसाब जाँचने के अधिकारी होंगे। इसी प्रकार विशेष दान देने वाले स्त्री-पुरुष भी। राष्ट्रीय शिक्षा देश की आवश्यकतानुसार समयानुकूल दी जायगी। तथापि उसमें सर्व-प्रथम बच्चों की शारीरिक और मानसिक उन्नति पर पूर्ण ध्यान दिया जायगा, जिससे वे बलिष्ठ, सुडौल और प्रफुल्ल-चित्त रहें, उनको आजन्म कसरत, खेल-कूद की आदतें पड़ जायँ और वे पवित्र मन लेकर, उत्तम शिक्षा ग्रहण कर स्वावलम्बी तथा सच्चे देशभक्त बनें। ब्रह्मचर्य, एक पत्नीव्रत और सत्य-प्रेम का महत्व उत्तमोत्तम व्याख्यानों द्वारा उन्हें समझाया जाय। बालक बालिकाओं को आरम्भिक शिक्षा में लिखना, पढ़ना, हिसाब आदि के साथ-साथ कोई न कोई ऐसा काम या ऐसी कला अवश्य सिखाई जायगी जिससे वे हमेशा नौकरी के भरोसे ही न रह अपने पैरों पर स्वयं खड़े रह सकें। यह अवस्था उनके विवाह के लिए संस्था

छोड़ने के पहले की है। यदि वे और भी सामाजिक सहायता का लाभ उठाना चाहेंगे तो उन्हें अविवाहित रहना पड़ेगा। उन्हें यही शिक्षा दी जायगी कि तुम्हारी चिन्ता तुम्हें ही करनी पड़ेगी। अतएव वे पवित्र और उत्तम वातावरण में पाले जाने के कारण ब्रह्मचारी बने हुए, सच्ची कामना से आत्मोन्नति में दत्त-चित्त रहेंगे। जब वे स्वावलम्बी हो जायँगे तब उनका प्रणय विवाह होगा। जीवन अतीव सुखमय होगा और समाज और देश पर होने वाले अत्याचार दूर होंगे। विवाह के समय नवयुवक और नवयुवतियों को अपनी संस्था के सुपरिण्टेण्डेण्ट्स से सलाह लेना इसलिए आवश्यक होगा कि उन्हें वयस्क होने तक यह पता न लगेगा कि उनके एक माता-पिता की या उनके ही समान अन्य स्त्री-पुरुषों की दोनों सन्तान होने के कारण उनका विवाह अनुचित है।

ऐसी राष्ट्रीय संस्था के शिक्षक, निरीक्षक तथा कार्यकर्ता सुशिक्षित, सुपठित, राष्ट्र की आवश्यकताओं को समझने वाले बालकों के माता-पिता भी बन सकते हैं। इन राष्ट्रीय बालक-बालिकाओं को किसी विशेष धर्म की शिक्षा नहीं दी जायगी, बल्कि संसार के सब धर्मों का सार—न कि परस्पर मारने-काटने का धर्म—सिखाया जायगा। ये बालक-बालिकाएँ कोई एक धर्म या जाति वाले न कहला कर बलिष्ठ, स्वावलम्बी, राष्ट्रीयता के भावों से लबालब भरे हुए, जीने के लिए मरना जानने वाले, सुखी, प्रेमी, पति-पत्नी के रूप में निकल कर भविष्य के सच्चे नागरिक बन, मानव जाति की हित-चिन्तना करेंगे।

पर ऐसी संस्थाएँ अकस्मात् उत्पन्न हो कहाँ से जावें? इन काल्पनिक भारतवर्ष के नगर-नगर ग्राम-ग्राम में स्थापित होने वाली राष्ट्रीय संस्थाओं का आधुनिक मातृ-मन्दिरों, अनाथालयों, विधवाश्रमों और ऋषिकुल-गुरुकुलों से ही प्रारम्भ हो सकता है और हमारा कर्त्तव्य है कि हम प्रथम इनको ही सहायता पहुँचाएँ और धीरे-धीरे इन्हें राष्ट्रीय बाल-मन्दिरों का रूप दे दें तथा देश के क़ानून द्वारा इन्हें स्वीकृत (Recognised) भ करा लें। हमें समाज में हलचल मचा देने ही की ज़रूरत है, बस।

—दामोदर शास्त्री, बी० ए०, विशारद

* * *

भारतीय नारी-जीवन की रूप-रेखा

भारतीय समाज में नारी जाति जितनी अरक्षित, असहाय, असमर्थ और विवश है, उतनी शायद संसार के और किसी भी भाग में नहीं है। हमारे देश में नारी की कोई अपनी सत्ता नहीं है। समाज में न तो उसका कोई ऊँचा स्थान है और न उसके प्रति आदर और सम्मान का भाव। वह केवल पुरुष के खेलने की एक सामग्री समझी जाती है; और ऐसी सामग्री, जिसे खेल से ऊबते ही पुरुष लात मार कर दूर हटा दे सकता है। समाज में उसके कोई अधिकार नहीं, घरों में उसकी कोई प्रतिष्ठा नहीं; मानो उसके जीवन का कोई मूल्य ही न हो। समाज कदाचित अपने अस्तित्व, अपनी स्थिरता और उन्नति के लिए स्त्री की कोई आवश्यकता ही नहीं समझता। कैसा अज्ञान है, कैसी भ्रान्त धारणा है!

स्त्री जाति के कष्टों और विपत्तियों का अन्त यहीं नहीं होता। समाज प्रत्येक अवस्था में उसके प्रति खड्ग-हस्त हुआ रहता है। छोटी ही उमर में लड़कियों की शादी होती है, वृद्ध और मृतप्राय खूसटों के गले में उन्हें बाँध दिया जाता है, फलतः जीवन के उषा-काल में ही वे विधवा बन कर बैठती हैं। कलियाँ खिलने के पहले ही मुरझा जाती हैं, वसन्त के प्रारम्भ में ही पतझड़ का आगमन हो जाता है। असमय में मुरझाई हुई ऐसी बाल-विधवाओं के जीवन-यापन के लिए समाज कोई व्यवस्था नहीं करता। यौवन में वह उन्हें त्याग, तप और सदाचार का उपदेश देता है। समाज कहता है कि तुम्हें भूख लगे तो लगने दो, किन्तु भोजन देख कर ललचाओ मत, उसे खाने का साहस तो कदापि न करो। इसी में समाज की प्रतिष्ठा है। उसके सदाचार की रक्षा इसी से होगी। किन्तु यह कितनी अस्वाभाविक बात है? प्रकृति की भूख को कौन दबा सकता है? उसे कौन नष्ट कर सकता है? जो ऐसा प्रयत्न करेगा, उसे प्रकृति का कोप-भाजन बनना पड़ेगा अथवा वह छिप कर प्रकृति की भूख बुझाते हुए अपने साथ ही समाज को धोखा देगा, उसकी आँखों में धूल झोंकेगा और सदाचारी बना रहेगा।

इस प्रकार की विधवाओं की हमारे यहाँ कमी नहीं

है, जिन्होंने अभी दुनिया के स्वर्ण-भोर की प्रथम किरण भी नहीं देखी। बढ़ कर, युवती होकर, जब वे अतुल ऐश्वर्य, वैभव और सुख-सम्पदा से भरी हुई धरित्री की ओर देखती हैं और फिर अपने सूने संसार की ओर, तो एक अभावनीय अभाव की वेदना से उनका हृदय हाहाकार कर उठता है। उद्दाम वासना की लोल लहरें उनके हृदय को मथ डालती हैं। संयम की शिक्षा उन्हें नहीं मिली होती, समाज केवल उनकी चित्त-वृत्तियों का निरोध करना चाहता है। ऐसा करने के लिए वह उन्हें दबाता है। फल उलटा होता है। दबाव पाकर असंयमित वृत्तियाँ भड़क उठती हैं। फलतः आए दिन व्यभिचार के कितने ही घृणित दृश्य देखने के लिए हमें विवश होना पड़ता है।

इनके अतिरिक्त स्त्रियों की एक ऐसी भी संख्या है, जो विधवा तो है ही, साथ ही अनाथ भी है। उसके लिए कहीं शरण नहीं। मानसिक भूख-प्यास के साथ ही उसे अपनी शारीरिक भूख-प्यास पर भी विजय प्राप्त करनी पड़ती है! समाज ने ऐसी स्त्रियों के लिए भी कोई व्यवस्था नहीं की।

स्त्रियों की शिक्षा का भी कोई प्रबन्ध नहीं है। न तो उन्हें लिखना-पढ़ना सिखाने की कोई समुचित व्यवस्था है और न कोई औद्योगिक काम-धन्धा सिखा कर स्वावलम्बी बनाने की ही। इसी के परिणाम-स्वरूप आज भारतीय नारी-समाज की यह अधोगति है। वे अरक्षित हैं, गुण्डों और बदमाशों के द्वारा पग-पग पर वे छेड़ी जाती हैं, उनका निर्यातन होता है। समाज में उन्हें नीचा देखना पड़ता है। समाज के दोष से ही जो दुराचार और दुष्कृत्य फैल रहे हैं, उन्हें उनका उत्तरदायी होना पड़ता है और उनके लिए कलङ्कित भी। घर-बाहर, कहीं उन्हें पैर रखने की जगह नहीं रह जाती। यह कितनी शोचनीय दुरवस्था है, कितनी दयनीय!! भारतीय स्त्रियों की इस विवशता, असमर्थता और अरक्षितता का खुला चिट्ठा पढ़ कर कौन सहृदय ख़ून के दो आँसू बहाने के लिए बाध्य न होगा?

स्त्री पुरुष की अर्द्धाङ्गिनी है। आधे अङ्ग की जब ऐसी दुरवस्था होगी, उस समय आधा अङ्ग स्वस्थ कैसे रह सकेगा? आज भारतीय समाज जिस वेग से पतन की ओर अग्रसर हो रहा है, वह किसी से छिपा नहीं है। किन्तु यह परिस्थिति वाञ्छनीय नहीं है। इसका अन्त जिस प्रकार हो, करना ही पड़ेगा। और उसके लिए केवल एक ही उपाय है, स्त्री-समाज की उन्नति और सुधार। स्त्रियों को बिना शिक्षित बनाए हमारी सामाजिक उन्नति नहीं हो सकती। और बिना अपने समाज को समुन्नत बनाए, हम संसार के किसी भी राष्ट्र के सम्मुख सिर उठाने की योग्यता प्राप्त नहीं कर सकते।

आज विदेशी शासन हमारे लिए असहनीय हो गया है, उसकी जड़ उखाड़ फेंकने के लिए हम आतुर हो उठे हैं; किन्तु हम अपनी सामाजिक रूढ़ियों और कुप्रथाओं की जो ग़ुलामी कर रहे हैं, उसके प्रति हमारा ध्यान कभी आकर्षित नहीं हुआ। जिन लोगों की यह धारणा है कि राजनैतिक स्वाधीनता प्राप्त करते ही हमारा जीवन सुख, सन्तोष और पूर्णता से भर जायगा, वे भ्रम में हैं। जब तक हम अपनी इच्छा और वासना की, सामाजिक रूढ़ियों और कुप्रथाओं की ग़ुलामी का जुआ अपने कन्धे से उतार न फेंकेंगे, हमारे जीवन में सुख और सन्तोष की प्रकाश-रेखा न फूट उठेगी। अतः देश के भाग्य-निर्णायकों को इस ओर से उदासीन न होना चाहिए।

समाज में स्त्रियों के प्रति नगण्यता और उपेक्षा का जो भाव फैला हुआ है, उसका एक कारण वर्तमान समय की वैवाहिक असमानता भी है। जिन पवित्र और संयमित भावों को लेकर विवाह-प्रणाली का प्रचलन हुआ था, वे भाव अब मानव-समाज में रह नहीं गए हैं; किन्तु विवाह तो फिर भी होता ही जाता है। इच्छा रहते हुए भी इसके विरुद्ध कुछ कहने का साहस लोग नहीं कर सकते; क्योंकि वैसा करने पर वे पतित, विद्रोही और व्यभिचार फैलाने वाले क़रार दिए जाएँगे। किन्तु यह निश्चित है कि इसका परिणाम अच्छा नहीं हो रहा है। जिस शरीर में जीव नहीं रह गया, मोह के वशीभूत होकर उसे पकड़े रहना बुद्धिमानी नहीं कही जा सकती। विवाह की भावना में अब संयम और पवित्रता का स्थान नहीं है; वह केवल वासना और विलास-लालसा को चरितार्थ करने की एक सुगम प्रणाली समझा जा रहा है। आजकल के विवाह व्यभिचार के 'पासपोर्ट' हैं। यद्यपि यह सत्य कड़वा है, किन्तु हम इसकी सचाई से मुँह नहीं फेर सकते। वेश्या से व्यभिचार करना समाज में निन्दनीय समझा

जाता है, किन्तु विवाह करके विवाहिता स्त्री से व्यभिचार करने में समाज को कोई आपत्ति नहीं है। नाच गाकर, बाजा बजा कर, बड़े समारोह के साथ समाज ऐसे व्यभिचार के लिए हमारे नवयुवकों को खुल्लमखुल्ला पासपोर्ट दे देता है। इस पासपोर्ट को प्राप्त कर लेने के बाद फिर उनके व्यभिचार का नियन्त्रण करने की सामर्थ्य किसी में नहीं रहती, शायद इसकी आवश्यकता ही नहीं समझी जाती। बेचारी स्त्रियाँ इतनी निरीह, शक्तिहीन और असमर्थ होती हैं कि वे इन अत्याचारों का कोई प्रतिकार नहीं कर सकतीं, सुख और स्वच्छन्दता से जीवन नहीं बिता सकतीं—हालाँकि दिन-रात पति की वासना-तृप्ति और कामुकता का शिकार बनने के बाद भी उनके मन और स्वास्थ्य की हालत ख़तरनाक ही रहती है। किन्तु पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में अभी भी सद्भावना का कुछ अधिक अंश है। वे अपने जीवन को उद्दाम वासना की आँधी में, विलास-लालसा की लोल-चञ्चल लहरों में बह जाने देती हैं, यह सोच कर कि इससे उनके पति को सुख होगा। त्याग और आत्म-समर्पण के इसी भाव ने नारी-जाति का सर्वनाश किया है।

विवाह का—उस विवाह का, जिसके अन्तराल में पितृ-ऋण से उऋण होने की महान् भावना निहित थी, जो सृष्टि का उद्देश्य पालन करने के साथ ही सहधर्मिणी के सहयोग से जीवन को उन्नत और साधनापूर्ण बनाने के भावों से ओत-प्रोत था, जिसके द्वारा मनुष्य की असंयमित और उद्दाम वासनाओं का नियन्त्रण होता था—आज जो दुरुपयोग हो रहा है, उसे देख कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। स्वभावतः मन में एक प्रश्न उठ खड़ा होता है कि गृहिणी और वेश्या में आज क्या कोई अन्तर रह गया है? थोड़ा धैर्यपूर्वक विचार करने और ध्यान देने से एक ही निश्चित उत्तर मिलता है और वह है नकारात्मक। अपनी गृह-देवियों की तुलना वेश्या से करते हुए आत्मग्लानि और लज्जा से हमारा सिर झुका जाता है; किन्तु जो सत्य है, उससे मुँह फेर कर कोई कहाँ जा सकता है? वेश्या से गृहिणियों में यदि कोई अन्तर है तो यही कि वेश्याओं का क्षेत्र विस्तृत है, गृहिणियों का सङ्कुचित। इसके अतिरिक्त और कोई अन्तर नहीं दीख पड़ता। वेश्याएँ समाज के द्वारा वेश्या-वृत्ति करने के लिए मजबूर की जाती हैं (स्मरण रहे, कोई भी ऐसी वेश्या न दीख पड़ेगी जिसने सामाजिक उत्पीड़नों, अशिक्षा अथवा अज्ञान के बिना, स्वेच्छा से यह वृत्ति ग्रहण की हो, अतः उनके इस गर्हित जीवन का सारा दायित्व समाज के ही ऊपर है) और समाज द्वारा ही विवाह के बन्धन

श्रीमती इन्दुमती गोइनका
आपको वर्तमान सत्याग्रह-संग्राम में कलकत्ते के पुलिस वालों के नाम अपील प्रकाशित करने पर छः मास का कारावास दण्ड दिया गया है। बङ्गाल-प्रान्त में जेल जाने वाली आप सब से पहली महिला हैं।

में बाँध कर स्त्रियाँ भी पति की कामुकता का शिकार बनने के लिए बाध्य की जाती हैं। वेश्या अनेक को प्रसन्न करके अपनी जीविका उपार्जन करती है, स्त्री एक को। वेश्या अपने रूप और यौवन का वैभव लेकर बाज़ार में बैठती है, स्त्री एक नियत पुरुष के हाथ अपना सर्वस्व बेच देती है। वेश्या अपने रूप और यौवन को निखारने के लिए सदैव सचेष्ट रहती है, स्त्री के सम्बन्ध में भी कुछ

ऐसी ही बात है ; किन्तु वेश्या बदनाम है और स्त्री गृह-देवी। इसलिए कि समाज के द्वारा विवाह के रूप में उसे व्यभिचार का 'पासपोर्ट' मिला हुआ है।

ऐसी अवस्था में विवाह की सार्थकता हमारी समझ में नहीं आ सकती। वर्तमान स्थिति में लाभ की अपेक्षा

श्रीमती उर्मिला देवी
देशबन्धु के श्राद्ध-दिवस के उपलक्ष में कलकत्ते में जलूस निकालने के अपराध में आपको छः मास का दण्ड दिया गया है। आपके साथ श्रीमती मोहिनी देवी, श्रीमती विमल प्रतिभा देवी, और कुमारी ज्योतिर्मयी गाङ्गुली को भी छः-छः मास का कारावास दिया गया है। इन तीनों देवियों के चित्र आगे दिए गए हैं।

विवाह से हानि ही अधिक हो रही है। मानव-समाज की मनोवृत्तियाँ इस समय कलुषित हो रही हैं, भोग की प्रवृत्ति उनमें बढ़ रही है, विलास की लालसा उग्र हो उठी है, ऐसी अवस्था में संसार से अनभिज्ञ युवक-युवतियों को विवाह का पासपोर्ट देकर, उन्हें भोग-विलास की दुर्दान्त अग्नि में जल मरने के लिए स्वतन्त्र कर देना कहाँ तक उचित है, यह विचारणीय समस्या है। विलासी होने के कारण स्त्री-पुरुष का स्वास्थ्य दिनों-दिन नष्ट होता जा रहा है और इसके कारण उनका दाम्पत्य जीवन भी सुखकर नहीं हो सकता। ऐसी परिस्थिति में विवाह की आवश्यकता ही क्या है? विवाह से जीवन असंयमित हो रहा है, भोग की लालसा को उत्तेजन मिल रहा है, क्योंकि उसके नियन्त्रण का वहाँ कोई प्रबन्ध नहीं है। विवाह न होने पर, अनेक अंशों में व्यभिचार कम होगा, क्योंकि अन्य प्रकार के दुराचार समाज की दृष्टि में निन्दनीय हैं और कम से कम इसी भय से लोग भोग की लालसा पर कुछ नियन्त्रण रख सकेंगे। विवाह करके तो पुरुष व्यभिचार के लिए स्वतन्त्र हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में या तो वैवाहिक प्रणाली का बहिष्कार किया जाय, अथवा मानव-समाज के मनोभावों को समुन्नत बनाने का भगीरथ-प्रयत्न। इन्हीं दो उपायों का अवलम्बन करके हम इस अवाञ्छनीय परिस्थिति से अपनी रक्षा कर सकते हैं।

समाज के कुछ लोगों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है और वे विवाह की अनुपयोगिता समझने भी लगे हैं। सम्भव है, विवाह के विरोध में शीघ्र ही कोई विराट शक्ति उठ खड़ी हो और उसके द्वारा भारतवर्ष के युवक-युवतियों का अन्धकारमय भविष्य, प्रकाश की कुछ रेखाओं से चमचमा उठे!

इन तमाम असुविधाओं और अवाञ्छनीय परिस्थितियों में होकर गुज़रने के लिए हमारा नारी-समाज बाध्य है। फलतः स्त्रियाँ न तो सफल गृहिणी हो सकती हैं, न माता। उनके जीवन का कोई सदुपयोग नहीं हो सकता। पुरुष की कामुकता का खिलौना बन कर वे संसार में प्रवेश करती हैं और अस्वास्थ्य, सहायहीनता, दुर्बलता और असंयम के बुरे परिणामों के साथ उनका अन्त होता है।

भारतीय नारी-जीवन की यह रूप-रेखा कितनी भयानक है, साथ ही कितनी दयनीय और करुणाजनक!! ओह !!!

—प्रफुल्लचन्द्र ओझा

* * *

वीराङ्गना सूसान

कल ही की तो बात है। पराधीन आयर्लैण्ड ने स्वाधीनता-पथ पर अग्रसर होने के लिए क़दम बढ़ाया था। स्वार्थान्ध ब्रिटेन उसे उस पथ पर नहीं देख सकता था, उसने बम्ब, वायुयान, मशीनगन इत्यादि पैशाचिक शक्तियों के द्वारा उसे रोकने का प्रयत्न किया। मार्शल-लॉ की विकराल अग्नि में आयर्लैण्ड की तरुण जनता स्वेच्छापूर्वक अपनी आहुति दे रही थी। हज़ारों आयरिश युवक-युवतियों का अपूर्व आत्म-बलिदान वहाँ की भूमि में पद-पद पर, वन के वृक्ष-वृक्ष पर लोहे में लकीर की भाँति खुदा हुआ है, उन्हीं में क्यों, वह तो जन-समाज के हृत्पटल पर अमिट मसि से अङ्कित है। परन्तु इस स्वातन्त्र्य भाव की प्रेरिका देवी तो एक अज्ञात गाँव की शूरवीर कुमारिका थी। उसकी तेज-राशि से जगमगाती सूरत रणचण्डी की भीषण रुद्रता थी और उसी के साथ उसके पास था मातृभूमि के लिए प्राण अर्पण करने की प्रेरणा करने के लिए दिव्य सौन्दर्य! स्वार्थलोलुप ब्रिटेन के अन्याय के सम्मुख तूफ़ानी समुद्र की भाँति विकट आयरिश विप्लव का इतिहास इस देवी की भव्य देश-सेवा से चमत्कृत है।

इस वीराङ्गना का नाम है सूसान फ़्लिन। सूसान का पिता भयङ्कर विप्लववादी था। वह अपनी पुत्री को सारहीन ऐश-आराम से परिपूर्ण जीवन बिताते हुए नहीं देखना चाहता था। इसीलिए उसने उसे बचपन से ही आदर्श आयरिश वीराङ्गना बनाने का प्रयत्न किया। उसे विप्लववादिनी वीराङ्गना बनाना था और बनाना था ब्रिटिश अत्याचार के विरुद्ध मस्तक हाथ में रख कर रण-क्षेत्र में झूमने वाली रणचण्डी! उसने सूसान को घुड़सवारी सिखाई, लक्ष्य को भेदने वाली अचूक निशानेबाज़ी सिखाई और सिखाई मातृ-भूमि के हित के लिए प्राणार्पण करने की विधि! सागर के विशाल वक्षस्थल पर या गहरे सरोवर या नदी पर भयानक वातावरण में बिजली की गति की भाँति अपनी नौका को पार ले जाने में तो उसके समान दूसरा मिलना कठिन था।

एक देशभक्त, विप्लववादी पिता की पुत्री जैसी होनी चाहिए, सूसान भी वैसी ही बनी। उसकी रग-रग में देश-प्रेम व्याप्त हो गया।

* * *

१९१६ ई० में आयर्लैण्ड की वीर-भूमि पर भयानक विप्लव आरम्भ हो गया। सूसान का बहादुर पिता इसमें शरीक हुआ। कॉलेज की निर्जीव पुस्तकें पढ़ते हुए,

श्रीमती मोहिनी देवी (अपनी पौत्रियों सहित)

लोहू का घूँट पीती हुई सूसान अपने पिता के आह्वान पर उस कॉलेज को नमस्कार करके कार्यक्षेत्र में आ गई! उसका हृदय देश-भक्ति के भावों से परिपूर्ण था। पिता-पुत्री ने ग्राम निवास छोड़ कर जङ्गल और घाटियों की शरण ली। उन्होंने अपना घर बनाया प्रकृति की गोद में! उस अज्ञात-वास में पिता-पुत्री ने देश की सेवा के लिए कठोर प्रतिज्ञा की!

* * *

शहर-शहर में ब्रिटेन की क्रूर तोपों के मोरचे बँध

गए। कौटुम्बिक भावना के शत्रु गोरे सैनिकों ने प्रजा पर अनेक प्रकार के अत्याचार आरम्भ किए! आयर्लैण्ड की स्वतन्त्रता के लिए अविश्रान्त परिश्रम करने वाले वीरों और वीराङ्गनाओं को जङ्गलों की झाड़ियों तथा पहाड़ों की तराइयों में अपनी रक्षा के लिए स्थान खोजना पड़ा। प्रकृति के रक्षक परदे के पीछे रह कर वे अवसर-अवसर पर अपने शत्रुओं से लोहा लेने लगे। उनके

श्रीमती विमल प्रतिभा देवी

भीष्म पराक्रम के सामने अङ्गरेज़ी सेना भी डगमगाने लगी।

पर्वतों के कराल स्थानों में, वनों के घनघोर झुरमुटों में उन आयरिश वीरों के बीच में एक चेतना-मूर्त्ति दिन-रात घूमती रहती थी। इस समय एक जगह हैं तो एक घड़ी भर बाद दूसरे स्थान में मीलों दूर! आयरिश युवकों की छावनियों में वह बिजली के समान इधर-उधर घूमा करती! वन के एक निर्जन प्रान्त में एकान्त कुटी में वास करने वाले अपने पिता से भी वह चेतनामूर्त्ति सूसान मिल आती और पहाड़ों में स्थान-स्थान पर अपने साथियों को युद्ध की योजना तथा शत्रु की हिकमतों का समाचार पहुँचा देती। उसके जीवन में विश्राम को स्थान नहीं था। पिता की आज्ञानुसार युवकों को प्रेरणा के दिव्य सन्देश पहुँचाना ही उसका जीवन-मन्त्र था। सूर्य के प्रकाश में तो आकाश में प्रलयकाल के भयानक बादलों की भाँति अङ्गरेज़ों के वायुयान घूमा करते। उनसे भयानक बम्ब जङ्गलों और शहरों में मूसलाधार वर्षा की भाँति बरसते। अतएव वीर बाला सूसान रात के समय वनदेवी की भाँति सन्देश पहुँचाने के लिए इधर-उधर परिभ्रमण किया करती। जङ्गली पशुओं की चीत्कार तथा भयङ्कर सर्पों की फुफकार उसके मन में मातृभूमि के प्रति और भी अधिक आकर्षण उत्पन्न करती, उसके पैरों में अपूर्व शक्तिशाली घोड़े की सी शक्ति आ जाती! वह अङ्गरेज़ी सिपाहियों और जासूसों की विषैली दृष्टि और अप्रकट प्रवृत्ति के आगे निरन्तर फिरती। परन्तु सूसान के बुद्धि-वैभव के आगे उन आँखों की दृष्टि-शक्ति लोप हो जाती।

* * *

मृत्यु राक्षस का भीषण तथा श्याम चित्र किसने बनाया? निबिड़ अरण्य की अपूर्व शान्ति हिंसक प्राणियों की आवाज़ से भयानक बन गई। प्रगाढ़ अन्धकार में सूसान भिखारिन के वेश में जङ्गलों में जा रही थी। झाड़ियों के झुरमुट में खड़खड़ाहट हुई। बिजली की बत्ती के प्रकाश से उसका मुख-मण्डल देदीप्यमान हो गया। प्रकाश अन्धकार में विलीन हो गया। सूसान ने अपने बिखरे हुए केशों में दो-तीन पत्र छिपा लिए, पीछे से उसके कन्धे पर अङ्गरेज़ी जासूस ने अपना लौहखण्डी पञ्जा रक्खा। पुनः प्रकाश प्रकट हुआ। जासूसों ने शरीर का एक-एक स्थान तलाश लिया। "यह तो कोई रास्ता भूली हुई भिखारिन है, सूसान नहीं" यह कह कर उन्होंने उसे छोड़ दिया। फिर पकड़ी गई। छः स्थानों में उसकी तलाशी ली गई। जासूसों में क्या इतनी शक्ति थी कि वे उसे पहचान सकें और उसके अस्त-व्यस्त बालों के रहस्य को समझ सकें।

उस वीर-हृदया को पद-पद पर ऐसे विपत्ति से भरे

वन्य-जीवन में दुस्सह अवसरों का सामना करना पड़ा। उसे भयङ्कर जाड़े में कई दिन ख़ाली पेट नदी-नालों में या काँटेदार वृक्षों की कुञ्जों में छिप कर बिताने पड़े। कई महीनों तक उसे अपनी उदर-पूर्ति पहाड़ों में रहने

कुमारी ज्योतिर्मयी गाङ्गली, एम० ए०

वाले निर्धन ग्रामीणों के रूखे-सूखे रोटी के टुकड़ों से करनी पड़ी। हिम से जमी नदी, भयङ्कर जङ्गल, प्राण-शोषक भूख—उसने सब कुछ सहा। क्यों न सहती? उसने तो मातृभूमि की स्वतन्त्रता के निमित्त कठोर व्रत धारण किया था न! अडिग धैर्यशाली नरवीर को भी विचलित कर देने वाली आफ़तों के बीच वह सूसान हिम्मत और सहिष्णुता के साथ नगाधिराज हिमालय की भाँति अविचल बनी रहती!

* * *

उसके आत्म-बलिदान पर, उसकी साहसिकता पर आयर्लैंण्ड के हज़ारों युवक-युवतियाँ प्राणों की आहुति देने के लिए सदैव तत्पर रहते। जिस समय सूसान के साथी किसी विपत्ति में होते तो वह उसका निवारण अपनी विलक्षण बुद्धि से खोज निकालती। अथवा सारा भय अपने सिर पर लेकर जिस प्रकार से हो, उनका बचाव करने का प्रयत्न करती।

उसके अद्वितीय साहस का एक प्रमाण है। जङ्गल में एक दूर स्थान पर सूसान अपने दो साथियों के साथ

श्रीमती उर्मिला देवी, श्रीमती मोहिनी देवी, श्रीमती विमल प्रतिभा देवी, कुमारी ज्योतिर्मयी गाङ्गुली तथा कुछ अन्य सत्याग्रही महिलाएँ राष्ट्रीय झण्डे के साथ।

अङ्गरेज़ सैनिकों को हराने की विधि सोच रही थी। अचानक घोड़ों की टाप सुनाई दी। दोनों युवक हैरान हो

गए। परन्तु सूसान की तीव्र बुद्धि ने उपाय सोच निकाला। अपने कपड़े पहना कर उन्हें रवाना कर दिया। अङ्गरेज़ गुप्तचरों ने उन्हें स्त्री समझ कर पूछा नहीं। सूसान पुरुष-वेश में साइकिल पर सरपट चल कर गुप्तचरों की दृष्टि से ओझल हो गई।

अपनी ज़िन्दगी की मस्त बेपरवाही के द्वारा उसने इस प्रकार अनेक बार आयर्लैंण्ड के विप्लववादी तरुणों की जानें बचाईं!

* * *

एक रात को सूसान अपने पिता को ईश्वर के भरोसे छोड़ कर अपने कुछ साथियों को कोई आवश्यक सन्देशा देने के लिए गई। दूसरी रात को वापस लौटने का वादा था। परन्तु विधि ने पिता-पुत्री के भाग्य में अन्तिम समय में मिलना नहीं लिखा था। निष्ठुर अङ्गरेज़ सैनिकों ने स्वतन्त्रता के इस भव्य मन्दिर रूपी कुटीर को अग्नि से स्वाहा कर दिया। छोटी-मोटी सभी चीज़ें लूट लीं। उनका वह नृशंस कृत्य पूरा नहीं हुआ था, अतएव उसकी पूर्णाहुति देने के निमित्त उन्होंने सूसान के पिता को गोली से मार डाला। "सूसान" के नाम का करुण आक्रन्द करता हुआ वह इस संसार को छोड़ कर चल बसा!

मेरठ का लड़कियों का स्कूल

इस स्कूल का उद्घाटन हाल ही में यू० पी० लेजिस्लेटिव कौन्सिल के प्रेज़िडेण्ट पण्डित सीताराम के हाथों से हुआ है।

सूसान लौट कर आई। निर्दय दुःख का दृश्य देख कर उसके हृदय की अग्नि समस्त उग्रता के साथ भभक उठी! इस घटना ने उसे हतोत्साह नहीं किया, उसकी कार्यशील बुद्धि को शान्त नहीं किया, परन्तु उलटे उसकी उत्साहाग्नि में घृताहुति का काम किया। उसने द्विगुण उत्साह से कार्य आरम्भ किया। आयरिश वीरों के हृदय में स्वतन्त्रता के लिए जलती हुई अग्नि के लिए उसने आँधी का काम किया। ज्वाला प्रचण्ड हो गई। भयङ्कर विप्लव में प्रलय-काल के से दृश्य दीखने लगे। अङ्गरेज़ों के विरुद्ध तरुण आयर्लैंण्ड रणक्षेत्र में कूद पड़ा।

सूसान क्रिलन की उस सेवा के प्रताप से आयर्लैंण्ड आज स्वाधीन है। उसने अप्रकट रूप से अपने देश की अपूर्व

कुमारी तारावती पटेल, बी० ए०
आप पहली गुजराती महिला हैं, जिन्होंने एल्-एल्० बी० की परीक्षा पास की है।

सेवा की, उसके लिए उसे प्रसिद्धि प्राप्त करने की लालसा नहीं थी।

* * *

कुमारी अरुन्धती मित्र और कुमारी रेणुका मित्र

इन दोनों बहिनों ने पूना के भारतीय महिला विश्व-विद्यालय की एन्ट्रेन्स-परीक्षा विशेष योग्यतापूर्वक पास की है। कुमारी अरुन्धती समस्त परीक्षार्थिनियों में प्रथम उत्तीर्ण हुई हैं।

एक भारतीय सज्जन की पेरिस में आयर्लैण्ड की इस स्वतन्त्रता-देवी से भेंट हुई। दोनों में यह बातचीत हुई :—

"आपका घर जल जाने से तथा पिता की मृत्यु से आपको कुछ भी शोक न हुआ? आपकी सेवा-प्रवृत्ति में किसी प्रकार की बाधा नहीं आई?"

"पिता का देशहित के लिए मरण तो मेरे लिए गौरव का विषय है। और घर जल गया उसका तो शोक ही किस बात का? मैं तो ऐसे मौक़े पर स्वयं उस घर को जला देती कि कहीं ज़रूरी काग़ज़ शत्रुओं के हाथ में न पड़ जायँ।"

"मार्शल-लॉ के दिनों में तो घर से बाहर निकलना भी कठिन था, आप क्या करती थीं?"

"अङ्गरेज़ सिपाही तो रास्तों को रोक कर बैठे थे। भयङ्कर जङ्गलों में प्रवेश करने की उनमें शक्ति कहाँ? मैं तो प्रायः रात को ही अपने सन्देश ले जाया करती थी।"

"जहाँ सैनिकों को दिन में भी डर लगता था वहाँ आपको रात में कोई भय मालूम नहीं होता था?"

"अङ्गरेज़ आगन्तुक थे और मैं ठहरी आयर्लैण्ड की पुत्री! अपने घर में कहीं भी इधर-उधर घूमने में किसी को कोई भय क्यों लगना चाहिए? दूसरे मैं तो मृत्यु का सामना करने के लिए प्रति क्षण तैयार थी! स्वदेश-प्रेम के आगे मेरे सामने तन, मन, धन कुछ नहीं।"

श्रीमती ज़ोहरा ख़ानूम हाजी

आप सिन्ध-प्रान्त के एक प्रसिद्ध शिक्षा-प्रेमी वंश की कन्या हैं। आपने केवल १२ वर्ष की आयु में बम्बई यूनीवर्सिटी की मैट्रिक-परीक्षा पास की है।

"भूखे रहने तथा सूखे टुकड़े खाने में आपको कोई कष्ट नहीं होता?"

"बेकारी के कारण भूखे मरते हुए लाखों देश-बान्धवों के कराल जीवन से तो मेरा वह कार्यपरायण जीवन हज़ार गुणा सुखप्रद था।"

श्रीमती मञ्जरी गोपालकृष्ण कमलाम्मल
आप मालाबार के डिस्ट्रिक्ट सेकण्डरी एजूकेशन बोर्ड की सदस्या नियुक्त की गई हैं।

हिन्दुस्तान के प्रति इस आयरिश युवती को अगाध प्रीति है। महात्मा गाँधी के प्रति उसकी श्रद्धा है। खादी धारण करने की उसे उत्कट इच्छा है। चरख़े के गृह-उद्योग के प्रति अनन्य भक्ति है। अहिंसा सिद्धान्त में अडिग विश्वास है और इसीलिए उसने मांस-मछली का त्याग कर दिया है। वह कहती है—जिस स्वतन्त्रता के लिए भारत में महात्मा गाँधी लड़ रहे हैं, वही स्वतन्त्रता मुझे मेरे देश के लिए चाहिए। यन्त्रवाद और साम्राज्यवाद के सभ्य शैतान से मुझे मेरे आयलैंण्ड की रक्षा करनी है।

भारत की नवयुवतियो! अपने जीवन के सामने सूसान की देशभक्ति तथा आत्मबलिदान के उच्च आदर्श को रक्खो और आर्यभूमि के इतिहास में अङ्कित रमणियों के वास्तविक अर्थ को सार्थक करो!

—श्रीगोपाल नेवटिया, विशारद

* * *

विवाह-विच्छेद

इस समय हमारे देश में तलाक़ प्रथा (विवाह-सम्बन्ध-विच्छेद) की उपादेयता और अनुपादेयता के विषय में बड़ा विवाद चल रहा है। कुछ दिन हुए मद्रास में स्त्रियों की एक कॉन्फ्रेंन्स में तलाक़ के सम्बन्ध

श्रीमती आनन्दबाई केसकर
आप दादर (बम्बई) के गर्ल्स स्कूल की प्रधान अध्यापिका हैं और शीघ्र ही अवसर ग्रहण करने वाली हैं।

में कुछ प्रस्ताव पास हुए थे, जिसके ख़िलाफ़ बड़ी 'भवति नभवति' हुई। कुछ लोग इस प्रथा के विरोधी हैं और कुछ लोग जिनमें नवयुवक तथा विशेषतः नवयुवतियाँ हैं

इसके पक्ष में हैं। किन्तु सामान्य तौर पर हमारे समाज में इसके विरोधियों ही का आधिक्य है।

तलाक़ के पक्षपाती वे नवयुवक लोग हैं, जिन्होंने हमारे पुराने समाज के ख़िलाफ़ बग़ावत के लिए कमर कसी है, जो इस घुन लगे हुए समाज से ऊब गए हैं, और जिनके सामने नया आदर्श है, जिनकी रगों में नया ख़ून दौड़ रहा है और जो एक नया समाज स्थापित करना चाहते हैं। इनमें कुछ पश्चिम के अन्ध-भक्त लोग भी हैं। ये लोग प्रायः तलाक़ के हानि-लाभों पर अच्छी तरह विचार करके उनसे इतना प्रभावित नहीं होते जितना कि इस सड़े-गले समाज तथा उसकी बुराइयों को देख कर ऊब जाते हैं। दूसरी तरफ़ तलाक़ के विरोधी लोग हैं। उनकी मनोवृत्ति का यदि भले प्रकार विश्लेषण किया जाय तो पता चलेगा कि वे इसका विरोध किन्हीं युक्तियों वा तलाक़ के हानि-लाभ को बुद्धि और तर्क की कसौटी पर कस कर नहीं करते, किन्तु उनके मन में पुराने संस्कार जमे हुए हैं और वे तलाक़ का नाम सुनते ही काँप उठते हैं और समझते हैं कि तलाक़ की प्रथा प्रचलित होने पर हमारा समाज छिन्न-भिन्न हो जायगा, और उसकी सुख-शान्ति सदा के लिए विलीन हो जायगी। वे अपने मन में बैठे हुए इन संस्कारों को नहीं हटा सकते और इसीलिए वे तलाक़ के पक्षपातियों का विरोध करने में आकाश-पाताल एक कर देते हैं।

सारांश, भारत में तलाक़ का समर्थन और विरोध करने वाले दोनों ही पहले अपनी राय बना लेते हैं और फिर अपने मत के समर्थन में युक्तियाँ ढूँढ़ने लगते हैं। वे उसकी उपादेयता और अनुपादेयता तथा हानि-लाभों पर ठण्डे दिल से बहुत कम विचार करते हैं। आज इस लेख में तलाक़ से होने वाले हानि-लाभों और समाज तथा व्यक्ति पर उसके प्रभाव आदि का विवेचन किया जायगा।

विवाह-सम्बन्धी प्रथाओं का विषय बड़ा पेंचीदा है। उसमें अनेक बातों पर ध्यान देना पड़ता है। इसके अलावा देश में औद्योगिक विकास कितना हुआ है, देश कितना धनी है, शिक्षा का कितना प्रसार है, सामाजिक और राजनैतिक परिस्थिति कैसी है, इत्यादि अनेक बातों का विवाह जैसी महत्वशाली संस्था पर प्रभाव पड़ता है और उन सबको ध्यान में रख कर विवाह-सम्बन्धी प्रथाओं पर विचार करना चाहिए। परिस्थितियों के बदल जाने से प्रथाएँ भी बदल जाती हैं।

विवाह का उद्देश्य क्या है? विवाह का प्रथम उद्देश्य बच्चों को उत्पन्न करके उनका यथोचित पालन-पोषण है। बच्चे के उत्पन्न होने के बाद उसके पालन-पोषण तथा शिक्षण में माता को एक दूसरे सहायक की ज़रूरत होती है, क्योंकि यदि विवाह की संस्था न हो और माता पर ही पालन-पोषण का सारा बोझ पड़ जाय तो वह अकेले उस बोझ को नहीं सँभाल सकती। पुरुष पर इस क़िस्म का बन्धन न हो तो फिर पिता का कार्य राज्य को करना पड़ेगा। जब तक राज्य पूरे तौर से पिता के भार को नहीं सँभाल लेता और जब तक वर्तमान सामाजिक सङ्गठन है, तब तक बच्चों के पालन-पोषण के लिए पिता की, पैत्रिक स्नेह की आवश्यकता है और विवाह की संस्था भी अनिवार्य है, उसका उन्मूलन नहीं किया जा सकता।

विवाह-प्रथा का दूसरा उद्देश्य वैवाहिक सुख की प्राप्ति है। वैवाहिक सुख क्या चीज़ है? पति-पत्नी का प्रेम तथा पुरुष-स्त्री का एक दूसरे के प्रति जो आकर्षण है, उसी को वैवाहिक सुख कहते हैं। सिर्फ़ किन्हीं दो स्त्री-पुरुषों के मेल से, विषय-सम्बन्धी भूख की तृप्ति मात्र से वैवाहिक सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। उसके लिए ज़रूरी है दोनों में परस्पर प्रेम तथा भावुकता का होना। प्रेम तथा कला का आनन्द लेने के लिए भावुकता का—हृदय का—होना ज़रूरी है। जिसमें जितनी भावुकता होगी वह उतना ही अधिक इस प्रेम के आनन्द को प्राप्त कर सकेगा। बड़े खेद की बात है कि मैशीनों की उत्तरोत्तर वृद्धि तथा उनके वर्तमान स्वरूप के कारण भावुकता तथा कला का लोप होता जाता है। जब तक स्त्री और पुरुष के स्वभाव आदि में मेल न हो, वे दोनों साथ न रहते हों, जब तक एक दूसरे से अनुनय और प्रार्थना (Courtship and Wooing)* न हो तब तक प्रेम नहीं हो सकता और प्रेम के बिना सिर्फ़ विषय-वासना की तृप्ति मात्र से आदमी कभी सुखी नहीं हो सकता। इस प्रेम के लिए स्त्री और पुरुष के स्वभाव का मिलना और हरेक बात में एक सा होना अत्यन्त ज़रूरी है।

---

* केवल विवाह से पहले ही नहीं, बाद भी।

यदि दम्पति का मन मिलता है, दोनों स्वस्थ हैं, साथ रहते हैं, तो उनमें प्रगाढ़ प्रेम होगा; वे कभी एक-दूसरे से अलग होना नहीं चाहेंगे और ऐसी अवस्था में कभी तलाक़ के विषय में, उसकी उपादेयता अनुपादेयता के विषय में सोचने की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। यही नहीं, यदि पति और पत्नी काफ़ी समय तक एक साथ रहे हों और फिर उनमें से कोई एक मर जाय तो उनका प्रेम इतना प्रगाढ़ होगा कि फिर दूसरा, चाहे पति हो या पत्नी, स्वप्न में भी दूसरे विवाह की बात नहीं सोचेगा। किन्तु यह सब आदर्श है, और हम हरेक स्त्री व पुरुष से यह आशा नहीं कर सकते कि वह, यदि उसका साथी व साथिन मर जाय तो आजन्म ख़ुशी से अकेला रह कर बिता सकेगा। प्रत्यक्ष देख लीजिए, कितने ऐसे पुरुष हैं जो पत्नी के मर जाने पर दूसरा विवाह नहीं कर लेते। स्त्रियों के लिए यद्यपि पुनर्विवाह क़ानूनन निषिद्ध नहीं है, तथापि प्रथा से निषिद्ध है। इसीलिए पुनर्विवाह बहुत कम स्त्रियाँ करती हैं। यदि इस क़िस्म की कोई रोक-टोक न हो तो पुनर्विवाह न करने वाली स्त्रियाँ भी बहुत कम होंगी और जिन जातियों में स्त्रियों का पुनर्विवाह निषिद्ध नहीं है उनमें ऐसा है भी।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि आदर्श और रिवाज दोनों एक कभी नहीं हो सकते। यदि इन दोनों को एक करने की कोशिश की जाय तो परिणाम बहुत अनिष्टकारी होता है, जैसा कि विधवाओं के बलात् अकेली रखने की प्रथा में देखा जाता है। इससे स्त्रियों पर जो अनुचित सख़्ती होती है, उसके अलावा व्यभिचार, भ्रूण-हत्या आदि जो अनेक अनिष्ट देखे जाते हैं, उनको सब कोई जानते ही हैं।

जिस आदर्श विवाह और आदर्श दम्पति का ऊपर वर्णन किया गया है उसको सब नहीं पहुँच सकते। आदर्श आदर्श ही होता है, उसकी ओर बढ़ने की जहाँ तक हो सके, कोशिश करनी चाहिए। स्त्री और पुरुष को जहाँ तक हो सके, अपना साथी ऐसा चुनना चाहिए जिसका स्वभाव, रुचि आदि बिलकुल मिलते-जुलते हों। इस बात की ख़ूब देख-भाल करनी चाहिए। इसके लिए यह ज़रूरी है कि एक दूसरे को कुछ समय तक अच्छी तरह देखने का और एक साथ रहने का मौक़ा मिले। ऐसी सुविधाएँ सबको नहीं मिल सकतीं। भारत में तो यह बुरा भी समझा जाता है। यदि मिलें भी तो हरेक आदमी में इतनी योग्यता नहीं होती कि वह दूसरे आदमी को ख़ूब पहचान सके। इसके अलावा विवाह करने की उम्र में आदमी में एक ऐसी बेचैनी और आतुरता रहती है कि वह ज़्यादा देर तक देख-भाल करना पसन्द नहीं करता और थोड़ी ही जाँच से सन्तुष्ट हो जाता है। ऐसा प्रायः देखा जाता है कि वह समझता है कि किसी व्यक्ति-विशेष से विवाह करने से मेरा जीवन परम सुखी होगा, यह मेरे हरेक तरह से अनुकूल है और विवाह कर लेता है। कुछ दिनों तक पति-पत्नी दोनों बहुत सुखी रहते हैं और विवाह उनको स्वर्ग प्रतीत होता है। किन्तु कुछ समय बाद उनकी वैषयिक भूख शान्त हो जाती है, तब उनमें मतभेद पैदा होने लगते हैं। कुछ दिनों बाद वे परस्पर की असमानता के कारण बहुत बढ़ जाते हैं और जीवन नरक हो जाता है। किन्तु विवाह-सम्बन्ध के अविच्छेद्य होने के कारण उनको उस कठिन परिस्थिति को सह लेना पड़ता है। यहाँ तक कि वे प्रायः बाहर वालों को जानने भी नहीं देते कि घर में क्या विकट संग्राम मचा रहता है और उसे चुपचाप सह लेते हैं।

कुछ लोग कह सकते हैं कि जहाँ पर तलाक़ की प्रथा है वहाँ ऐसा है, किन्तु जहाँ तलाक़ की प्रथा नहीं है वहाँ विवाह-सम्बन्ध के अविच्छेद्य होने के कारण मतभेद उपस्थित होने पर भी दम्पति उसको बरदाश्त कर लेते हैं और पारिवारिक सुख में कोई बाधा नहीं पड़ने पाती। किन्तु वस्तुस्थिति को देखते हुए यह नहीं कहना चाहिए कि वे बरदाश्त कर लेते हैं, बल्कि यह कहना चाहिए कि उनको बरदाश्त करना पड़ता है, क्योंकि दूसरा कोई रास्ता ही नहीं है। मैंने अपनी आँखों से सैकड़ों हिन्दू घरों में देखा है कि पति-पत्नी का जीवन पारस्परिक मेल न होने के कारण नरक बना हुआ है और यहाँ तक कि आत्महत्या तक के दृष्टान्त रात-दिन देखने में आते हैं। इस रात-दिन की पारस्परिक कलह का बच्चों पर भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। ऐसी अवस्थाओं में यदि विवाह-विच्छेद सम्भव हो तो ये सब कठिनाइयाँ आसानी से दूर की जा सकती हैं।

इस पारस्परिक मेल न होने के सिवा और भी कई कारण हैं, जिनसे तलाक़ अनिवार्य हो जाता है।

यदि दम्पति में से कोई एक किन्हीं विशेष रोगों से आक्रान्त हो जाता है, जिनमें कि पागलपन, गरमी की बीमारियाँ, कोढ़ आदि की गणना की जा सकती है, तो समाज के तथा बच्चों के हित के लिए यह ज़रूरी है कि ऐसे विवाहों को तोड़ दिया जाय। यदि ऐसी हालत में भी विवाह को न तोड़ा जाय तो तीन ही रास्ते हैं, या तो नीरोग साथी पूर्ण ब्रह्मचर्य से रहे, या अपने विवाहित साथी के साथ रहे, या दूसरे ताल्लुक़ात पैदा कर ले जो ग़ैरक़ानूनी कहलाते हैं। इनमें पहिले रास्ते पर बहुत कम लोग चल सकते हैं, जो चलते भी हैं वे अपने मन पर अत्यन्त अधिक दबाव डाल कर, क्योंकि पूर्ण ब्रह्मचर्य से रहना विशेषतः उनके लिए जो विवाहित जीवन बिता चुके हैं, कोई मामूली बात नहीं है, और इसका परिणाम यह होता है कि उनको नाना प्रकार के वात-संस्थान सम्बन्धी (Nervous system) रोग हो जाते हैं।

अपने विवाहित साथी के साथ रहे तो इसका अर्थ यह है कि उसके रोग को अपने ऊपर भी ले ले। सिर्फ़ इतना ही नहीं, उसी रोग से आक्रान्त बच्चे पैदा करके उसके रोगियों की समाज में वृद्धि करे और उस रोग को फैलावे।

तीसरा रास्ता जो लिखा गया है वह सबसे कम ख़तरनाक है, लेकिन सामाजिक कारणों से उसका अनुमोदन नहीं किया जा सकता।

इन कारणों से ऐसी विशेष अवस्थाओं में, जब विवाह दूभर हो गया हो अथवा रोग आदि की दशाओं में तलाक़ के लिए अवकाश होना चाहिए।

अब हम तलाक़ की बुराइयों पर कुछ विचार करना चाहते हैं। तलाक़ का सबसे अधिक बुरा प्रभाव बच्चों पर पड़ता है। बच्चे बहुत दिनों तक पिता के साथ रहने के कारण उससे प्रेम करने लगते हैं। तब यदि माता-पिता में तलाक़ हो जाय तो बच्चे पिता से वञ्चित हो जाते हैं और इस बात को वे बहुत अनुभव करते हैं। तलाक़ की प्रथा के होने से दूसरा नुक़सान यह है कि पति-पत्नी अविच्छेद्य विवाह की कल्पना करें तो उनका प्रेम-बन्धन अधिक दृढ़ होता है, किन्तु यदि उनके मन में यह ख़्याल भी आ जाय कि यह सम्बन्ध टूट भी सकता है तो फिर उतनी दृढ़ता नहीं रहती और कोई मतभेद उपस्थित होने पर तलाक़ का ख़्याल आने लगता है जिससे प्रेम-बन्धन में शिथिलता आती है, और पहले कहा जा चुका है कि सुख, वैषयिक तृष्णा की पूर्ति से नहीं, बल्कि प्रेम और कला के द्वारा मिलता है।

इसलिए तलाक़ के न होने से होने वाली बुराइयों और अनुचित सख़्तियों से तथा तलाक़ के दुरुपयोग से भी बचने के लिए तथा सामञ्जस्य स्थापित करने के लिए उचित यह है कि क़ानून में तलाक़ के लिए अवकाश होना चाहिए, जिससे कि विशेष हालतों में और अत्यधिक मत-भेद बढ़ जाने आदि की अवस्था में तलाक़ हो सके, बल्कि मेरी राय में तो तलाक़ के क़ानून में अधिक शिथिलता ही होनी चाहिए, किन्तु जन-मत ऐसा बनाना चाहिए कि तलाक़ अच्छा न समझा जाय। उसको पातक नहीं समझना चाहिए, किन्तु लोग उसको बुरा समझें। ऐसा होना सम्भव है। इसके कुछ दृष्टान्त भी यहाँ दिए जाते हैं। अमेरिका की भिन्न-भिन्न रियासतों में तलाक़ के क़ानून भिन्न-भिन्न हैं, कुछ रियासतों में तो तलाक़ है ही नहीं, किन्तु किसी भी रियासत में पति-पत्नी की परस्पर सहमति से तलाक़ नहीं है। अमेरिका में तलाक़ की संख्या प्रति लाख १३६ है, क्योंकि वहाँ तलाक़ को बुरा नहीं समझते। इसके ख़िलाफ़ स्वीडन में पति-पत्नी की परस्पर सहमति मात्र से तलाक़ हो सकता है, किन्तु वहाँ तलाक़ की संख्या प्रति लाख केवल २४ है।

निष्कर्ष यह निकलता है कि समाज में तलाक़ को बुरा समझा जाना चाहिए, आम तौर पर तलाक़ की प्रथा नहीं होनी चाहिए, किन्तु क़ानून में उसके लिए अवकाश ज़रूर होना चाहिए, नहीं तो बहुत हानि उठानी पड़ती है और अनुचित कठोरता होती है। आदर्श, क़ानून और प्रथा—ये तीनों चीज़ें अलग-अलग रहनी चाहिए।

—सिद्धगोपाल काव्यतीर्थ
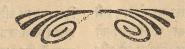
दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह

["पागल"]

पाँचवाँ खण्ड

३

अङ्गरेज़ी का पत्र अधूरा ही पढ़ कर मैंने अलग रख दिया। थोड़ी देर आरामकुर्सी पर लेट कर मैं अपने चित्त को शान्त करता रहा। तरह-तरह के ख़्यालात मेरे दिल में हिलोरें मारने लगे। कभी सोचता था कि अगर जहानारा के पत्र इस हत्यारे द्वारा न रोके जाते तो अलिन्द की जीवन-गाथा कुछ और ही होती। अलिन्द और जहानारा का प्रेम कदापि इस बुरी तरह न सूखने पाता; और न अलिन्द ही जहानारा से निराश होकर अन्य किसी के प्रेम में पड़ सकता था। परन्तु अफ़सोस! इस चाण्डाल ने अपनी नीचता से केवल अपनी स्त्री ही की हत्या नहीं की, वरन उसके साथ दो आशापूर्ण हृदयों का भी ख़ून कर डाला। कहीं ऐसे नीच को भी भला जहानारा प्यार कर सकती थी? प्रेम तो उच्च स्वभावों ही पर मोहित होना जानता है। मगर क्या इसकी नीचताओं की ख़बर जहानारा को थी?

कहाँ मैं सरोज के पत्र ढूँढ़ने आया था और कहाँ इस रजिस्ट्री लिफ़ाफ़े के पचड़े में ऐसा उलझा और जहानारा के भावों को जानने के लिए ऐसा उत्सुक हुआ कि मैं सब ख़्याल छोड़, यहाँ तक कि अङ्गरेज़ी का पत्र भी सामने से हटा कर, जहानारा के पत्र एक-एक करके पढ़ने लगा—

पहला पत्र

(इस पत्र की तारीख़ रजिस्ट्री लिफ़ाफ़े की तारीख़ से लगभग तीन वर्ष पहिले की थी।)

"हमेशा ध्यान में रहने वाले!

तुमसे बिछुड़े हुए आज पूरे साल भर हो गए। मैं समझती थी कि मैं तुमसे अलग होकर अपने हृदय को वश में कर लूँगी। मगर नहीं, तुम्हारा वियोग तो और जान का काल हो गया। मेरी भाव-तरङ्गें दिनोंदिन शिथिल होने के बदले और भी तीव्र हो उठीं। जितना ही मैं उनको दबाती हूँ, उतना ही मैं अपने उद्योग में पछाड़ खाकर गिरती हूँ। अलिन्द, ईश्वर को साक्षी देकर कहती हूँ कि मुझे बिछुड़ते समय नहीं मालूम था कि यह प्रेम मेरे हृदय पर कितनी आफ़तें ढाएगा। आह! तुम तो हर तरह से मेरा साथ देने को तैयार थे; मगर मैं ही अभागी तुम्हारे प्रेम को ठुकरा कर तुमसे भागी, जिसका परिणाम आज नरक की यन्त्रणा की तरह भोग रही हूँ।

क्यों भागी? सुनोगे? अच्छा कहती हूँ। दिल खोल कर कहूँगी। जो कुछ न कहना चाहिए उसे भी आज कह डालूँगी। तुमसे कोई भी अपनी बात छिपाने की शक्ति नहीं है। तुम ख़ुद ही समझ सकते हो कि हमारा हिन्दुस्तानी समाज हिन्दू-मुसलमान ऐसे दो भिन्न धर्म वालों के वैवाहिक सम्बन्ध को कभी भी आदरणीय दृष्टि से नहीं देख सकता। यद्यपि मैं मुसलमान नहीं हूँ, तथापि मेरा नाम तो मुसलमानी है। जिसके कारण पब्लिक मुझे मुसलमान ही समझती है। इसलिए मेरी सङ्गत से तुम्हारे धर्म पर अवश्य ही धक्का लगता। तुम अपने ख़ानदान से छूट जाते। तुम्हारी ख़ातिर मैं अपने को कितना ही हिन्दू मशहूर करती, पब्लिक का भ्रम दूर करने के लिए मैं अपनी झूठ-मूठ शुद्धि भी करा लेती; क्योंकि असलियत में तो मैं हिन्दू ही हूँ, फिर भी इस सङ्कुचित-हृदय हत्यारे और पाखण्डी हिन्दू-समाज में आदर का स्थान न मैं पाती और न तुम्हें दिलवा सकती। इसके लिए तुम्हें कभी न कभी पछताना पड़ता। उस समय क्या तुम्हारा प्रेम इतना ही दृढ़ रह सकता था?

मैंने अपना मुसलमानी नाम क्यों रक्खा? मुझे हिन्दू-समाज और हिन्दू-जाति से इतनी चिढ़ है कि मुझे इसका नाम तक धारण करना स्वीकार नहीं है। केवल हृदय में हिन्दू-धर्म रक्खे हुए हूँ। वश चलता तो इसको

भी त्याग देती। परन्तु ऐसा अब तक नहीं कर सकी और शायद अन्त समय तक न कर सकूँगी। अपना नाम मुसलमानी रखने में मेरे बाप-दादों की लाज की रक्षा और मेरी भी बचत थी। क्योंकि हिन्दुओं की नसों में ख़ून नहीं, पानी है। यह लोग अपनी स्त्रियों को बस सताना और घर से निकालना ही जानते हैं, रक्षा करना नहीं। इनके निकम्मे समाज में न उदारता, न क्षमा और न अपनाने का दम है। हर मामलों में त्याग और बहिष्कार का मन्त्र फूँक कर यह अपने अङ्ग को ख़ुद ही काट-काट कर फेंकता है। खाने-पीने तक में जब छुआछूत का पाखण्ड इतनी बुरी तरह घुसा हुआ है, तब इसमें उदारता और अपनाने की बुद्धि कहाँ से उत्पन्न हो सकती है? इसी कारण हिन्दू-जाति दिनोंदिन रसातल को पहुँचती जाती है। लाखों मौखिक सुधार पर भी यह कभी सँभल नहीं सकती और न इसमें कभी मिल्लत हो सकती है। अगर मैंने अपना यह मुसलमानी नाम न रक्खा होता तो आज के दिन मैं निर्विघ्न रूप में थिएटर की नर्तकी का भी काम नहीं करने पाती। तब हिन्दू-मुसलमान दोनों ही क्या, बल्कि सभी भारतीय जातियाँ मुझे कुत्ते की मौत मरने के लिए अब तक चिचोर कर फेंक देतीं। और कोई कम्बख़्त मेरे लिए रक्षा का हाथ नहीं उठा सकता था। क्योंकि हिन्दू लावारिस स्त्री गली-गली ठोकरें खाने और गुण्डों के पैशाचिक व्यवहारों ही के लिए तो होती हैं। धन्य ईश्वर कि मैं अपने मुसलमानी नाम की बदौलत समय-समय पर मुसलमानों का पक्ष पाकर इस दुर्दशा से बचती रही।

फिर भी मैं नर्तकी हूँ। हिन्दू-समाज मेरी सुन्दरता और कला पर भले ही अपना सर्वस्व लुटा दे, मेरे लिए कितनी ही आहें भरे और मेरे तलवे तक चाटे और मेरा चरित्र भी कितना ही उज्ज्वल क्यों न हो, तो भी मैं इस पाखण्डी समाज में, जो अपनी स्त्रियों के साथ भेड़-बकरी की तरह बर्ताव करना जानता है, कदापि कुल-कामिनी की ऐसी प्रतिष्ठा नहीं पा सकती। मेरे सम्पर्क से इसकी दृष्टि में तुम भी घृणा के पात्र बनते। जिसका परिणाम तुम्हारे निर्दोष बाल-बच्चों को भुगतना पड़ेगा। उन्हें कहीं भी बैठने का ठिकाना न मिलेगा। उनको विवश होकर मसजिद या गिरजा-घरों की शरण लेनी पड़ेगी, उस वक़्त क्या तुम मुझे वैसा ही चाह सकोगे अलिन्द? बोलो।

हाँ, अन्य समाज में हम लोगों के लिए थोड़ी सी जगह मिल सकती है। मगर जब एक से एक हिन्दू-समाज का अत्याचार सह कर मैं अपना धर्म त्याग न सकी तो तुम्हारा धर्म त्यागना किस तरह गवारा कर सकती हूँ?

तुम मुझे कुमारी समझते होगे। मगर मैं कुमारी भी नहीं हूँ। मैं हूँ विवाहिता और मेरा पति जीवित है। यद्यपि मैं त्यागी हुई हूँ, और अगर मैं तुमसे सम्बन्ध कर भी लेती तो कोई हमारा या तुम्हारा कुछ कर नहीं सकता था। फिर भी क्या तुम मुझे परित्यक्ता जान कर मेरे प्रेम में अटल रह सकते थे और मेरे साथ सम्बन्ध करना पसन्द कर सकते थे?

इन कारणों के अतिरिक्त सबसे बड़ा कारण तुमसे भागने का यह था कि तुम अभी नवयुवक हो और मैं देखने ही में नवयुवती सी जान पड़ती हूँ, परन्तु हूँ मैं असलियत में युवती—तुमसे कई वर्ष बड़ी। तुम्हारी जवानी चढ़ाव पर है और मेरी उतार पर। मेरा पेशा नर्तकी का है, जिसमें रूप और नवयौवन बहुत कुछ बनावट से भी बनाए रखने पड़ते हैं। जिस सुन्दरता ने तुम्हारे हृदय में मेरे प्रेम का बीज डाला है उसमें कितनी असलियत है, इसे मैं ही जान सकती हूँ, देखने वाले नहीं। यह धोखे की टट्टी तुम्हारे सामने मैं भला कब तक खड़ी रख सकती थी? एक न एक दिन इसकी क़लई खुलती ही। उस वक़्त, हाय! उस वक़्त तुम्हारे प्रेम की क्या गति होती? उफ़! सोचते ही कलेजा मुँह को आता है।

अगर तुम्हारी समझदारी की अवस्था होती, संसार को तुम देखे हुए होते, अच्छाई-बुराई, राह-कुराह सबको परखने की तुममें तमीज़ होती, तुम मेरी असलियत अच्छी तरह से जानते होते और तब तुम उसी जोश के साथ मुझे प्यार करते और इसके साथ ही इसके परिणाम को भी अच्छी तरह अनुमान करते तो मैं कदापि तुमसे नहीं भाग सकती थी। क्योंकि तब तुम्हारे प्रेम के विच्छेद होने की शङ्का न होती। और समझती कि तुम अच्छी तरह परख कर आँखें खोल कर, मुझे ही प्यार करते हो, धोखे में पड़ कर केवल मेरे रूप को नहीं।

मैं जानती हूँ, तुम्हारा प्रेम बहुत ही गहरा है। फिर भी यह तुम्हारी शुरू नवजवानी का प्रथम उफान है, जो आँच ठण्डी पड़ते ही शान्त हो सकता है। क्योंकि पुरुष-हृदय आरम्भ में कई दफ़े ऐसा ही उल्लास दिखलाता है, तब जाकर कहीं सच्चे अनुराग में पड़ता है।

इसलिए चार दिन की चाँदनी के लिए अपने स्वार्थ में पड़ कर मैं तुम्हारा जीवन कैसे नष्ट कर सकती थी? इसीलिए अलिन्द, मैं कलेजे पर पत्थर रख कर भागी। प्रेम-विच्छेद का कष्ट बाद को मुझे या तुम्हें भुगतना ही पड़ता, तब ऐसे प्रेम को सींचने के बदले शीघ्र ही अन्त कर देना लाख बार मुनासिब था। इस समय की पीड़ा तो किसी तरह सही भी जा सकती है, परन्तु बाद की यन्त्रणा जिस पर पड़ती उसका सर्वनाश ही करके छोड़ती। यद्यपि मेरे लिए अब और तब में कोई भेद नहीं है। मैं उसी तरह बेमौत मर रही हूँ जैसे कभी तुम्हारे प्रेम को खोकर मरती। क्योंकि नारी-हृदय पुरुष-हृदय की तरह प्रेम का अभ्यास नहीं करता फिरता। यह अव्वल तो बड़ी मुश्किलों से प्रेम में पड़ता है और जब पड़ता है तो सदा के लिए। अब जाना कि एक ही बार। इसीलिए तुम्हारे ध्यान को भूलने के बदले उसीमें मैं दिनोंदिन और जकड़ती जा रही हूँ।

मैंने ही तुम्हारी नौकरी में बाधा डाली थी, ताकि मेरा साथ छूटे और तुम मुझे आसानी से भूल सको। नौकरी करके तुम कहीं के भी न रहते। आख़िर वह कम्पनी, जो तुम्हें अपने साथ लाना चाहती थी, टूट भी गई। और अगर न भी टूटती तो भी तुम उसमें या कहीं भी मेरे साथ अधिक दिन रह नहीं सकते थे। क्योंकि आग और प्रेम कहीं छिपाए नहीं छिपता। इसका भण्डा फूटते ही तुम्हारे सभी दुश्मन हो जाते। मेरी भी रही-सही धाक नाटकीय संसार से एकदम उठ जाती। क्योंकि जब से काशी से आई हूँ, तब से मुझ पर कुछ ऐसी मुर्दनी छाई रहती है कि लाख उद्योग करने पर भी दर्शकों का मन मैं पहिले की तरह मुग्ध नहीं कर पाती हूँ। यहाँ सारा खेल तड़क-भड़क, रूप और यौवन का है। जब हृदय ही में उल्लास नहीं तो उसकी आभा चेहरे पर कहाँ से लाऊँ? इसीलिए इन दिनों नाटकीय संसार में कई नई ऐक्ट्रेसों की ख्याति बहुत कुछ मुझसे बढ़ गई है और जनता मेरे नाम को अब भूलने लगी है। एक काँटा मेरे हृदय में चुभा हुआ मेरे रक्त को चूस ही रहा था उस पर तुम्हारे प्रेम ने तो हाय! और भी आफ़त मचा रक्खी है। ऐसी दशा में यहाँ तुम्हारी नौकरी भला किसके बिरते पर टिक सकती थी? निजी कम्पनी और रियासतों की नौकरियाँ शुरू-शुरू में हमेशा किसी न किसी ज़ोर ही पर ठहरती हैं।

मैंने अपना यह सब हाल बिछुड़ते समय तुमसे कहना उचित नहीं समझा था। क्योंकि उस समय तुम अन्धे हो रहे थे और इसको जान कर भी तुम अपने प्रेम से नहीं पिछड़ सकते थे। इतने दिनों तक भी मैं अपने कलेजे का ख़ून करके अपने ऊपर जब्र करती रही, केवल तुम्हारी ही भलाई के लिए। ताकि अगर समय मेरा ख़्याल तुम्हारे हृदय में धुँधला कर रहा हो तो मेरा पत्र कहीं उसे फिर ताज़ा न कर दे। साल भर तक यह अति कठिन तपस्या झेली। मगर हाय! अब मुझसे अधिक जब्र नहीं किया जाता। मेरी दुर्बलताएँ मेरी सारी शक्तियों को पराधीन कर चुकी हैं। इसलिए विवश होकर आज तुम्हें पत्र लिखती हूँ। फिर भी सीधे-सीधे तुमसे प्रेम-भिक्षा माँगने के बदले ऊँच-नीच समझा कर, मैं ही तुम्हारे हृदय को और विमुख कर रही हूँ। हाय रे नारी-हृदय! स्वयम् सैकड़ों यन्त्रणाएँ भुगत कर भी तुम्हें, तुम्हारी ख़ातिर यह अपने से दूर ही रखने का उद्योग कर रहा है। जानती हूँ कि समय ने तुम्हारे प्रेम को अब शिथिल बना ही दिया होगा। उस पर मेरे सम्बन्ध की उपरोक्त बातें उसे अच्छी तरह से सर्द कर देंगी। फिर भी मेरी दुर्बलता नहीं मानती। क्या इतने दिनों अलग रह कर और मेरे सम्बन्ध में ये कुल बातें जान कर अब भी मेरे लिए तुम्हारा हृदय धड़क रहा है? बोलो अलिन्द! ईश्वर के लिए बोलो। इसी पर मेरे जीवन और मृत्यु का दारमदार है। ईश्वर तुम्हें सदा ख़ुश रक्खे।

तुम्हारी वही,

जहानारा"

४

जहानारा का पहिला पत्र पढ़ते-पढ़ते मेरी एक अजीब हालत सी हो गई। कभी हाथ मलता था, कभी सर धुनता था और कभी उस हत्यारे को कोसता था जिसने इस पत्र को समय पर अलिन्द के पास पहुँचने न दिया। मैं स्वयं औपन्यासिक था। एक से एक उच्च भाव की छानबीन कर चुका था। मगर जैसी उच्च हृदयता इस पत्र से झलकती थी वैसी शायद ही मुझे कहीं देखने को नसीब हुई थी। अगर अलिन्द इसे कहीं

उस समय पढ़ने को पाता तो वह क्या, उसके देवता तक जहानारा के लिए—चाहे वह परित्यक्ता नहीं भ्रष्टा भी क्यों न होती—आजन्म नाक रगड़ते। रमणी-हृदय की ऐसी विलक्षण उत्तमता भला अपना प्रभाव बिना डाले कहीं रह सकती थी? मगर भाग्य में तो अलिन्द को किसी और के पाले पड़ कर कुढ़-कुढ़ कर मरना बदा था। फिर यह सौभाग्य उसे कैसे प्राप्त होता? मगर ऐसी देवी और वह परित्यक्ता? यह अलबत्ता एक अनहोनी सी बात जान पड़ी। यह पति-प्रेम का भी दम नहीं भरती। बल्कि इसके पत्र से तो यही मालूम होता है कि इसके पहिले इसे कभी प्रेम का आभास ही नहीं हुआ। फिर भी अपने हृदय में एक काँटा चुभा हुआ बताती है। क्यों? कुछ समझ में नहीं आया। शायद इन रहस्यों का उसके पत्रों में पता चले। इसीलिए कुतूहलवश मैं जल्दी-जल्दी उसका दूसरा पत्र पढ़ने लगा। इसकी तारीख़ पहिले पत्र के छै महीने बाद की थी।

दूसरा पत्र

"निर्दयी!

छै महीनों से अपने पत्र के उत्तर की प्रतीक्षा करते-करते आँखें पथरा गईं। मगर तुम ऐसे निष्ठुर निकले कि उसका एक सूखा सा भी जवाब न दिया। मैं जानती थी कि समय तुम्हारे हृदय पर अवश्य प्रभाव डालेगा। और तुम्हारी भलाई भी इसी में थी कि तुम मुझे भूल जाते। भूल गए, बड़ा अच्छा किया। मुझे अपने लिए तनिक भी चिन्ता नहीं है। मेरे तो तन-मन-धन सभी तुम्हारी ही प्रसन्नता पर निछावर होना जानते हैं। बला से मैं निराश होकर तड़प-तड़प कर मरूँ, फिर भी मुझे तुम्हारी ही ख़ुशी में ख़ुशी है। तुम मुझे भूल कर चैन से रहो, यही हार्दिक अभिलाषा है। मगर क्यों अलिन्द, क्या मैं तुम्हारी नज़रों से ऐसी गिर गई कि तुम्हारे एक कुशल-पत्र से भी वञ्चित हो गई? भूल जाना तो तुम्हारा स्वाभाविक था। तुम्हारी अभी नई उम्र, उत्साह भरा हृदय। इस अवस्था में तुम्हारे लिए लड़खड़ा कर सँभल जाना कोई बड़ी बात न थी। मगर यह तो कहो कि अपने कुशल-समाचार से मुझको तरसाना तुम्हें कहाँ तक उचित था। माना कि तुम अब मुझे प्यार नहीं करते। मगर इसके साथ मुझ पर इतनी घृणा तो न करो। मैं परित्यक्ता हूँ सही, परन्तु ऐसी घृणा की पात्री नहीं। मैं कुछ अपने दुष्कर्मों से नहीं त्यागी गई। मेरे त्यागे जाने का कारण तुम्हारी ही पुरुष-जाति की कायरता, विश्वासघात, नीचता और स्वार्थ है। फिर भी मैंने इस महा अन्यायी और कपटी जाति की जैसी सेवा की है, तुम्हीं सुन कर इन्साफ़ करो कि इसके बदले में मेरे प्रति क्या उसका यही कर्तव्य था।

मेरे पिता एक बहुत ही बड़े ज़मींदार थे। माता जी का स्वर्गवास मेरे बचपन ही में हो चुका था। मैं ही अपने पिता की एकमात्र सन्तान थी। सोलह वर्ष की अवस्था में मेरी एक अमीर घराने में शादी हुई। इस विवाह का लक्ष्य दोनों ही तरफ़ धन ही पर था। ससुराल वालों की नज़र मेरी जायदाद पर थी। और पिता जी का ख़्याल ससुराल की दौलत पर था, ताकि लड़की आजन्म सुख से रह सके। मैं पिता और पति के नाम-ग्राम बतला कर उन लोगों की प्रतिष्ठा में बट्टा नहीं लगाना चाहती। मगर समय आने पर तुमसे कुछ छिपा न रक्खूँगी। दोनों घरानों में लक्ष्मी की तो काफ़ी कृपा थी, मगर घर वाले इने-गिने थे। मैके में मुझे और पिता जी को छोड़ कर अन्य कोई नहीं था। इसी तरह ससुराल में पति जी, उनके वृद्ध पिता और लगभग बीस बरस की उनकी सौतेली माँ, जिसके दो बरस की एक कन्या थी। बस।

पति जी पूर्ण रूप से जवान थे। सुन्दर और सुडौल थे। परन्तु उनकी दृष्टि में न जाने कौन सी विचित्रता थी जिससे मैं घबड़ा उठती थी। इनकी शादी अब तक इसीलिए रुकी हुई थी कि ससुर जी पहले अपना विवाह करना चाहते थे। मगर अपना ब्याह करने के बाद ससुर जी अपने लड़के की शादी किसी कारणवश लगभग तीन बरस तक न कर सके। वह कारण जब मैं विवाह हो जाने पर ससुराल गई तो समझ में आया। वहाँ घर की मालिक मेरी सास जी थीं, उन्हीं के इशारों पर मेरे वृद्ध ससुर जी चलते थे। और पति जी और सास जी में कुछ ऐसा गहरा सम्बन्ध था कि इसकी बदनामी वहाँ नौकरों ही में नहीं, बल्कि सारे मुहल्ले भर में फैली हुई थी। यहाँ तक कि सास जी की कन्या भी पति जी ही की बताई जाती थी। मैंने दोनों का व्यवहार ताड़ा। बात सच निकली। मेरे कलेजे में बर्छी चल गई और मेरा हृदय पति जी से सदैव के लिए विरक्त हो गया।

सास जी ने लोक-लाज की ख़ातिर अपने लड़के साहब के विवाह के लिए अनुमति तो दे दी थी, मगर बहू के घर में आते ही उनके कलेजे पर साँप लोटने लगा। ज़रा-ज़रा सी बातों में वह मुझे फाड़ खाती थीं। नित्य ही मेरी शिकायत की जाती थी और नित्य ही मेरी पीठ की मरम्मत होती थी। पति जी बस मुझसे डण्डों ही से बात करना जानते थे। फिर भी कर्त्तव्यवश मैं उनकी तथा घर की सेवा करने में तत्पर रहती थी। मेरे दिन रो-रोकर कटने लगे। उस पर रातों-दिन मेरे दिल पर कोदों दले जाते थे। इससे मैं और जल मरी। वैवाहिक सुख किसे कहते हैं, मैंने वहाँ कुछ भी नहीं जाना।

छठें महीने ख़बर मिली कि मेरे पिता जी का स्वर्गवास हो गया। मुझे मैके जाना पड़ा। साथ में पति और ससुर जी भी आए। क्योंकि ये लोग जायदाद के लिए इसी दिन की ताक में थे। मगर हम लोगों के पहुँचने के पहिले पिता जी के एक पट्टीदार पहुँच कर सब चीज़ों पर अपना अधिकार जमा चुके थे। पिता जी के नज़दीकी रिश्तेदारों में तो कोई था नहीं। सिर्फ़ उनके यही कहने को एक पट्टीदार थे, जिनका नाम मैं सुनती ज़रूर थी, मगर जानती न थी। क्योंकि पिता जी से और इनसे सदा से अनबन चली आती थी। यहाँ तक कि ये हज़रत मेरी शादी तक में शरीक नहीं हुए थे। मगर इस समय यह मेरे चचा बन कर जायदाद के लिए पिता जी के सगे वारिस बन गए। बलिहारी है इस हिन्दू-समाज के क़ानून की कि बाप के ख़ून की पैदा इकलौती बेटी दाने-दाने की मुहताज होकर गली-गली ठोकरें खाए और बाप का दुश्मन ऐसा पट्टीदार, जो बाप से ज़िन्दगी भर लड़ता रहा हो, उसकी जायदाद हड़प कर मौज करे। इस हत्यारे समाज में यदि स्त्रियों की कुछ भी प्रतिष्ठा होती तो हिन्दुओं में ऐसे ऊटपटाँग क़ानून बनाए जाते? यहाँ तो स्त्रियाँ ख़ुद ही दूसरे की जायदाद समझी जाती हैं, तब यह अपने बिरते पर जायदाद पाने की कैसे अधिकारिणी हो सकती हैं? लोग कहेंगे कि स्त्रियाँ दहेज़ के रूप में अपना हिस्सा ले लेती हैं, तब वे दुबारा जायदाद में अपना हिस्सा कैसे पा सकती हैं? मगर मैं पूछती हूँ कि क्या दहेज़ का एक पैसा भी उनके हाथ लगता है या कभी उनके काम आता है? इसे तो ओ स्वार्थी अन्धे पुरुष लोग! तुम्हीं लेकर अपनी शौक़ीनी में उड़ाते हो। रण्डियों की नाच, आतिशबाज़ी और दावतों में फूँक देते हो। न अपना भला करते हो और न अपने परिवार का। मुफ़्त में एक ख़ानदान अपनी मूर्खता से तबाह करते रहते हो। ऐसी धाँधली से देश में भला कब तक दौलत रह सकती है? इस तरह दिनोंदिन भिखमङ्गे होकर जब तुम अपना ही पेट नहीं पाल सकते, तो देश की क्या ख़ाक उन्नति कर सकते हो? अगर दहेज़ की रक़म वास्तविक रूप से स्त्री-धन समझी जाए, उसका एक पैसा भी पुरुष—चाहे अपना ही पति क्यों न हो—छू न सके और स्त्री ही उसे अपने भविष्य के लिए दृढ़तापूर्वक सञ्चित रखने तथा अपने निजी काम में व्यय करने की अधिकारिणी बने, तब तो यह तर्क उचित हो सकता है, मगर वहीं जहाँ स्त्री के सगे भाई-बन्द हों। क्योंकि अपनों से फिर भी उसे वक़्त पर कुछ न कुछ सहायता की उम्मीद हो सकती है। मगर जहाँ केवल पट्टीदार ऐसे ग़ैर का मुक़ाबला हो वहाँ कुल सम्पत्ति लड़की से छीन कर एक मुफ़्तख़ोरे को दे देना किसी तरह से भी मुनासिब नहीं हो सकता। मगर हिन्दू-क़ानून के आगे मेरा क्या वश चलता? कोई वसीयतनामा भी मेरे पास न था। मुक़दमेबाज़ी हुई और मैं हार गई। पति जी तो मुझे पहुँचा कर तुरन्त वापस चले गए थे। सास जी के वियोग ने एक दिन से अधिक उन्हें यहाँ किसी तरह से भी रहने नहीं दिया। परन्तु ससुर जी मुक़दमा जीतने के लालच में अन्त तक ठहरे रहे। आख़िर वह भी चलते बने।

मेरे पिता जी का मकान बहुत ही बड़ा और कई खण्डों का था। जो खण्ड सबसे अलग था उसी में मैं अपनी एक पुरानी दासी के साथ रहती थी। क्योंकि चाचा जी से मुक़दमेबाज़ी होने के कारण उनके घराने में मेरी पैठ न थी। वह डरते थे कि उनको या उनके बच्चों को कहीं मैं ज़हर न दे दूँ। यही उनकी बड़ी कृपा थी कि लोक-लाज के भय से मेरे खाने-पीने का प्रबन्ध दूर ही दूर से कर देते थे। जायदाद की आशा मिट जाने से ससुराल वालों ने मेरी फिर कोई ख़बर नहीं ली। इसी बीच में एक दिन जब सन्ध्या को किसी कारणवश मैं अपने मकान के हाते में आई तो एकाएक एक आदमी घबराया हुआ आकर मेरे सामने खड़ा हो गया और आते ही मेरे पैरों पर गिर कर गिड़गिड़ाने लगा। पहिले तो मैं झिझक कर दूर भागी। मगर तुरन्त ही पहचान
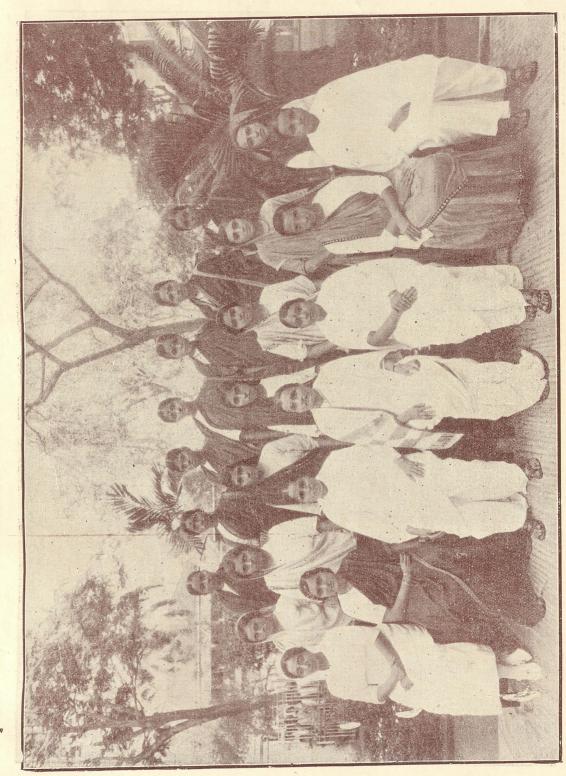
बम्बई सेवा-सदन के आश्रम (Training Home) की महिलाएँ
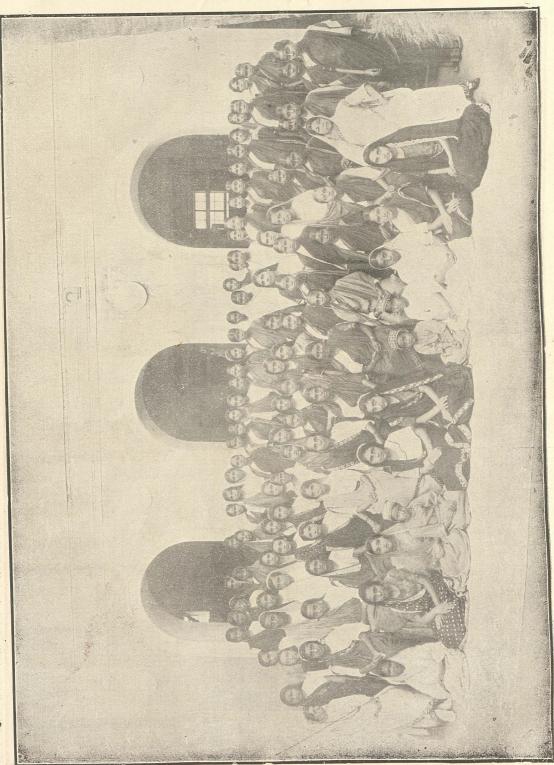
बम्बई सेवा-सदन की गृह-पाठशाला की अध्यापिकाओं व छात्राओं का ग्रुप

लिया कि यह तो मेरे पति जी हैं। उन्हें देखते ही मेरे बदन में आग लग गई। और घृणा से मैंने मुँह फेर लिया। वह बिलख-बिलख कर अपने व्यवहारों की माफ़ी माँगने और अपने पापों पर घोर पश्चात्ताप प्रगट करने लगे। मेरे हृदय में कुछ दया आई और उन्हें मैं भीतर ले गई।

उनकी बातों से मालूम हुआ कि वह बड़े सङ्कट में फँसे हैं। एक राजनैतिक डकैती में कुछ लोग पकड़े जा चुके हैं, उसीमें सम्मिलित यह भी बताए गए हैं। पुलिस के वारण्ट से बचने के लिए इन्हें कहीं भी शरण नहीं मिली। इसीलिए यह भाग कर मेरे पास छिपने आए थे। वह लाख बुरे थे, फिर भी मेरे पति ही थे। उनकी आज्ञा शिरोधार्य थी और उनकी सेवा करना मेरा परम कर्त्तव्य था। इसलिए उन्हें छिप कर अपने पास रहने दिया। लगभग आठ महीने तक वह इस तरह पर्दे में रहे। इस बात की ख़बर सिवाय मेरी दासी को और किसी के कानों-कान भी नहीं हुई।

उन्हें उन दिनों देशभक्ति की ख्याति प्राप्त करने का शौक़ चर्राया हुआ था। इसीलिए वह इस डकैती के मामले में अपनी मित्र-मण्डली सहित फाँसे गए थे। मगर इसका वीरतापूर्वक मुक़ाबला करने का हृदय में बल नहीं था। इसीलिए सङ्कट का सामना पड़ते ही जान चुरा कर भागे थे। मैं उन्हें इन मसलों पर नित्य ही समझाती और बताती थी कि इस ढङ्ग की डकैती-फकैती की युक्तियाँ देश को उन्नति के मार्ग पर कदापि नहीं ला सकतीं। यह तो प्रधान शक्ति को नाहक़ मुँह चिढ़ा कर अपने तथा देश के ऊपर आफ़त ढाना है। अपनी दुर्बलताओं का भण्डाफोड़ कर इसे और रसातल को पहुँचाना है। उन्नति का सत्य मार्ग क्या है? यूरोपीय देशों के रहन-सहन, आचार-विचार, नियम-नीति, इत्यादि में ढूँढ़ो, जो स्वयं स्वतन्त्र ही नहीं, वरन संसार में शासन कर रहे हैं। वहाँ पृथ्वी कँकरीली-पथरीली है। अपने आधे पेट भी खाने के लिए कुछ पैदा नहीं कर पाती फिर भी संसार की सम्पत्ति वहीं टूटी पड़ती है। क्यों? इसीलिए कि पश्चिमी देशों ने इस लोक के सुखों पर विचार किया और पूर्वीय देशों ने परलोक में टाँग पसार कर सोने की ख़ातिर सांसारिक जीवन पर कुछ भी दृष्टि नहीं डाली। वह लोग दुनिया की भलाई के लिए एक से एक आविष्कार करते रहे और यहाँ वाले पहाड़ों के कन्दरों में वैराग के मसलों को सुलझाते रहे। उन्होंने मानव-जीवन का आदर किया, इसे लाभदायक और शक्तिशाली बनाने का यत्न किया। इसके सुखों के लिए रेल, मोटर, तार, हवाई जहाज़, पनडुब्बी, बेतार का तार इत्यादि एक से एक चमत्कार बनाए और नित्य ही बनाते जाते हैं और ये श्वास चढ़ा कर समाधि लगा गए। पूछिए, इससे उनका या संसार का क्या लाभ हुआ। माना कि हम तत्व में बहुत बढ़े-चढ़े हैं, मगर उसका लक्ष्य तो परलोक ही है। फिर इसे वर्तमान स्थिति से क्या सरोकार? इसलिए यहाँ के धर्मों में कट्टरता, पाखण्ड, त्याग, बहिष्कार के अनर्थ और उपद्रव भर गए जिनके कारण हम इस संसार के लिए एकदम निकम्मे होते जाते हैं। और इन्हें सर्वोच्च स्थान देकर हमने अपने आपको और चौपट कर डाला है। ऐसी दशा में पाश्चात्य देश वाले संसार में शासन न करेंगे तो क्या हम लोग?

इसलिए अलिन्द, तुम भी इस पर ख़ूब विचार करो; क्योंकि तुम्हारी भी वही उम्र है, जब ख़ून में उबाल उठता है और भ्रम में पड़ कर लोग आवेश में अशुद्ध पथ पर चल निकलते हैं। यों अपने साथ देश को और तबाह कर डालते हैं। उन्नति का असली मार्ग क्या है? मेरे विचार में तो सबसे पहिले इसके लिए यहाँ के धर्मों को उदार, पाखण्ड रहित, बहिष्कार-रोग-शून्य और कट्टरताविहीन बना कर इन्हें अपने ऊँचे स्थान से खसकाने का उपाय करना चाहिए और इनके उपर देशभक्ति को उच्चासन देना चाहिए, ताकि यहाँ के हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध, पारसी, ईसाई—सभी अपने को एक मत से पहले हिन्दुस्तानी समझें। इसके नाते ब्राह्मण, क्षत्री, भङ्गी, चमार, अमीर-ग़रीब, बल्कि नौकरशाही तक सभी आपस में बराबर जानें। तब इसके बाद उन्हें अपने-अपने निजी धर्म और जाति-पाँति का ख़्याल हो तो हो। काम वह होना चाहिए जिससे यह देशभक्ति का भाव बच्चे-बच्चे के हृदय में पैठ कर समस्त देश का मुख्य धर्म हो जाए। इस कार्य में प्रधान शक्ति को छेड़ने की भी आवश्यकता न पड़ेगी और देश भी अपने आधे उन्नति के मार्ग पर पहुँच जाएगा।

दूसरा उपाय देश की भलाई का यह है कि इसे उद्योगी, परिश्रमी, व्यवसायी बना कर इसकी बेकारी, सुह-

ताजी और ग़रीबी दूर करें और यों इसे मालामाल कर सकें। लाखों साधू, फ़क़ीर, पण्डे-महाब्राह्मण मुफ़्तख़ोरी में पड़े हुए हैं। लाखों हृष्ट-पुष्ट भिखमङ्गे भीख ही पर बसर करते हैं। लाखों ही सम्मिलित ख़ानदान (joint family system) का फ़ायदा उठा कर अपने इने-गिने कमाने वालों के बिरते पर अपाहिज बने हुए हैं। शिक्षा का उद्देश्य कचहरियों की नौकरियाँ ही बना कर सभी उन्हीं में ठोकरें खाने के लिए लपकते हैं। इसीलिए देश इतना कङ्गाल हो रहा है। अपनी छोटी सी छोटी ज़रूरत सूई और दियासलाई तक के लिए विदेशों का मुहताज होकर अपना सर्वस्व लुटा रहा है। ऐसी हालत में भला इसमें कभी शक्ति आ सकती है या यह उन्नति कर सकता है? इसलिए हमारा उद्योग यह होना चाहिए कि कोई आदमी देश में बेकार न रहने पाए। पुरुष ही नहीं, बल्कि स्त्रियाँ तक अपने निर्वाह के लिए आप सामर्थ्य रख सकें। यह बात तभी मुमकिन है, जब यहाँ की ज़रूरत की सभी चीज़ें इतनी अधिकता से यहीं बनाने का उद्योग हो जो समस्त देश के लिए काफ़ी हो सकें। तभी देश मुहताजी और बेकारी से छूट कर मालामाल हो सकता है। तब किसी को पढ़-लिख कर चार पैसे पर ईमान बेचने की इतनी विवशता न होगी और न अपने पापी पेट की ख़ातिर अपने देश के गले पर छुरी चलाने की आवश्यकता पड़ेगी। ग़ज़ब है कि बालू और चट्टानों पर के रहने वाले एक टीन का खिलौना बना कर संसार की दौलत खींच कर मौज कर रहे हैं और हम इतने बड़े उपजाऊ देश में रह कर भी भूखों मर रहे हैं।

इन उपायों के साथ हमें सामाजिक सुधार भी करना आवश्यकीय है। सामाजिक अड़चनों ने हमें लकीर का फ़क़ीर बना कर हमारी नस-नस में दासत्व मनोवृत्ति कूट-कूट कर भर रक्खी है, जिसके कारण हम एक क़दम भी आगे नहीं बढ़ सकते। हमारी मानसिक पराधीनता तो यहाँ तक गई गुज़री है कि जो बैलगाड़ी बाबा आदम के समय में ईजाद हुई थी वह हूबहू वैसे ही आज भी मौजूद है। इसमें बाल बराबर भी हमने उन्नति नहीं की। जो जामा-जोड़ा प्राचीन समय के विवाहों में पहना जाता था वही अब भी पहना जाता है। यही हाल रस्म-रिवाजों का भी है। क्यों? यह हमारी दासत्व मनोवृत्ति का परिणाम है। हम किसी बात में भी आगे बढ़ना नहीं जानते। उधर विदेशियों को देखो कि पोशाक तक में वह किसी चीज़ का दास होकर नहीं रह सकते। घड़ी-घड़ी फ़ैशन बदलते रहते हैं, ताकि दृष्टि और दिमाग़ में शिथिलता न आने पाए। जब हमारे अन्तःकरण में दासता इस बुरी तरह घुसी हुई है, तब हम बिना इसको दूर किए उन्नति के मार्ग पर कैसे चल सकते हैं?

इस विषय पर कहाँ तक लिखूँ। मुझे डर है कि कहीं पढ़ते-पढ़ते ऊब कर मेरा पत्र फेंक न दो। इसलिए देशोन्नति के मूल उपायों का इशारा मात्र देकर कहती हूँ कि अगर नेतागण एक मत होकर इनके आधार पर चलें और इनका प्रचार करके प्रयोग करावें, तब वह लोग ख़ुद ही देखेंगे कि बिना टण्ट-घण्ट के देश कहाँ से कहाँ पहुँचता है और हिन्दुस्तानियों में कितनी शक्ति और आत्मबल आता है। फिर तो ये जो चाहें सो कर सकते हैं।

मैं अपने पति जी को इसी तरह के विचारों से सच्चा देशहितैषी बनाने का उद्योग करती रही। उनकी ख़ातिर डकैती के मुक़दमे का हाल जानने के लिए मैं एक अख़बार भी मँगाती थी, जिससे उसकी काररवाई का बराबर पता चलता रहा। कई महीने यह मामला चला। पाँचवें महीने सबूत काफ़ी न पहुँचने के कारण मुक़दमा ख़ारिज हो गया। पति जी के जान में जान आई, और अब वह अपने पकड़े जाने के भय से मुक्त हुए। फिर भी वह घर के बाहर न निकले और उसी तरह छिप कर रहते थे। आठवें महीने अपील से भी वही फ़ैसला बहाल रहा। जिस दिन अख़बार में यह ख़बर मिली उसी रात को मुझसे बिना कुछ कहे-सुने पति जी लापता हो गए। उस समय मैं पाँच महीने की गर्भवती थी।

मेरे गर्भ का हाल अब अधिक दिन छिप न सका। मेरे चाचा जी के घर वालों को मालूम हो गया। डकैती का मुक़दमा बेलाग ख़ारिज हो जाने से पति जी के अब पकड़े जाने का डर न था। इसलिए मेरी कुशल इसी में थी कि उनका यहाँ छिप कर रहने का हाल बता दूँ। मैंने ऐसा ही किया। मगर चाचा जी इसे सुनते ही आग हो गए। वह उन दिनों रायसाहबी के चक्कर में थे। मुफ़्त का धन पा जाने से सरकारी चन्दा वग़ैरह में रुपया ख़ूब बेदर्दी के साथ देते थे। ऐसी दशा में पति जी का उनके मकान में इतने दिनों तक आश्रय पाने की बात उनको गोली सी लगी। क्योंकि उनकी दृष्टि में

मुक़दमा ख़ारिज हो जाने पर भी मेरे पति राजद्रोही ही थे। इसलिए चाचा जी ने अड़ोस-पड़ोस सभी जगह अच्छी तरह से मशहूर कर दिया कि मेरी भतीजी व्यभिचारिणी है। गर्भ रह गया तो अपने पति के सर मढ़ना चाहती है। वह राजनीतिक डकैत है, उसे भला मैं कहीं अपने यहाँ आने तक दे सकता था? आता तो फ़ौरन गिरफ़्तार न करवा देता? उन्हीं की बात सच मानी गई। मैं और दासी दोनों झूठी हो गईं।

मैंने पति जी को ख़त पर ख़त लिखे, तार दिए, मगर उन्होंने मेरी कोई ख़बर नहीं ली। चाचा जी मुझे नित्य ही घर से निकल जाने को कहते थे। क्योंकि वह डरते थे कि कहीं इसका पति आकर यह गर्भ अपना स्वीकार न कर ले। और सब लोग समझें कि यह राजद्रोहियों के आश्रयदाता हैं। इस तरह उनकी रायसाहबी हाथ से जाए। अगर वह न आए तब भी मुशकिल, क्योंकि बच्चा उनके घर पैदा होने से उनके कुल की प्रतिष्ठा पर आँच आती थी। अस्तु, अपनी बेहयाई के बल पर मैं एक महीना किसी तरह वहाँ और रही। मगर ज्यों-ज्यों दिन समीप आने लगा, घर से निकल जाने के लिए मुझ पर ज़बरदस्तियाँ होने लगीं। अन्त में तङ्ग आकर दासी को साथ लिए मैंने ससुराल का रास्ता लिया।

सास जी मुझे देखते ही मुझ पर झाड़ू लेकर फट पड़ीं। ससुर जी ने काँख-कूख कर—क्योंकि वह मरणसेज पर थे—तकिए के नीचे से एक पत्र निकाल कर मेरे आगे फेंका और मेरे बाप-दादों को सैकड़ों गालियाँ देते हुए मुझे तुरन्त घर से निकल जाने को कहा। मैंने पत्र उठा कर देखा। वह मेरी जायदाद पर मौज करने वाले मेरे ही चाचा जी का था। उसमें उन्होंने इतना ही लिखा था कि "खेद के साथ कहना पड़ता है कि आपकी बहू चरित्रभ्रष्टा होकर काला मुँह करके घर से कहीं निकल गई।" मुझे इन बातों की परवाह न थी। मुझे तो पति जी पर पूरा भरोसा था। मगर जब मेरे और दासी के गोहार लगाने और दोहाई देने पर भी उन्होंने मेरा कुछ भी साथ न दिया, बल्कि मेरे यहाँ आकर रहना तक वह साफ़ इनकार कर गए तो मैं मूर्च्छित होकर वहीं गिर पड़ी।

इस तरह से मैं मैका और ससुराल दोनों जगहों से त्यागी गई। तुम्हीं बताओ अलिन्द, यह तुम्हारी विश्वासघाती पुरुष-जाति का अत्याचार था या मेरा दोष? क्या अब भी तुम मुझे घृणित समझ सकते हो? ईश्वर के लिए दो शब्द लिख भेजो। मेरे प्राण तुम्हीं पर टँगे हुए हैं।

तुम्हारी,
बेमौत मरने वाली जहानारा"

(क्रमशः)

नारी-जीवन

[श्री० आनन्दीप्रसाद जी श्रीवास्तव]

['चाँद' के पाठकों के सुपरिचित और हिन्दी के उदीयमान कवि श्री० आनन्दीप्रसाद जी श्रीवास्तव का परिचय पाठकों को देने की आवश्यकता नहीं है; आपने कुछ दिन हुए पत्रों के रूप में सामाजिक कुरीतियों तथा स्त्री जाति पर होने वाले मूक-अत्याचारों का बड़ा सुन्दर प्रदर्शन 'चाँद' के इन्हीं स्तम्भों में करना प्रारम्भ किया था, किन्तु स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण वे इसे पूर्ण न कर सके थे। आपकी अन्तिम कविता सन् १६२६ के अगस्त वाले अङ्क में प्रकाशित हुई थी। भविष्य में ये कविताएँ धारावाही रूप से भेजने का हमें विश्वास दिलाया गया है। हमें आशा है, इन कविताओं में पाठक नारी-हृदय की भावनाओं का वास्तविक स्वरूप देख सकेंगे।

—सं० 'चाँद']

पत्र-संख्या ६

[वृद्ध-पत्नी की ओर से बाल-विधवा को]

बहिन,

तुम्हारा हाल जान कर
बढ़ती है नित उत्सुकता।
बवण्डरों से मानो अस्थिर
हो जाती है हृदय-लता॥

क्या होगा यह अनुमानों से
यद्यपि हो जाता है ज्ञात।
पर होता सन्तोष नहीं है
बिना सुने आगे की बात॥

हिन्दू-परिवारों का ऐसा
है गृह का सङ्गठन कठोर।
नहीं देखने वाला होता
कोई वधू-क्लेश की ओर॥

जब से वे आती हैं तब से
मृषा, लाज, झूठा सङ्कोच।
आने-जाने वाली महिला—
जन में बदनामी का सोच॥

सास ननद का भय पद-पद पर,
आदि उन्हें देते हैं क्लेश।
पति भी अति परवश होता है,
क्या दुख रह जाता है शेष?

बस इतनी ही नहीं, सङ्गठन
की होती है शक्ति कराल।
वह चाहे जो कुछ कर डाले,
छिपा रहेगा सच्चा हाल॥

लोग कहेंगे, उग्र प्रकृति का—
तुमको यह मिलता था दण्ड।
पर ऐसे दुख में उठ आता
किस में नहीं भाव उद्दण्ड?

जितना तुम सहती थीं, उतना
सहना भी था योग्य नहीं।
रोग बड़ा अनीति सहना है,
वह मन का आरोग्य नहीं॥

जिस पर पड़ती वही जानता
यों तो सहन शक्ति-उपदेश—
सब करते हैं, किन्तु तभी तक
जब तक स्वयं न पाते क्लेश॥

लिखूँ तुम्हें क्या, क्या समझाऊँ,
बहिन, तुम्हारा दुर्गम क्लेश—
विस्मृत होता नहीं किसी क्षण,
नित कम्पित करता हृद्देश॥

आगामी पत्रों के पढ़ने
की उत्कण्ठा है मन में।
निर्बल सहानुभव होता है,
रोता है महिला-जन में ॥

पढ़ूँ हाल दुख-भरा तुम्हारा
और पढ़ो तुम मेरा हाल।
इससे भिन्न हमारे हित है
अन्य नहीं घटना की चाल ॥

अस्तु, पुनः मैं कह जाती हूँ
कुछ थोड़ा सा अपना हाल।
झटका खाकर वृद्ध गिरा जब,
उठा तनिक लज्जित तत्काल ॥

उसने कहा, "प्रिये, करती हो
मुझसे यह कैसा व्यवहार ?"
पर सम्बोधन सुन कर मेरा
बिगड़ा कुछ मुख का आकार ॥

उसे देख कर बड़े प्रेम से
लगा प्रसन्न मुझे करने।
अपने नीरस मृतक हृदय से
सरस भाव मुझमें भरने ॥

मुझसे सुनी न जाती थीं वे,
जो-जो करता था वह बात।
धीरे-धीरे होते जाते—
थे मेरे दृग जल से स्नात ॥

याद आ रही थी माता की—
गोदी और पिता का प्यार।
स्निग्ध मनोरम, सब सुविधामय
अपने बचपन का संसार ॥

उसके बाद पिता की चिन्ता,
माता का दुख और प्रथा—
वह दहेज की, जिसके कारण
है समाज में व्याप्त व्यथा ॥

रोते हुए पिता का देना
परम क्लेश से कन्यादान।
मेरे भावी पति के द्वारा
पद-पद पर उनका अपमान ॥

अपना वह भयपूर्ण दृगों से
प्रथम बार पति का दर्शन।
कोटि वृश्चिकों के दंशन से
पीड़ित सा तन, बाधित मन ॥

बैठी थी, चुपचाप गड़ी थी
जाती मैं भू में प्रति क्षण।
बहिन, व्यथा वह कह न सकूँगी,
जोकि पा रहा था तब मन।

करती रही स्वीय रक्षा मैं
बहुत काल तक किसी प्रकार।
पड़ी हुई थी मैं उसमें; थी
बहती विषम विपद की धार ॥

पत्र-संख्या १०

[बाल-विधवा की ओर से वृद्ध-पत्नी को]

बहिन,

पत्र मिल गया, पढ़ा पढ़-
कर मानस विकराल हुआ।
हुआ न होगा क्या बहुतों का,
जोकि तुम्हारा हाल हुआ ?

कितने गुप्त हुआ करते हैं
जगती में यों अत्याचार।
जिनका करता नहीं कभी भी
कोई न्यायाधीश विचार ॥

विकट वेदना कन्याओं की
ऐसी भला कहेगा कौन ?
इस प्रकार जो बूढ़ों के सँग
बँध जाया करती हैं मौन ?

कौन कहेगा, कौन सुनेगा या
उसको समझेगा कौन ?
स्वयं वेदना सहने वाली
जब उसको सह लेगी मौन ॥

सहनशीलता कहें इसे या
इसे कहें हम कायरता ?
क्यों औचित्य विरुद्ध बनें यों
कुछ कन्याएँ वृद्ध-रता ?

विष क्या नहीं मिला था तुमको,
या साहस से तुम थीं हीन ?
आवश्यकता क्या थी तुमको
इतनी हो जाने की दीन ?

अथवा क्या था उस घर में;
क्या खुला नहीं था सब संसार ?
क्या ले सकती नहीं स्वयं थीं
तुम अपने जीवन का भार ?

चार रोटियों के बदले ही
करते नर यों अत्याचार ।
और रहें ही क्यों हम उनके
ऊपर नितप्रति बन कर भार ?

हो करके वयप्राप्त करें हम
क्यों न जीविका का अर्जन ?
क्यों न करें हम अपने मन से
जीवन-पथ का निर्वाचन ?

क्यों डालें हम भला पिता के
ऊपर निज विवाह का भार ?
क्यों न करें हम निर्मित अपनी
इच्छा से भावी-संसार ?

करने का परिणीत तुम्हें यों
भला उसे था क्या अधिकार ?
फिर तो अत्याचार वृद्ध का
यों सहना था—निपट असार ॥

बहिन, क्षमा करना मेरी ये—
बातें रखना स्थिर हृद-देश
अपने दुख, पर-दुख, दोनों में
मुझे त्वरित आता है त्वेष ॥

बहिन, लिखूँगी फिर अब तुमको
कुछ अपना आगे का हाल ।
फल कहती हूँ उसका, जो था
रचा गया मेरे हित जाल ॥

एक दिवस सन्ध्या नौकर ने
छेड़-छाड़ की कुछ मुझसे ।
सास पूछने आई फिर यह—
"क्या कहता था वह तुझसे ?"

कहा भृत्य ने जो था, मैंने
सुना दिया उसको तत्काल ।
कहा भृत्य से कुछ न, दिखाईं
मुझे सास ने आँखें लाल ?

(क्रमशः)

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

आजकल स्कूल और कॉलेजों की पिकेटिङ्ग हो रही है। कॉङ्ग्रेस के कट्टर अनुयायियों का कथन है कि बस पढ़ना-चढ़ना सब ताक पर रख कर कॉङ्ग्रेस के कार्य में जुट जाओ। जब संग्राम छिड़ा हुआ है तो पढ़ना-लिखना कैसा? दूसरी ओर कुछ लोग यह कह रहे हैं कि लड़कों का पढ़ना-लिखना बन्द करना उनके लिए हानिकारक है। आज अपने राम इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने बैठे हैं कि इन दोनों बातों में कौन सी बात युक्तिसङ्गत है।

उस दिन एक पड़ोसी मिले। वह बहुत ही क्रोध में थे। मैंने जो पूछा कि कहिए कैसे मिज़ाज हैं, तो बोले—कुछ न पूछिए, इस समय दिमाग़ बहुत गर्म है।

मैंने अपने नौकर को पुकार कर कहा कि चार पैसे की बर्फ़ ले आ।

उन्होंने कहा—मुझे प्यास नहीं है। रहने दीजिए।

मैंने कहा—पीना नहीं, दिमाग़ पर रख लेना—ठण्डा हो जायगा।

वह बोले—आपको मज़ाक़ सूझा है और मैं इस समय अपने आपे में नहीं हूँ।

मैंने कहा—ख़ैरियत तो है, आख़िर मामला क्या है?

उन्होंने कहा—मामला क्या, आजकल के लड़के ऐसे नालायक़ हैं कि माँ-बाप का कहना नहीं मानते।

मैंने कहा—बेशक, यह बड़ी बेजा बात है कि एकदम से दोनों का कहना नहीं मानते। कम से कम एक का तो कहना मानना ही चाहिए। माँ का न मानें बाप का मानें, बाप का न मानें माँ का मानें।

उन्होंने मेरी बात पर ध्यान न देकर कहा—आज लड़का सवेरे से स्कूल जाने के लिए ज़िद कर रहा है।

मैंने कहा—आप 'नकार' को डकार गए। न जाने के लिए ज़िद कर रहा होगा—हाँ तो फिर × × ×?

वह—न जाने के लिए नहीं, जाने के लिए!

मैंने हैरान होकर पूछा—तो यह कोई बुरी बात तो है नहीं।

"सरासर बुरी बात है। जब कॉङ्ग्रेस का हुक्म नहीं है तो स्कूल जाने की क्या आवश्यकता है?"

"शुक्र है, आज यह दिन तो देखने को मिला। एक समय वह था कि लड़के स्कूल से जान चुराते थे और अब जान देते हैं।"

"लड़कों की जाति ऐसी है कि सदा विरुद्ध कार्य करते हैं।"

"ऐसी बात तो नहीं है।"

"सोलहो आने यही बात है।"

"जब आपको यह बात मालूम है तब तो बड़ा सहल नुस्ख़ा है।"

"सहल नुस्ख़ा क्या है?"

"उससे आप कहिए कि स्कूल अवश्य जाओ।"

"वाह! अच्छा उल्लू बनाते हो!"

"लड़कों का विरुद्ध कार्य करने का स्वभाव होता है कि नहीं?"

"होता है; परन्तु मैं अपने मुँह से ऐसी बात क्यों कहूँ जिसे मैं पसन्द नहीं करता।"

"अच्छी बात है जाने दीजिए। अच्छा, घर में वह क्या करेगा?"

"जो उसकी इच्छा हो करे, घर में पढ़े।"

"घर में पढ़ने की आदत उसे मत डलवाइए, अन्यथा स्कूल-कॉलेजों का दिवाला हो जायगा।"

"हो जाने दीजिए, ऐसा हो जाय तो अच्छा ही है। इनसे कोई लाभ नहीं। अङ्गरेज़ी शिक्षा महा हानि-कारक है।"

"आपने भी तो अङ्गरेज़ी शिक्षा प्राप्त की थी।"

"हाँ, प्राप्त तो की थी।"

"आपको कुछ हानि पहुँची?"

"अरे दुबे जी, हमारी तो कट गई।"

मैं घबरा कर बोला—हैं कट गई! तो क्या मोम की लगाए हुए हो?

वह अपनी नाक पर हाथ फेरते हुए कुछ अप्रसन्न होकर बोले—नाक नहीं, उमर कट गई। आप भी पूरे चोंच हैं।

"चोंचपने की बातें तो आप ही कर रहे हैं। हाँ तो आपकी तो कट गई?"

"हाँ, हमारी तो कट गई, हमें अब क्या हानि पहुँचेगी।"

"आख़िर घर में वह क्या पढ़ेगा? घर में भी तो अङ्गरेज़ी ही पढ़ेगा, या पश्तो पढ़ाने का इरादा है?"

"पश्तो क्यों, हिन्दी पढ़े, उर्दू पढ़े, मुड़िया पढ़े।"

"अजी हिन्दी-उर्दू में क्या धरा है। अलबत्ता मुड़िया-साहित्य पढ़ने की चीज़ है।"

"न पढ़े, खेला करे—परन्तु स्कूल न जाय, बस मैं यह चाहता हूँ।"

"तो मेरी सलाह तो यह है कि आप भी ख़ाली बैठे रहते हैं। आप और वह मिल कर गुल्ली-डण्डा खेला करें। क्यों ठीक रहेगा न?"

"अरे इस उमर में गुल्ली-डण्डा क्या खेलूँगा।"

"उसे गुल्ली-डण्डे की अच्छी शिक्षा तो आप ही से प्राप्त हो सकेगी।"

"गुल्ली-डण्डा तो ख़ैर मज़ाक़ है, मेरी इच्छा थी कि कुछ देश का काम करता; परन्तु ज़रा जेल-वेल का खटका रहता है, यही बेजा बात है।"

"बड़ी बेजा बात है। न मालूम इन जेलों का ईजाद करने वाला कौन कमबख़्त था। जेल न होते तो आप कच्चों-बच्चों के सहित खुल कर देश-सेवा करते।"

"फिर क्या था, फिर तो मौज थी। परन्तु ऐसा हो नहीं सकता।"

"हो क्यों नहीं सकता। यदि राउण्ड टेबुल-कॉन्फ़्रेन्स में हिन्दुस्तानी यह कहें कि हमें स्वराज्य-वराज्य कुछ नहीं चाहिए, ख़ाली जेल तोड़ दिए जायँ, जिसमें हम लोगों को बेखटके देश-सेवा करने का अवसर मिले तो हो सकता है।"

"ऐसा होना असम्भव है।"

"संसार में कुछ भी असम्भव नहीं है।"

इसके पश्चात् कुछ देर तक वह महाशय झींकते रहे। तत्पश्चात् यह कह कर कि—"आप ज़रा लड़के को समझाइएगा" चले गए।

यह महाशय पढ़े-लिखे हैं; परन्तु यह दशा है कि न लड़के को पढ़ने देते हैं और न कुछ देश का ही कार्य करने देते हैं।

एक दूसरे महाशय पिकेटिङ्ग के मारे आजिज़ हैं। उस दिन बड़े आवेश के साथ मुझसे बोले—"इन कॉङ्ग्रेस वालों की बुद्धि में दीमक लग गई है। जो ऊल-जलूल मन में आता है, करते हैं। बताइए स्कूल और कॉलेजों पर पिकेटिङ्ग करने लगे। लड़के पढ़ें नहीं तो क्या डण्डे बजाते घूमें?

मैंने कहा—देश का काम करें।

वह बोले—देश का काम जिसे करना होगा वह स्वयम् करेगा—कोई किसी से ज़बरदस्ती देश का काम नहीं करा सकता। महात्मा जी के जेल जाने से यह सब धाँधली होने लगी। वह बाहर होते तो ऐसा कदापि न होने पाता।

मैंने कहा—महात्मा जी पिकेटिङ्ग का विरोध तो न करते।

"वाह! करते क्यों नहीं? उस दिन 'लीडर' ने महात्मा

जी के 'यङ्ग-इण्डिया' से उनका एक लेख उद्धृत किया था। उसमें महात्मा जी ने धरने की निन्दा की है।"

"वह तो सन् २१ की बात थी, आजकल वह बात नहीं है।"

"क्यों नहीं है जनाब, सिद्धान्त भी कभी बदलते हैं?"

"हाँ, समय के अनुसार नीति में परिवर्त्तन होता ही रहता है।"

"बस मालूम हो गया! आप भी उन लोगों में हैं जो कभी कुछ कहते हैं, कभी कुछ। अच्छा आप ही बताइए, स्कूल और कॉलेजों का धरना उचित है?"

"मैं तो कहता हूँ कि स्कूल और कॉलेज तोड़ कर उनमें 'स्पोर्ट्स क्लब' बना दिए जायँ। लड़के आनन्द से वहाँ धमा-चौकड़ी मचावें।"

"बस, स्वराज्य मिल जायगा, क्यों न? बलिहारी आपकी बुद्धि पर। स्वराज्य इसी में तो धरा है कि स्कूल पर झण्डा गाड़ कर 'तिरङ्गा प्यारा' रटा करो। अजी जनाब, इस 'तिरङ्गे प्यारे' की स्तुति से कुछ न होगा। कुछ ठोस काम होना चाहिए। विदेशी वस्तुओं का बॉयकॉट कीजिए, बस असली बात यही है। उस दिन मैं कॉलेज की ओर गया था—वहाँ का दृश्य देख कर ऐसा दुःख हुआ कि क्या कहूँ। प्रिन्सिपल साहब प्रोफ़ेसरों के साथ भूमि पर बैठे गुट्टे खेल रहे थे।"

"तो जनाब, यह कितनी बड़ी बात है। पिकेटिङ्ग की बदौलत उन्हें गुट्टे तो खेलने को मिले। वैसे तो मर जाते; पर यह सौभाग्य नसीब न होता।"

"इसे आप सौभाग्य कहते हैं?"

"काम कुछ न हो, खेलने-कूदने की सुविधा रहे—यह सौभाग्य नहीं तो और क्या है?"

"कुछ दिन यही हाल रहा और स्कूल-कॉलेज पूर्ण-तया बन्द हो गए तो उन्हें भोजन कौन देगा?"

अजगर करे न चाकरी, पञ्छी करे न काम।
दास मलूका कह गए, सब के दाता राम॥

काँङ्ग्रेस का कार्य करें, भगवान खाने को ही देगा। अब तो पिकेटिङ्ग का नुसख़ा मालूम हो गया। अपने भोजन के लिए भी हलवाइयों और बनियों की दूकान पर पिकेटिङ्ग करें। जब तक भोजन न मिल जाय तब तक किसी को सौदा न ख़रीदने दें।"

"जी हाँ, और इस पर भी न दें तो अपने बदन में छुरी मारें, ख़ून निकालें, बस यही बाक़ी रह गया है। काँङ्ग्रेस वालण्टियरों का क्या बिगड़ता है। उनमें या तो ऐसे हैं जिनके घर में खाने का सुभीता है या फिर ऐसे हैं जो निहङ्ग लाडले हैं। दोनों समय चन्दे की रक़म से भोजन करते हैं और 'तिरङ्गा प्यारा' गाते घूमते हैं, धरना देते हैं—जिन्हें ये दोनों सुविधायें प्राप्त नहीं, वे मरें।"

"अजी जनाब, ऐसे कौन मरता है, मरेगा तभी जब मौत आएगी।"

"आप तो बेसिर-पैर की बातें करते हैं। आप से बात करना व्यर्थ है।"—इतना कह कर वह महाशय मुँह फुलाए हुए चले गए।

सम्पादक जी, अपने राम की बुद्धि इस मामले में चक्कर खाकर रह जाती है। एक ओर तो यह कहा जाता है कि स्कूल और कॉलेज छोड़ कर देश के काम में जुट जाओ। फ़िलहाल देश का जो ठोस काम है वह विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार है। सो यह शिक्षा जारी रखते हुए भी किया जा सकता है। कुछ स्थानों में यह भी हो रहा है कि विद्यार्थीगण स्कूल की इमारत पर झण्डा लगाते हैं। यदि उन्हें झण्डा लगाने की स्वाधीनता रहे तो वे स्कूल अथवा कॉलेज का बॉयकॉट न करें। और यदि झण्डा लगाने की आज्ञा नहीं मिलती तो बॉयकॉट। यदि झण्डा लगा लिया तो इसमें कौन सी देश की सेवा हो गई और यदि नहीं लगा तो कौन सी देश की हानि हो गई, यह समझ में नहीं आता। अपने राम की समझ में तो यह वही "आ पड़ोसन लड़ें" वाली बात हुई। यदि यत्र-तत्र झण्डा फहरा देने से ही स्वराज्य-प्राप्ति का मार्ग सुगम हो सकता हो तो यह ठीक भी है; परन्तु ऐसा तो दिखाई नहीं पड़ता। यदि यह हो कि विद्यार्थी स्कूल और कॉलेज छोड़ कर देश का कोई ठोस कार्य करें, सो बात भी नहीं है। अभी तक तो उनका सब से बड़ा कार्य यही देखने में आता है कि झण्डियाँ हाथ में लिए 'हू-हा' करते फिरते हैं। इसमें कौन सी देश-सेवा है, यह समझ में नहीं आता। मेरे एक मित्र का कथन है कि इस हुल्लड़-शाही में भी देश-सेवा है। इससे देश में जागृति मालूम होती है। परन्तु अपने राम को तो यह कार्य पहाड़ खोद कर चूहा निकालना प्रतीत होता है। हाँ, यदि पिकेटिङ्ग करने का नशा हो गया हो तो बात दूसरी है। पिकेटिङ्ग अवश्य होना चाहिए—कहीं भी हो और चाहे जिस लिए हो; पर हो अवश्य! यह सिद्धान्त ही दूसरा है। ऐसी दशा में तो सब ठीक है। पराए अशकुन के लिए नाक कटाने के स्वभाव की तो बात ही निराली है। एक महोदय ने यह भी कहा कि—"जनाब यह तो शान्त क्रान्ति है। इसका उद्देश तो यह है कि गवर्नमेण्ट की सारी मेशीनरी बिलकुल ठप कर दी जाय!" परन्तु स्कूल और कॉलेज गवर्नमेण्ट की मेशीनरी हैं—यह उन्हीं महाशय से मालूम हुआ। यदि यही बात ठीक है तो न्यायालयों, रेल्वे, टेलीग्राफ़ बैङ्कों इत्यादि इत्यादि पर भी पिकेटिङ्ग होनी चाहिए। यदि पिकेटिङ्ग ही से स्वराज्य मिलना है तो चलने दो। प्रत्येक ऐसे कार्य पर, जिसका कुछ भी सम्बन्ध गवर्नमेण्ट से है, पिकेटिङ्ग होने दो। अपनी हानि चाहे पौने सोलह आने हो, परन्तु उससे यदि गवर्नमेण्ट की एक पैसा भर भी हानि होती हो तो पिकेटिङ्ग अवश्य होनी चाहिए।

क्यों सम्पादक जी, इस सम्बन्ध में आपकी क्या राय है?

भवदीय,

विजयानन्द (दुबे जी)

[श्री० गयाप्रसाद जी शास्त्री, साहित्याचार्य]

सूखी खाँसी

काली मिर्च ३ माशे, बबूल का गोंद १ तोला, छोटी इलायची ६ माशे, मुलहठी २ तोले और मिश्री ४ तोले।

विधि—सब चीज़ों को कूट, पीस, छान कर चूर्ण बना लेना चाहिए। मात्रा अवस्था के अनुसार ३ रत्ती से २ माशे तक। प्रातः तथा सायङ्काल शहद के साथ सेवन करना चाहिए।

* * *

दाद की दवा

तूतिया १ तोला, चौकिया सुहागा १ तोला, नैनिया गन्धक १ तोला, राई १ तोला, शेवारी शकर १ तोला।

विधि—सब चीज़ों को कूट, पीस, छान कर तथा पानी में घोट कर गोलियाँ बना लेनी चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर गोली को पानी के साथ घिस कर दाद पर लगाना चाहिए। इस औषधि से दाद समूल नष्ट हो जाता है।

* * *

सुन्दर गौरवर्ण सन्तान उत्पन्न करना

छाया में सुखाई गई बबूल की कोमल पत्तियाँ १ छटाँक, कमलगट्टा की मींगी १ तोला, दोनों औषधियों को कूट, पीस, छान कर चूर्ण बना लेना चाहिए। उक्त चूर्ण के बराबर मिश्री मिला कर इस दवा को एक साफ़ शीशी में रख लेना चाहिए। गर्भावस्था के तीन मास के बाद प्रातःकाल ३ माशा औषधि एक पाव गोदुग्ध के साथ सेवन करते रहने से बहुत ही सुन्दर और गौर-वर्ण सन्तति उत्पन्न होती है। यह प्रयोग अनुभूत है।

* * *

स्वप्नदोष

वङ्ग भस्म १ तोला, शुद्ध अफ़ीम ६ माशे, शुद्ध कर्पूर ६ माशे, तालमखाना १ तोला और रस-सिन्दूर १ तोला।

विधि—ऊपर लिखी हुई सब औषधियों को जल के योग से खरल करके दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना लेना चाहिए। रात्रि में सोने के पहले १ गोली दूध के साथ सेवन करने से स्वप्नदोष समूल नष्ट हो जाता है।

* * *

पाचक चूर्ण

सेंधा नमक १ तोला, नौसादर १ तोला, काली मिर्च १ तोला, छोटी पीपल ६ तोले, काला नमक ४ तोले, सोहागे का फूला ४ तोले, घी में भुनी हींग २ तोले, टाटरी १ तोला।

विधि—सब चीज़ों को कूट, पीस, छान कर चूर्ण बना ले। मात्रा १ माशा से ३ माशे तक अवस्था के अनुरूप। गर्म जल के साथ प्रातः सायं तथा आवश्यकता के अनुसार सेवन। सभी प्रकार के उदर-रोगों में यह लाभ करता है।

* * *

आधाशीशी (शिर का दर्द)

आक (मदार) के पत्तों को थोड़ा सा आग में गर्म कर किसी बर्तन में अर्क़ को निचोड़ लेना चाहिए। जिस ओर दर्द होता हो उसी ओर की नासिका के द्वारा इस अर्क़ को दो-एक बार खींचने से आधाशीशी में विशेष लाभ होता है।

* * *

[श्री० बुद्धिसागर जी वर्मा, विशारद, बी० ए०, एल० टी०]

शरीर की कान्ति, रङ्गत और त्वचा

"सौन्दर्य पर मुग्ध होना मनुष्य का प्राकृतिक धर्म है। सुरञ्जित सुन्दर पुष्प, सुचित्रित पशु-पक्षी, मेघवर्णोज्वल आकाश—इन्हें देख कर किसका हृदय मुग्ध नहीं होता?"

—श्री० राधारानी दत्त

जब नीरोग बच्चा नीरोग माता के गर्भ से उत्पन्न होता है, उस समय उसकी त्वचा कैसी कोमल एवं मनोहर होती है। किन्तु आगे चल कर असावधानी से लोग नाना प्रकार की बुराइयाँ उत्पन्न कर लेते हैं। त्वचा को सुन्दर बनाने के लिए सफ़ाई की सर्वोपरि आवश्यकता है। आरोग्यता के साधनों पर दृढ़ रहने से त्वचा में रोग नहीं होते और सफ़ाई के नियमों का भली भाँति पालन करने से त्वचा में सुन्दरता आती है। अतः सौन्दर्य के लिए दोनों ही समान रूप से आवश्यक हैं। यदि रोम-कूपों को साफ़ रक्खा जाय और रक्त को दूषित होने से बचाया जाय तो त्वचा में कभी ख़राबी नहीं आ सकती।

स्नान

रोम-कूपों को साफ़ रखने के लिए नित्य अच्छी तरह स्नान करना चाहिए। जो स्त्रियाँ बाहरी बनावट, कपड़े इत्यादि तड़क-भड़क से तो साफ़-सुथरी रहती हैं, किन्तु शरीर की वास्तविक स्वच्छता पर ध्यान नहीं देतीं, वे सर्वथा आरोग्यता की घातक हैं। इसीलिए नित्य स्नान करना स्वास्थ्य का एक विशेष अङ्ग माना गया है। आरोग्यता एवं बल चाहने वाली स्त्रियों को प्रत्येक ऋतु में सूर्योदय के समय ही स्नान कर लेना चाहिए। अधिक से अधिक ७-८ बजे तक तो स्नान अवश्य ही हो जाना चाहिए। किन्तु रोगी तथा निर्बल स्त्रियों के लिए इस नियम की पाबन्दी आवश्यक नहीं है। ग्रीष्म ऋतु में सायं-प्रातः दो बार भी नहाया जा सकता है, क्योंकि दिन-भर के पसीने के कारण शरीर में बू आने लगती है और पसीने में विष होता है। परन्तु रजस्वला स्त्री को भूल कर भी न नहाना चाहिए, चाहे सर्दी हो या गर्मी।

स्नान के लिए सदा ताज़े स्वच्छ जल का ही प्रयोग उचित है। रुग्णावस्था तथा निर्बलता की विशेष दशाओं में गरम जल का भी प्रयोग किया जा सकता है, किन्तु वह भी अधिक गरम न होना चाहिए। एक डॉक्टर का मत है कि मास में एक बार गरम पानी और साबुन या सोडा से नहाना स्वास्थ्यप्रद है। इससे त्वचा साफ़ हो जाती है, किन्तु नित्य गरम पानी से नहाना अप्राकृतिक है और इससे मनुष्य निर्बल और विषयी हो जाता है।

झटपट नहाने की अपेक्षा मल-मल कर जल से सारे शरीर को धोकर नहाना कहीं उपयोगी है। स्नान के समय यदि हो सके तो शरीर को ठण्डी वायु से बचाए रखना चाहिए और नहा कर तुरन्त कपड़े पहिन लेना चाहिए। स्नान का स्थान, खुला, हवादार और प्रकाश-मय होना चाहिए। स्नान के समय शरीर पर जितने कम कपड़े हों उतना ही अच्छा है। एकान्त में विवस्त्र स्नान सर्वोत्तम है। जल में यदा-कदा थोड़ा नमक मिला

कर स्नान करने से त्वचा स्वच्छ हो जाती है, किन्तु नमक इतना ही मिलावे कि पानी खारा न हो जाय। नदी और स्वच्छ तालाब का स्नान और भी अच्छा है। शास्त्र में समुद्र-स्नान की महिमा अधिक है। समुद्र-जल में एक प्रकार की बिजली होती है, अतः मनुष्य अधिक नीरोग और चैतन्य बनता है। मेरी निजी राय यह है कि घर के पानी में समुद्र का नमक मिला कर स्नान करके बाद में शुद्ध जल से स्नान कर लेना चाहिए।

दुख की बात है कि हमारी महिलाएँ तौलिए का प्रयोग प्रायः नहीं करतीं। स्नान के बाद शरीर का पोंछना इतना ही आवश्यक है, जितना बालों में कङ्घी करना। यह आवश्यक नहीं कि आप ।।।) या ।।।≡) की बढ़िया तौलिया ही ख़रीदने के लिए अपने पतियों की नाक में दम कर दें। खादी के मोटे अँगोछे से भी काम लिया जा सकता है। प्रत्येक को तौलिया या अँगोछा अलग-अलग रखना चाहिए। एक ही से घर भर को काम नहीं लेना चाहिए। कुछ भी न हो तो आधी धोती ही निचोड़ कर काम निकाल लिया जाय, किन्तु स्नानोपरान्त शरीर को ख़ूब रगड़ कर पोंछ अवश्य डालना चाहिए। इससे मैल छूट जाता है; रोम-कूप खुल जाते हैं; और शरीर की रङ्गत भी निखरती है, त्वचा के रोग भी नहीं होने पाते। गरम पानी से शीघ्र-शीघ्र नहाने से भी रोमकूप खुल जाते हैं, किन्तु गरम पानी का उपयोग शीतकाल ही में ठीक है। रोम-कूप खोलने की एक और भी तदबीर है। नींबू काट कर पानी में डाल दो; एक घण्टा बाद निकाल कर उसी पानी में निचोड़ दो; फिर इसी से स्नान करो। शरीर ख़ूब साफ़ होकर रोम-कूप खुल जायँगे।

तैल

कड़वे तैल की मालिश रङ्गत को ख़ूब निखारती है। वाग्भट्ट लिखते हैं—"शरीर में तैल नित्य मलवाने से पुष्टता बढ़ती है।" शीतकाल में यदि सर्वाङ्ग में तैल की मालिश न हो सके तो प्रातःकाल नहाने से प्रथम शिर, कान, हाथों और पैरों में तो अवश्य मल लेना चाहिए। इससे शीत नहीं व्यापता। शीतकाल में यदि नित्य नहीं तो चौथे-पाँचवें तथा अन्य ऋतुओं में कम से कम आठवें-दशवें दिन तैल की मालिश सर्वाङ्ग में करानी चाहिए। इसी कारण मालूम होता है शनिश्चर के दिन तैल-मर्दन का विशेष विधान बताया गया है। इससे त्वचा पुष्ट रहती है, फटती नहीं एवं कोमल रहती है। किन्तु अधिक ग्रीष्म-ऋतु में शीघ्र-शीघ्र तैल मलवाना ठीक नहीं, क्योंकि कड़ुआ तैल स्वयं गरम होता है। मेरी समझ में १५ दिन में एक बार पर्याप्त होगा।

उबटन

उत्तम उबटनों का प्रयोग भी कभी-कभी स्त्रियों को अवश्य करना चाहिए। किन्तु बाज़ारी उबटन अच्छे नहीं होते; इनमें प्रायः विषैले और हानिकर पदार्थ मिल जाते हैं। इसके अतिरिक्त ये बनाए भी असावधानी से जाते हैं। उचित यही है कि स्वयं बना कर ही उबटन लगाए जायँ। दोनों हल्दी, लाल चन्दन, भैंस के दूध के साथ लगाने से रङ्ग ख़ूब गोरा हो जाता है। कड़वे तैल, बेसन और हल्दी का उबटन भी बहुत उत्तम है। तैल कफ एवं वायु के कोप को रोकता है और त्वचा को शुद्ध कर बल देता है। बेसन शरीर की दुर्गन्ध एवं मैल को काट कर त्वचा को नरम बनाता है। हल्दी त्वचा के समस्त रोगों को दूर करती है। इसीलिए विशेष उपयोगी समझ कर विवाह में इसी उबटन की प्रथा रक्खी गई है। चिरौंजी का उबटन अथवा भुने चने का आटा हल्दी, तैल मिला कर लगाना भी अच्छा है। पीली सरसों को दूध में उबाल कर पीस ले, इस उबटन से देह की खुजली भी मिट जाती है। मसूर की दाल छिलका रहित पीस कर दूध में मिला कर मालिश करने से भी त्वचा बहुत साफ़ हो जाती है।

साबुन

यदा-कदा बढ़िया साबुन भी लगाए जा सकते हैं। घटिया मेल के साबुन या तो बिल्कुल ही न लगाए जायँ अथवा उनका प्रयोग बहुत ही कम किया जाय। घटिया से अभिप्राय उन साबुनों से है जिनमें सज्जी का भाग अधिक होता है। ये त्वचा के लिए हानिकर होते हैं। या तो साबुन का प्रयोग ही न करे या यदि करे तो ख़र्च कर अच्छे मेल का ख़रीदना चाहिए। अच्छे और बुरे साबुन में भेद यह है कि पहला त्वचा की रङ्गत निखारता है और दूसरा उसे बिगाड़ देता है। एक अङ्गरेज़ डॉक्टर कहता है कि केवल साबुन की ख़राबी से त्वचा में ४०० प्रकार के रोग उत्पन्न हो सकते हैं। साधारण पहचान यह है कि जिस साबुन के रगड़ने से नरम

झाग बहुत सा निकले, उसी को उत्तम समझना चाहिए। किन्तु फिर भी साबुन का पहचानना सर्व-साधारण के लिए कठिन है। प्रायः ऊँचे मोल वाले बढ़िया साबुन भी सन्तोषजनक नहीं होते। इसलिए यदि साबुन का प्रयोग किया ही जाय तो सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह कहीं पर लगा न रह जाय। अन्यथा रोम-कूपों का मुँह बन्द हो जाता है और त्वचा की कान्ति फीकी पड़ जाती है। साबुन लगा कर त्वचा को ख़ूब मल कर धोने के बाद तौलिया से अच्छी तरह पोंछ डालना चाहिए।

शरीर की दुर्गन्ध

किन्हीं स्त्रियों के शरीर में बड़ी दुर्गन्ध आने लगती है और उनके निकट बैठने तक को जी नहीं चाहता। इसका हेतु प्रायः किसी न किसी प्रकार की मलिनता ही हुआ करती है। ऐसी दशा में स्त्रियों को इसका मूल कारण खोज कर उचित उपाय करना चाहिए एवं खानपान सम्बन्धी सब प्रकार की स्वच्छता पर ध्यान रखना चाहिए। नित्य ठण्डे जल के स्नान और ६ माशे नागदवन के सेवन से शरीर की दुर्गन्ध दूर हो जाती है। लुई कोहनी का वाष्प-स्नान (Steam bath) भी उत्तम होगा।

ख़ून की ख़राबी

त्वचा सम्बन्धी रोगों के उत्पन्न होने से त्वचा बिगड़ कर अन्त में कान्ति पर भी अपना प्रभाव डालती है। त्वचा के रोग प्रायः रक्त-विकार से ही उत्पन्न हुआ करते हैं। अतः त्वचा की सुन्दरता चाहने वाली स्त्रियों को सदा ध्यान रखना चाहिए कि रक्त न बिगड़ने पाए, और फोड़ा, फुन्सी, खाज आदि न हो सकें। जिनका रक्त किसी कारण से दूषित हो गया हो, उन्हें नीम, मुण्डी बूटी अथवा किसी अन्य रक्त-शोधक औषधि का सेवन करके शीघ्र उपचार करना चाहिए। किसी भी दोष को बढ़ने का अवसर देना बड़ी भूल है। प्राणायाम की क्रिया रक्त-शोधन के लिए मुख्य साधन है।

चेचक से भी त्वचा बिगड़ जाती है। प्रथम तो यदि आचार, व्यवहार, खान-पान और रहन-सहन में पूरी-पूरी सफ़ाई का ध्यान रक्खा जावे तो चेचक जैसे रोग ही न हों; किन्तु एक बार इस भयङ्कर रोग के हो जाने पर त्वचा निस्सन्देह बड़ी भद्दी हो जाती है। इसका उपाय यह है कि चेचक के मिट जाने पर जब दाने सूख जायँ तो रोगी के शरीर पर जैतून के तैल की मालिश करना चाहिए और उसे नियम से नित्य स्नान कराना चाहिए। इससे प्रायः चेचक के दाग़ जाते रहते हैं और नई त्वचा आ जाती है। अनार का छिलका महीन पीस कर लगातार कई मास तक लगाते रहने से भी चेचक के दाग़ मिट जाते हैं।

उपचार

'Wet-sheet Pack' अर्थात् 'भीगी चादर का बन्धन' भी एक अपूर्व प्रयोग है। त्वचा की बीमारियों के लिए यह बहुत ही सुगम और सस्ता उपाय है। महात्मा गाँधी ने इसकी बड़ी प्रशंसा की है। प्रयोग इस प्रकार है:—

खुली हवा में एक लम्बी मेज़ अथवा तख़्त पर चादर या हवा के अनुसार न्यूनाधिक कम्बल लटकते हुए बिछा दें। इन पर दो मोटी और साफ़ चादरें ठण्डे पानी में पूरी तरह भिगो कर लटकती हुई बिछावें। मस्तक की ओर कम्बलों के नीचे एक तकिया रख लें। बिल्कुल नङ्गा होकर (चाहें तो एक छोटा सा रूमाल कमर में पहन लें, किन्तु नङ्गा लेटना ही अधिक उत्तम होगा) चादरों पर चित लेट जायँ, फिर चादरों और कम्बलों को एक-एक करके दोनों ओर से शरीर पर लपटवा ले। धूप हो तो मुँह और मस्तक पर भीगा रूमाल लपेट लें, किन्तु नाक हर हालत में खुली रहे। पहले तो थोड़ी देर कँप-कँपी सी लगेगी, फिर आराम मालूम होगा और शरीर को भली मालूम होने वाली गरमी लगेगी। इस स्थिति में ५ मिनट से १ घण्टा या इससे भी अधिक देर तक रहा जा सकता है। अन्त में पसीना बह निकलता है, प्रायः इस दशा में नींद भी आ जाती है। चादर से बाहर निकलने पर पानी से नहाना चाहिए। खुजली, दाद, सेहुँआ, अन्हौरी, चेचक, साधारण फोड़े आदि पर चादर का यह बन्धन बहुत ही गुण करता है। चेचक की बीमारी कितनी ही भयङ्कर क्यों न हो, इस उपचार से बहुत कुछ नष्ट हो सकती है। शरीर पर चट्टे पड़ गए हों तो एक या दो बार इस प्रयोग के करने से मिट जाते हैं। इसकी उपयोगिता स्वयं अनुभव करके जानी जा

सकती है। इस बन्धन से त्वचा का बहुत सा मैल चादर में लिपट जाता है, अतः एक बार काम में लाई हुई चादर खौलते पानी में ख़ूब धोए बिना किसी काम में न लाना चाहिए। जो व्यक्ति पानी, हवा, ख़ुराक आदि के नियमों की उपेक्षा करके केवल इन उपचारों का ही सहारा लेगा, उसे लाभ या तो बहुत कम होगा या बिल्कुल ही न होगा। यदि किसी रोग विशेष को हटाने के लिए उक्त चादर का बन्धन अथवा कोई अन्य उपचार शुरू किया जाय, किन्तु साथ ही अभक्ष्य एवं हानिकर पदार्थों का उपयोग किया जाय, गन्दी हवा में निवास किया जाय, गन्दगी और दुखद परदे में पड़े-पड़े सड़ा जाय, शारीरिक व्यायामादि भी न किया जाय तो केवल उपचार मात्र से क्या हो सकता है?

व्यायाम

ठण्डे जल का स्नान, फ़व्वारे का स्नान, धार के नीचे स्नान, नदी में तैरना आदि त्वचा के व्यायाम हैं, इनसे त्वचा सुन्दर, कान्तिमयी होती है और आरोग्यता की वृद्धि होती है। तैरने से सभी अवयवों का व्यायाम हो जाता है। अर्थात् सीना पुष्ट, विस्तीर्ण; फेफड़े शुद्ध और बलवान; शरीर नीरोग, फुर्तीला, सुदृढ़, उत्साही एवं शक्तिशाली होता है।

भोजन

भोजन का प्रभाव भी शरीर की कान्ति पर गहरा पड़ता है। स्वास्थ्य और सौन्दर्य दोनों के लिए सादा भोजन अदल-बदल कर ख़ूब पका कर खाना श्रेयस्कर है। ताज़े स्वादिष्ट और मीठे फलों का रस रङ्गत को निखारता है और चेहरे पर सुर्ख़ी लाता है। सेब का प्रभाव सीधा यकृति (जिगर) पर पड़ता है। उससे पाचन शक्ति में वृद्धि होती है और इस प्रकार शरीर की कान्ति भी निखरती है। सेब भून कर एवं कच्चे भी खाए जा सकते हैं। एक पुरानी कहावत है कि यदि सवेरे फल खाए तो सोना; तीसरे पहर खाए तो चाँदी; और शाम को खाए तो सीसा के समान है। रात को सोने से पहले पके फलों का सेवन भी उत्तम प्रमाणित हुआ है। प्रत्येक स्त्री को सोने से प्रथम एक सेब अथवा नारङ्गी खा लेने की आदत डाल लेनी चाहिए। एक गाँठ प्याज़ की खाना भी स्वास्थ्य के लिए यही असर रखता है और सौन्दर्य-वृद्धि के लिए उपयोगी है। दूध का प्रयोग रङ्गत निखारने के लिए अत्यन्तोपयोगी सिद्ध हुआ है। विशेषकर धारोष्ण दुग्ध की महत्ता बड़ी विचित्र है। तरकीब यह है। एक पात्र पर स्वच्छ कपड़ा रख कर उसी पर चीनी अथवा मिश्री रख दी जाय। फिर उसी पर दुग्ध दुहा जाय। चीनी घुल कर दूध में मिलती जायगी। यही धारोष्ण दुग्ध है। दुहने के बाद तुरन्त गरमागरम पी लेना चाहिए। जहाँ तक हो सके उसमें हवा न लगने दी जावे। इसके पीने से बल की वृद्धि होती है और रङ्गत ख़ूब निखरती है, हकीम बूअलीसेना दूध में चने भिगो कर खाना एवं अङ्गूर का सेवन उपयोगी बताते हैं। इससे रक्त उत्पन्न होकर त्वचा की ओर आता है और कान्ति मनोरम प्रतीत होने लगती है। हरी तरकारियों का सेवन भी उत्तम है, किन्तु भारी और गरिष्ठ पदार्थ अधिक नहीं खाने चाहिए। साग-भाजी में पालक और बथुआ सर्वोत्तम हैं। जौ, कचनार, करेला, कसेरू, परवल, लौकी आदि का सेवन रक्त-विकार को दूर कर उसे शुद्ध करता है और इस प्रकार शरीर की रङ्गत निखारने में सहायक है। ब्राह्मी बूटी भी रङ्गत निखारती है। मादक द्रव्य, चाय-क़हवा की अधिकता, मिठाई और चटपटे मसालेदार पदार्थों का अधिक सेवन, खटाई, अचार और तैल के पदार्थों की भरमार, लाल मिर्च, मैदा की चीज़ें; गरिष्ठ पदार्थों का अधिक भोजन; मांस-भक्षण आदि-आदि ऐसी चीज़ें हैं, जो कालान्तर में रक्त को दूषित कर रङ्गत को भी बिगाड़ देती हैं। अतः इनकी अधिकता से बचना चाहिए।

अन्य दोष

उदर, आमाशय एवं यकृत (जिगर) आदि के विकार और मासिकधर्म की अनियमितता को शीघ्र दूर करना चाहिए। इनसे त्वचा और कान्ति पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। रङ्गत फीकी पड़ जाती है। जिन्हें बैठने का काम अधिक रहता है, उन्हें प्रायः भोजन नहीं पचता और जो भोजन कर तुरन्त काम में लग जाते हैं उनका भी स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। अतः दिन में भोजनोपरान्त थोड़ी देर आराम कर लेना चाहिए और रात्रि में भोजन के बाद कम से कम १०० क़दम टहलना चाहिए। इससे भोजन का परिपाक भली प्रकार हो जाता है और नींद अच्छी आती है।

कालापन

प्रचण्ड धूप एवं अग्नि-ताप से शरीर को बचाना भी शरीर की कान्ति स्थिर रखने के लिए आवश्यक है। अन्यथा रङ्गत में कालापन आ जाता है। यदि कालापन प्रचण्ड धूप के कारण हो तो मोमरोग़न मलना चाहिए। रक्त की कमी से भी रङ्गत फीकी पड़ जाती है। यह शिकायत बहुधा स्त्रियों और विशेषतया नई उमर की कन्याओं को हो जाती है, ऐसी दशा में तङ्ग मकानों और कोठरियों में बैठा रहना बहुत बुरा है। शुद्ध वायु और खुली हवा का रहन-सहन तथा सायं-प्रातः फुलवाड़ी, पुष्पोद्यान मनोरम स्थानों में टहलना लाभदायक है। जिन्हें यह सुभीता न हो, उन्हें घर के दोमञ्ज़िले तिमञ्ज़िले पर ही अधिकतर रहना चाहिए। पर्वतों पर रहने से एक ही मास में त्वचा की कालिमा कम हो जाती है।

साधारण साधन

रात्रि में कमरे के सभी द्वार बन्द करके न सोओ, और न अधिक प्रचण्ड वायु ही में सोओ। सरदी हो चाहे गरमी शुद्ध एवं ताज़ी स्वच्छ वायु को कभी न रोकना चाहिए। गन्दी जगहों पर मत बैठो। सफ़ाई का सर्वोपरि ध्यान रक्खो। रात-दिन क्रोध एवं शोक, सन्ताप ही में न घुलो। सोने के कमरे में गैस मत जलाओ, क्योंकि लैम्प बुझ जाने पर बड़ी विकट दुर्गन्ध निकलती है, जो स्वास्थ्य के लिए विष है। मुँह ढाँप कर कभी मत सोओ। रहने के मकान में नित्य हवन करो। प्रत्येक समय कपड़े लपेटे रहना भी ठीक नहीं, जैसा कि प्रायः स्त्रियाँ किया करती हैं। कुछ देर एक हल्की चादर या धोती पहन कर शरीर में हवा भी लगने दिया करो। कपड़े जहाँ तक हो सके, हलके ही पहने जायँ। शोक और भय अधिक करने से रक्त का बहाव रुक कर शरीर पर पीलापन दौड़ जाता है। पसीना रुकने से भी रङ्गत में कालापन आ जाता है। क्रोधातुर होने से एकदम शरीर पर लाली बढ़ कर तनाव उत्पन्न होता है और इस प्रकार त्वचा में भद्दापन आ जाता है। रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं। ईर्ष्या, डाह, असत्य भाषण, शोक, सन्ताप और चिन्ता आदि से शरीर की कान्ति निस्तेज हो जाती है। कभी-कभी थोड़ी देर के लिए धूप में बैठ कर पसीना लेना भी गुण करता है, किन्तु प्रचण्ड सूर्य-ताप से सुन्दर गोरे रङ्ग के शौक़ीनों को बचना ही चाहिए। यदि शरीर को ठिठुरने से बचाया जाय तो सर्दी भी त्वचा पर अच्छा प्रभाव डालती है। यही कारण है कि शीत ऋतु में सायं-प्रातः सैर करने वालों का मुखमण्डल प्रायः चमकने लगता है।

साधन

बहुत थोड़ा सोना, अत्यधिक सोना, तङ्ग मकानों में सोना, शोक एवं भयातुर रहना, क्रोध, ईर्ष्या, मैलापन, निराशा, चिन्ता, मल-मूत्र, छींक, उबकाई, वमन आदि के वेग को रोकना, बहुमैथुन, विषय-वासनाओं का आधिक्य, मद्यपान, चरस, अफ़ीम आदि का सेवन, संयोग-विरुद्ध पदार्थों का मिला कर खाना, मांस-भक्षण, सड़ी हुई बासी चीज़ों का आहार, दुष्ट स्वभाव आदि-आदि ऐसी बातें हैं, जिनसे आरोग्यता नष्ट होकर सौन्दर्य एवं कान्ति भी लुप्त हो जाती है। प्रसन्न-चित्त रहना, साधारण शारीरिक परिश्रम, हर्ष, धार्मिक स्वाध्याय, मनोहर सुरीले गानों का सुनना एवं स्वयं भी सङ्गीतकला का अभ्यास करना, पवित्राचरण एवं शुद्ध हृदय वाले मित्र-मित्राणियों से पवित्र हँसी-दिल्लगी करना, हँसमुख और प्रसन्नचित्त सहेलियों का सहवास आदि-आदि बातें, जिनसे अन्तःकरण को हर्ष प्राप्त हो, शरीर की कान्ति निखारने के लिए अत्यन्तोपयोगी साधन हैं। यदि इन समस्त उपायों पर समुचित ध्यान दिया जाय, बढ़िया उबटन लगाए जायँ, जल-वायु आदि का पूरा-पूरा सदुपयोग किया जाय, और रङ्गत निखारने वाले पदार्थों और औषधियों का सेवन किया जाय तो निस्सन्देह रङ्गत में बड़ा परिवर्तन किया जा सकता है।

शिशु-रक्षा

गर्भिणी स्त्रियों के मिट्टी खाने आदि अनेक कुव्यवहारों से सन्तान की रङ्गत पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। अतः यदि सन्तान को सुन्दरता की मूर्ति बनाना हो, तो गर्भावस्था में उचित आहार-विहार से रहने का दृढ़ व्रत धारण करना चाहिए। ४-५ मास तक नवजात बच्चे के शरीर में कड़वे तैल की मालिश कर ऊपर से आटे की लोई फिरा, किञ्चित गरम जल से नित्य नहला देना चाहिए और किसी सूखे, साफ़ एवं नरम कपड़े से बच्चे का शरीर अच्छी तरह पोंछ देना

चाहिए। इससे बच्चे के शरीर में बल आता है और बड़े होने पर उसकी त्वचा नहीं सड़ती, पसीने में बू नहीं आती, और न त्वचा के रोगों का ही भय रहता है। उसके बाद भी बच्चे को सदा नित्यप्रति ऋतु के अनुसार ठण्डे या गरम जल से नहलाते रहना चाहिए। इन नियमों की अवहेलना करने से बच्चों के शरीर में त्वचा सम्बन्धी अनेक रोग यथा—पामा, विचर्चिका, खुजली, सेहुँआ, अपरस, बनरफ़ आदि उत्पन्न हो जाते हैं। उस दशा में माताओं को सफ़ाई का विशेष ध्यान रखते हुए इस लेप का प्रयोग करना चाहिए—घर का धुँआ जो छप्पर आदि में लग जाता है, हल्दी, कूट, राई, इन्द्रजौ, समभाग लेकर गाय के मट्ठे में पीस कर बालक के उस अङ्ग पर लेप करें, जहाँ रोग हो। वर्षा ऋतु में बालकों को फुन्सियाँ, गुमड़ी व दाने आदि उत्पन्न हो जाते हैं। उसका उपाय यह है—मसूर के छिलके और आँवला जला कर राख कर ले। मेंहदी के पत्ते साया में सुखा कर तथा कबीला को कूट-पीस कर कपड़छान चूर्ण करे। इन चारों औषधियों को एक-एक तोला ले। भुना हुआ तूतिया ३ माशे, कपूर डेढ़ माशे सबको कड़वे तेल में मिला कर खरल में ख़ूब घोटे। जब मरहम की भाँति बन जाय, तब डिब्बी में भर कर रख ले। इसे बालकों के शरीर पर लगाने से शीघ्र सब शिकायतें जाती रहती हैं।

यदि बच्चों को धीरे-धीरे ताज़े फल और मेवे आदि ही अधिकतर खाने की आदत डाल दी जाय, तो शरीर में शुद्ध रक्त उत्पन्न होता जायगा। बच्चे तेजस्वी एवं बलिष्ठ भी होते जायँगे। जो माताएँ बच्चों को दाँत निकलने से प्रथम या दाँत निकलते ही दाल, भात और शाकादि देने लगती हैं, वे निस्सन्देह उनके लिए काँटे बोती हैं। बच्चों को चाय, कॉफ़ी आदि तो भूल कर भी न देना चाहिए।

[श्रीमती रञ्जनादेवी जी]

लड्डू-चूरमा

गेहूँ का आटा १ सेर, घी डेढ़ सेर और खाँड़ सेर भर लेकर पहले आटे को आध सेर घी में गूँध ले। इसके बाद मोटी-मोटी पूरियाँ घी में तल कर हाथों से ख़ूब मल ले और छींटे से छान कर खाँड़ देकर लड्डू बाँध ले।

* * *

लड्डू-मलाई

खोआ सेर भर, कन्द आध सेर, केवड़ा दो माशे। कन्द को खोआ में डाल कर ख़ूब मथे और गोल-गोल बना कर पिस्ते के वरक़ उस पर लगावे, फिर पाव भर कन्द ऊपर से सब लड्डुओं में लपेट दे।

* * *

जीरे का पानी

पानी पाँच सेर, अमचूर पाव भर, सियाह-सफ़ेद ज़ीरा छः माशे, काली मिर्च आठ माशे, नमक छः तोले, हींग चार रत्ती, कचरी छः माशे। इन सब वस्तुओं को जुदा-जुदा ख़ूब बारीक पीसे और उसी पाँच सेर पानी में मिला कर बारीक कपड़े से छान ले। यह पानी बहुत हाज़मा है। खाना खाने के बाद यदि थोड़ा सा इसे पी लिया जाय तो खाना बहुत जल्द हज़्म हो जायगा।

घेवर

साफ़ और बारीक मैदा सेर भर लेकर उसमें सेर भर पानी दो-तीन मरतबा दे-देकर ख़ूब मथे। जब डोरे की तरह उसमें तार उठने लगें तब छोड़ दे। उसके बाद छोटा सा तवा जो गहरा न हो, चढ़ावे और उसमें घी डाल दे। जब घी ख़ूब गर्म हो जाय तो तीन-चार चमचा मैदा कई मरतबा करके तवे के बीच में ऊँचे से डाले। इसके बाद थोड़ा सा घी तावा हुआ ऊपर से दे। जब घेवर ऊपर आ जाय तो लोहे की सींक से उठा ले। फिर डेढ़ सेर कच्ची खाँड की एक तारा चाशनी बना कर ख़ूब घोंटे। जब किसी क़दर गाढ़ी हो जाय तो इन घेवरों को उसमें डुबो कर लकड़ियों पर रखता जाय।

* * *

मोती पाक

दो सेर कन्द लेकर उसकी एक तार की चाशनी तैयार करके नीचे उतार ले और पाव भर बेसन की बुँदिया बारीक पौने में दो सेर घी में पका कर चाशनी में डाले, केवड़ा देकर थाल में जमावे और लौजें तराशे।

* * *

लुचुई

पाँच सेर मैदा गूँध कर लोइयाँ तोड़ कर आठ गिरह चौड़े चकले पर बेल कर घी में छोड़े, जितनी पतली बेली जावेंगी उतनी ही अच्छी होंगी।

[सम्पादक तथा स्वरकार—श्री०
किरणकुमार मुखोपाध्याय
(नीलू बाबू)]

कजरी

(ताल कहरवा, मात्रा ४)

[शब्दकार—'रसीले']

स्थायी—छाई भादों की अँधियारी बदरा उमड़ि-घुमड़ि घहराय।

अन्तरा—दादुर मोर पपीहा बोले तनिको नाहिं सुहाय॥

विविध बयार डोलि थहरावत लेत करेजवा खाय।

कहत 'रसीले' श्याम सुन्दर की सुधि आए जिया जाय॥

स्थायी

नी	स	रे	—	रे	प	म	प	ग	म	ग	रे	स	रे	नी	—
०														०	
छा	आ	ई	—	भा	आ	दों	ओं	की	ई	अँ	धि	या	आ	री	—
नी	स	रे	—	स	ग	ग	म	ग	र	स	नी	स	—	—	—
०											०				
ब	द	रा	—	उ	म	ड़ि	घु	म	ड़ि	घ	ह	रा	—	—	य

अन्तरा

स	—	स	स	रे	—	ग	ग	म	—	म	—	ग	रे	ग	—
दा	—	दु	र	मो	—	र	प	पी	—	हा	—	बो	ओ	ले	—

म ध ध — ध — प ध म — प म ग रे —
त नि को — ना — हिं सु हा — य छा आ ई —
रे प म प ग म ग रे स रे नी — नी स रे —
भा आ दों ओं की ई अँ धि या आ री — ब द रा —
स ग ग म ग रे स नी स — — —
उ म ड़ि घु म ड़ि घ हे रा — — य

(४४६ पृष्ठ का शेषांश)

खुला था। ऊपर की मञ्ज़िल पर मूलकुँअर और उसकी माँ बैठी थीं। गोपीनाथ नीचे बैठक में थे।

गली में खड़ा होकर रामेश्वर ने ललकारा—अबे ओ गोपीनाथ! पाजी, तूने मेरी जोरू को छिपा रक्खा है, उसे ज़बरदस्ती छीनने आया हूँ।

मूलकुँअर ने झाँक कर देखा और वहीं से बोली कि मेरी लाश को ले जाना, यों तो मुझको पा नहीं सकते।

गोपीनाथ—सुना, क्या कहती है? तुझ जैसे बदमाश जुआरी के साथ मैं अपनी लड़की को न भेजूँगा। मेरे जानते वह बेवा हो गई।

रामेश्वर—अबे, तेरी जोरू को मैं बेवा कर दूँगा। तू है किस घमण्ड में?

गोपीनाथ ने बैठक का दरवाज़ा बन्द कर दिया और आप अन्दर चले गए। रामेश्वर ने गुण्डों को ललकारा कि देखते क्या हो, तोड़ो दरवाज़ा! दरवाज़े पर लट्ठ पड़ने लगे।

गोपीनाथ ऊपर बेटी के पास जा रहे थे, मगर वह दरवाज़ा तोड़ने से इतना डरी कि ऊपर की छत पर भाग गई। गोपीनाथ भी पीछे दौड़े और बच्चे को लेकर फूलकुँअर भी उनके साथ ही गई।

सबसे पहले मूलकुँअर ऊपर पहुँची और झाँक कर देखा तो दरवाज़ा टूट चुका था। रामेश्वर के गुण्डे भीतर घुस रहे थे। वह घबरा कर ऊपर से नीचे कूद पड़ी। बेटी के पीछे गोपीनाथ भी कूदे और फिर बिना कुछ सोचे-समझे फूलकुँअर भी बच्चे को लिए कूद पड़ी। उस समय सोचने-समझने की फ़ुर्सत ही कहाँ थी?

रामेश्वर ने इतना नहीं समझा था। उसने गली में झाँक कर देखा तो सारा ख़ान्दान मरा पड़ा दिखाई दिया। फ़ौरन ही वह अपने गुण्डों को लेकर भागा।

गोपीनाथ के नौकरों ने सब लाशों को उठा कर अस्पताल पहुँचाया। डॉक्टर साहब ने कहा कि बच्चा तो मर गया है, मगर और सबका इलाज होगा। पन्द्रह-बीस दिन के इलाज के बाद और सब तो अच्छे हुए, सिर्फ़ फूलकुँअर का एक पैर काट देना पड़ा।

पाठकगण चाहेंगे कि रामेश्वर को सज़ा दी जाय, क्योंकि वह सारे घर पर ऐसी तबाही लाया। अपने बच्चे की जान ली। सास को अपाहिज बनाया। स्त्री और ससुर को मुद्दत तक खाट पर पड़ा रक्खा। मगर क़ानून की औंधी खोपड़ी है। गिरफ़्तार कौन हुआ कि जो लोग छत से कूदे थे। फिर उन पर अदालत में मामला चलाया गया।

कैसी उलटी बात है! जिसने मकान पर डाका डाला वह तो मूँछों पर ताव देता फिरे और जिसके घर डाका पड़ा वह गिरफ़्तार हो!! क्या अन्धेर है!!!

जज साहब ने मूलकुँअर और गोपीनाथ को बरी कर दिया, किन्तु फूलकुँअर को—जिसका एक अङ्ग ही जाता रहा था—जन्म-क़ैद की सज़ा मिली, क्योंकि वह बच्चे को लेकर छत से कूदी थी और बच्चा मर गया था। उस पर क़त्ल का इलज़ाम लगाया गया था। सज़ा होना ज़रूरी था।

वाह, क्या इन्साफ़ है!!

इन्साफ़

[श्री० पीकदान अली]

पण्डित गोपीनाथ की इकलौती पुत्री मूलकुँअर उनकी बड़ी लाडली थी। पण्डित जी स्त्री-शिक्षा के पक्षपाती थे, परन्तु ज़्यादा शिक्षा देने के नहीं। उनकी राय थी कि लड़की को इन्ट्रेन्स तक पढ़ाने में कोई हर्ज नहीं, लेकिन उसके बाद किसी लड़की को न पढ़ाना चाहिए। मूलकुँअर तेज़ लड़की थी और उसने १५ ही वर्ष की अवस्था में इन्ट्रेन्स पास कर लिया।

पण्डित जी का विचार था कि उसका विवाह १७-१८ वर्ष की अवस्था में करेंगे, दोस्तों ने कहा कि थोड़ा और पढ़ लेने दो, पर गोपीनाथ न माने। वह यह कहते कि इन दो-तीन सालों में वह घर के कामों में निपुण हो जायगी और आदर्श गृहिणी होगी।

गोपीनाथ की स्त्री फूलकुमारी अपने घर का काम ख़ुद ही करती थीं। परमेश्वर ने इतना पैसा दिया था कि एक नहीं, चार महराजिनें रख लें, किन्तु उन्हें स्वयं ही भोजन बनाना पसन्द था। मूला भी साथ-साथ काम करती थी। मगर घर का काम तो चौबीस घण्टे होता नहीं—कुछ देर सीने-पिरोने में ख़र्च करती, बाक़ी समय में सस्ते अङ्गरेज़ी उपन्यास मँगा कर पढ़ा करती थी।

गोपीनाथ ज़मींदार आदमी थे, ६ महीने देहात में रहते, ६ महीने बनारस में। देहात में पत्नी और पुत्री को नहीं ले जाया करते थे। जब वे देहात में रहते तब मूला का जी और भी उचाट होता, क्योंकि कभी-कभी घर से बाहर जाना भी बन्द हो जाता था।

इस दफ़े जब गोपीनाथ देहात से वापस आए तो फूलकुमारी ने मूला के ब्याह की चर्चा उठाई और उनके पीछे पड़ गईं। गोपीनाथ भी राज़ी हो गए और दोस्तों से सलाह करने का वादा किया।

मिलने पर पण्डित जी ने दोस्तों से यह बात कही। एक ने कहा—मैं तो साल भर से कह रहा हूँ कि या तो लड़की को आगे पढ़ाओ या ब्याह दो। बेकार वक़्त क्यों ज़ाया कर रहे हो?

दूसरा—नहीं, अभी तक तो वह शादी करने क़ाबिल न थी। अब १७ वर्ष की है। यही उम्र ठीक है।

गोपी—अच्छा, कोई लड़का तो बतलाओ। है कोई नज़र में?

एक—मैं तो समझता हूँ, रामेश्वरनाथ गायघाट वाला ख़ासा अच्छा है। बी० ए० में पढ़ता है। कोई ख़ास बुराई भी नहीं है।

दूसरा—हाँ, खाने-पहनने की भी कमी नहीं है। घर में माँ-बेटे दो ही हैं। यों तो सब ठीक है।

गोपी—सुना तो मैंने भी उसके ख़िलाफ़ कभी कुछ नहीं। लड़का भी तमीज़दार मालूम होता है। फिर भी सोच-समझ लो। मेरी लाडली बेटी को तकलीफ़ न हो। बुढ़िया का मिज़ाज कैसा है?

एक—वह तो बेचारी देवी है देवी!

दूसरा—बस, तो फिर ठीक है। हमारी मूला पढ़ी-लिखी है। उससे सास की जूतियाँ कब खाई जावेंगी?

* * *

रामेश्वरनाथ ने अपनी माँ से कहा—माँ, मेरा बी० ए० का नतीजा निकल गया। मैं पास हो गया, अब वकालत पढ़ूँगा।

विधवा माता बहुत ख़ुश हुई। बोली—परमेश्वर तुम्हें ख़ुश रक्खे। और बड़े-बड़े इम्तिहान पास करो, फलो-फूलो।

रामेश्वर—अच्छा, अम्मा मुँह मीठा करो तो ज़रा घूमने जाऊँगा।

माँ—मुँह मीठा सौ दफ़े करूँगी, मगर बेटा, देखो, कहीं बुरी लत न लगा लेना।

रामेश्वर—तुम तो रोज़ यही नाक में दम किए

रहती हो। थोड़ी देर दिल बहलाता हूँ, दो-चार रुपए हार गया तो हर्ज क्या है?

माता चुप हो गई। उसने देखा कि रामेश्वर को जुए का शौक़ हो रहा है, मगर मुहब्बत के मारे कुछ कहती भी न थी। उसे डर था कि कहीं दो-चार रुपयों से दो-चार सौ की नौबत न आ जाय और रहे-सहे ज़ेवर भी हाथ से निकल जायँ।

माँ—सुन तो बेटा, तेरी कुण्डली गोपीनाथ माँग रहे हैं। आज पुरोहित जी कहते थे।

रामेश्वर—फिर तुमने क्या कहा?

माँ—कहती क्या? यही कहा कि भई, लड़का बड़ा और समझदार है, पूछ लूँ तो दूँ।

रामेश्वर—अम्माँ, वह लड़की तो इन्ट्रेन्स पास है। उससे तुम्हारी कैसे निभेगी?

माँ—मेरी भली चलाई! मैं तो चार दिन की मेहमान हूँ। निभनी तुम्हारी चाहिए, मैं निभा लूँगी।

रामेश्वर—अच्छा अम्माँ, कल बताऊँगा।

उस रोज़ रामेश्वरनाथ जुआ खेलने नहीं गए, अपने मित्र बद्रीप्रसाद के घर पहुँचे। वहाँ दूसरे मित्र केदारनाथ भी बैठे थे। बैठते ही रामेश्वरनाथ ने कहा—आज यार यहीं बैठेंगे। कुछ सलाह करनी है।

बद्री—कहो, क्या बात है?

रामेश्वर—बात यह है कि गोपीनाथ की एक लड़की है इन्ट्रेन्स पास। वे उसे मुझसे ब्याहा चाहते हैं। तुम्हारी क्या राय है?

बद्री—यार, घर तो अच्छा है, लड़की बाप की वारिस है।

केदार—अङ्गरेज़ी पढ़ी-लिखी है। वह तुम्हारी माँ का अनादर करेगी।

बद्री—नहीं, यह फ़िज़ूल बात है, अङ्गरेज़ी पढ़ कर क्या लड़कियाँ पागल हो जाती हैं?

रामेश्वर—ख़ैर, अनादर तो नहीं करने पावेगी, मगर अङ्गरेज़ी पढ़ी लड़कियों से मुझे भी कुछ चिढ़ सी है।

बद्री—तुम कर भी लो, सीधा कर सकते हो। मर्द में दम हो तो क्या औरत चूँ कर सकती है?

२

रामेश्वर का ब्याह हो गया। आते ही मूलकुँअर ने सास की ऐसी ख़ातिर की कि वे पुत्रवधू पर लट्टू हो गईं। पहले ही दफ़े उसने भोजन बनाने का भार अपने ऊपर लिया और मना करने पर भी न मानी। पतिदेव को भी वह तरह-तरह के भोजन बना कर खिलाती और हर तरह से उन्हें ख़ुश रखने की कोशिश करती थी। मगर वह उन लड़कियों में न थी, जो किसी बात में अपनी राय देतीं ही नहीं। इसीसे रामेश्वर उससे नाराज़ रहा करता था।

एक दिन बद्रीनाथ और केदारनाथ बैठे यही चर्चा कर रहे थे। बद्री ने पूछा—कहो भाई रामेश्वर, इन्ट्रेन्स पास जोरू कैसी निकली? तुम्हारी माँ से निभी या नहीं?

रामेश्वर—जी हाँ, उनसे तो ख़ूब निभी, मगर मेरे नाक में दम रहता है। जब देखो तभी मुझसे जवाब तलब होता रहता है—यह कौन तुम्हारे पास आया था, कहाँ गए थे, क्यों देर से लौटे, आदि। जैसे मैं बच्चा होऊँ और वह मेरी बड़ी अम्माँ!

केदार—मेरी जोरू ऐसा करे तो न मालूम क्या कर डालूँ। जोरू को इस बात से क्या मतलब कि हम कहाँ जाते हैं, क्या करते हैं?

रामेश्वर—मैं पहले ही कहता था कि अङ्गरेज़ी पढ़ी औरत मुझे पसन्द नहीं। कितना क़ानून छाँटती है!

बद्री—भई, बुरा न मानो तो कहूँ। जोरू के ऐसे प्रश्नों में बुरा मानने की क्या बात है? तुमसे न पूछे तो पूछे किससे? क्या तुम यह चाहते हो कि हाथ बाँधे हरदम खड़ी रहे। क्या वह नौकरों से भी गई-बीती है?

रामेश्वर—चलिए, चलिए, अपनी शिक्षा रहने दीजिए। मैं कई दफ़े मना कर चुका हूँ कि मुझसे ऐसी बातें मत पूछा करो, वरना बुरा होगा; मगर मानती ही नहीं। अच्छा अब जाता हूँ, नहीं फिर वैसे सवाल होंगे और मुझे ग़ुस्सा आ जावेगा।

केदार—आज खेलने न चलोगे?

रामेश्वर—आज पैसा तो है नहीं, माँ से कुछ वसूल नहीं कर सका। अच्छा, जय राम जी की।

* * *

मूलकुँअर और उसकी सास बैठी रामेश्वर का रास्ता देख रही थीं। मूलकुँअर ने सास से कहा—अम्माँ, तुम खा लो, सवेरे से भूखी बैठी हो। वे तो देर से आवेंगे।

सास—बेटी, अभी और ठहर कर खाऊँगी। तू बच्चे को खिला-पिला कर सुला दे।

मूल—उसे तो मैंने सुला दिया।

सास—क्या बताऊँ, इसकी तो जुए की ऐसी बुरी आदत पड़ गई है कि घर का सत्यानास कर डाला। सच कहती हूँ, अब बस मेरे पास मोती की बालियाँ रह गई हैं, वह भी माँग रहा है।

मूल—अम्माँ, मैं समझाती हूँ तो बुरा मानते हैं। मार-पीट भी कई दफ़े चुके हैं। कहते हैं—तुमसे क्या, मैं जो करता हूँ, तुम बोलने वाली कौन होती हो?

सास—परसों मुझे कैसा दुःख हुआ जब रसोई-घर में उसने तुझे लात मारी थी। मैं घण्टों रोती रही। मेरी ही वजह से तुझे इतना दुःख भोगना पड़ रहा है।

मूल—तुम्हारी वजह क्या है अम्माँ? यह तो मेरे नसीब की बात है।

सास—हुआ क्या था जो इसने महरी के सामने तुझसे ऐसा बर्ताव किया?

मूल—क्या बताऊँ अम्माँ! कुछ दोस्त आ गए थे। मुझसे बोले कि पकौड़ियाँ बनाओ। घर में बेसन था। मैंने सान कर झट पकौड़ियाँ बना लीं। इतने में आए। बोले—बन गईं? मैंने कहा—हाँ, ले जाओ। बोले—यह तो नमकीन हैं। तुम्हें इतनी अक़ल न आई कि मीठी भी होनी चाहिएँ? मैंने कहा—दोपहर का वक्त है, लोग अक्सर नमकीन पकौड़ियाँ खाते हैं, इसी से नमकीन बना लीं। इसी पर क्रोध में आकर बोले—अरी गधी, बिना मीठी पकौड़ी के नमकीन किसी को दूँ तो क्या वह मेरे मुँह पर थूकेगा? अभी मीठी बना। मैंने कहा—बेसन तो है नहीं, बाज़ार से मँगा कर ज़रा देर में बनाती हूँ। फिर क्या था, रसोई में घुस आए, घी की कढ़ाई उलट दी, मुझे लात मारी। मैं जलती कढ़ाई पर गिरी तो हाथ जल गया। मैंने तुमसे बतलाया नहीं कि नाहक़ क्यों तकलीफ़ दूँ। आज बात चली तो कहती हूँ। तुम उनसे कुछ न कहना अम्माँ!

सास—उफ़, बेटी! पत्थर पड़े ऐसे पढ़ने-लिखने पर। कहते थे अङ्गरेज़ी पढ़ी औरत से सास की नहीं निभ सकेगी, मैं तो अब ख़ुद इन्हीं का हाल बेहाल देखती हूँ। गँवार भी तो ऐसी हरकत नहीं करते।

मूल—अम्माँ, अब तुमसे क्या-क्या बात कहूँ? ज़रा-ज़रा सी बात पर फाड़ खाते हैं। थप्पड़-घूँसा तो रोज़ ही खाती हूँ। हरदम धमकी देते रहते हैं कि घर से निकाल दूँगा।

सास—तो किसी का क्या बिगाड़ लेंगे? तेरा बाप जीता रहे, फिर तुझे किस बात की कमी है? मैं भी प्राग-राज चली जाऊँगी, फिर अकेले बैठ कर झखेंगे।

मूल—नहीं अम्माँ, वह तो मुझे धमकाते हैं कि बद-नाम कर दूँगा।

दोनों सास-बहू इसी तरह बात करती और आँसू पोंछती जाती थीं कि रामेश्वरनाथ आ गए।

रामेश्वर—क्या बात है? क्यों अम्माँ को रुला रही है?

माँ—वह क्यों रुलाएगी, रुलाती तो तुम्हारी हरकतें हैं। तुम्हें मालूम भी है कि तुम्हारे जुए के शौक़ ने मुझे बिलकुल कङ्गाल कर दिया?

रामेश्वर—मैंने तो तुमसे मुद्दत से कुछ लिया भी नहीं। ज़रा सी दिलचस्पी है, उसके भी पीछे पड़ी रहती हो। घर से भाग जाऊँगा तभी ठीक होगा।

माँ—सुनो जी, मेरा कलेजा बिलकुल पक गया है। मैं अब प्रागराज जाती हूँ। अगर ज़िन्दा रही तो फिर मिलूँगी, नहीं तो मेरा अन्तिम आशीर्वाद ले लो। मगर बेटा, देखो, मेरी प्यारी बहू को दुःख न देना।

रामेश्वर—अच्छा, यों कहिए कि सारे फ़सादों की जड़ आप ही हैं! न मालूम क्या-क्या शिकायतें की होंगी। मैं तो पहले ही कहता था कि अङ्गरेज़ी पढ़ कर औरत हाथ से निकल जाती है। निकल मेरे घर से हराम-ज़ादी!

माँ—ठहर, निर्दयी राक्षस! क्या करता है? रात-दिन उस बेचारी को सताता है। क्या मेरी आँखें नहीं हैं? वह तो कोई बात कहती भी नहीं।

रामेश्वर—मैं पहले ही कहता था कि कहाँ मुझे फँसाया !......उठती है कि डण्डा निकालूँ ?

मूल—जैसी आपकी मरज़ी। मुझे इक्का मँगा दीजिए। लल्लू को उठा लूँ तो जाती हूँ।

रामेश्वर—मुझे गरज़ ? निकल अभी मेरे घर से। जिस तरह तेरा जी चाहे, जा।

माँ—बेटी, मेरी भी सलाह है कि तू चली जा। ऐसे राक्षस के साथ देवी का निबाह कठिन है।

रामेश्वर—बड़ी देवी बनी है न चुड़ैल ! जा अपने बुढ़ऊ से मेरी शिकायतें कर। देखूँ वह मेरा क्या बिगाड़ लेता है ?

माँ—बेटा, तू ख़ुद पछतावेगा। ले, मैं भी जाती हूँ।

मूलकुँअर ने रोते-रोते अपने बच्चे को गोद में उठाया और रामेश्वर की माँ ने भी इसी बीच में अपनी गठरी बाँध ली, जिसमें मोती भी थे। फिर दोनों सास-बहू रोते-रोते एक ही वक़्त घर से बाहर निकलीं।

३

रामेश्वर चार-पाँच दिन घर से बाहर न निकले। कुछ झेंपे हुए से थे। माँ और जोरू के चले जाने से खाने-पीने की तकलीफ़ तो हो ही गई थी, साथ ही पैसे की भी तङ्गी थी। अभी तक अपनी तो कुछ कमाई थी नहीं। बाप की बचत पर गुज़र हो रही थी, और वह सब माँ के नाम था। उन्हें इसकी ख़बर न थी कि घर में जो कुछ था, वह सब जुए में उड़ गया। माँ ने जब हाथ रोका तो जोरू के पैसे की सफ़ाई हुई। एक-एक करके उसके भी सारे ज़ेवर ख़तम हो गए।

माता और पत्नी के जाने के बाद रामेश्वर ने घर की तलाशी ली तो कुल चार-पाँच सौ का माल निकला। उसे बेच कर रुपया घर में रक्खा ही था कि केदारनाथ आ पहुँचे।

केदार—कहो भाई, आज बड़े सुस्त हो ? क्या बात है ?

रामेश्वर—आपने जैसे कुछ सुना ही नहीं ?

केदार—तुम्हारी क़सम मुझे कुछ नहीं मालूम।

रामेश्वर—मेरी पढ़ी-लिखी जोरू ने मेरी माँ के ऐसे कान भरे कि वह मुझे छोड़ कर प्रयाग चली गई। उसके बाद वह ख़ुद भी भाग गई।

केदार—पढ़ी-लिखी औरतों से और क्या उम्मीद की जा सकती है। यह लो बद्रीप्रसाद भी आ गए। आओ भाई बद्री, आज हमारे दोस्त बड़ी मुसीबत में पड़े हैं।

बद्री—जी हाँ, मैं भी सुन कर आ रहा हूँ कि स्त्री को निकाल दिया, माँ नाराज़ होकर चली गई।

रामेश्वर—यह तो तुमने उस बुड्ढे से सुना होगा। वह ऐसा पाजी है कि उसकी बोटी-बोटी काट कर चीलों को खिला दे।

बद्री—यह तो तुम्हारी राय है। शायद उन्हें भी तुम्हारी तरफ़ से ऐसा ही ख़्याल हो !

रामेश्वर—सो तो होगा ही। उसे अब क्या ख़्याल है कि मैं भूखा मरता हूँ या मेरा क्या हाल है।

बद्री—वह तो कहते हैं कि दो साल के अन्दर मार-मार कर तुमने उनकी लड़की को अधमरी कर दिया है और अब चाहे जो कुछ हो, वे अपनी लड़की को तुम्हारे यहाँ न भेजेंगे।

रामेश्वर—अच्छा, उनकी यह मजाल ! देखो, ज़बरदस्ती लाता हूँ कि नहीं।

केदार—अरे भाई, यह बातें रहने भी दो। चलो आज मुद्दत बाद ज़रा जी बहलावें, दो-चार हाथ खेल लें।

बद्री—नहीं, अब यह बात छोड़ो। इसी जुए की बदौलत घर की ऐसी तबाही हुई।

रामेश्वर—मैं तो जान पर खेलूँगा, पहले इस नीच बूढ़े से तो फ़ैसला कर लूँ। कहो दोस्त, मदद दोगे न ?

केदार—दिल और जान से।

बद्री—लेकिन मेरी राय है कि कुछ और ठहर जाओ।

रामेश्वर—ठहरें तुम्हारे जैसे डरपोक।

* * *

तीन-चार दिन और बीत गए। रामेश्वर और केदारनाथ ने कुछ किराए के गुण्डे इकट्ठे किए और एक दिन शाम को गोपीनाथ के मकान पर जा पहुँचे। फाटक

(शेष मैटर ४४८ पृष्ठ पर देखिए)
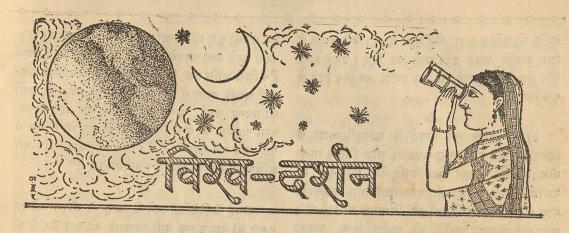
सत्याग्रह-संग्राम और महिलाएँ

वर्तमान सत्याग्रह संग्राम में भारतीय महिलाओं ने आश्चर्यजनक कार्य कर दिखाया है। किसी को आशा नहीं थी कि इस देश की स्त्रियाँ, जिनमें से अधिकांश पर्दे में रहने वाली, भीरु, अज्ञान में डूबी और कुरीतियों के चङ्गुल में फँसी हुई हैं, इस प्रकार पुरुषों से भी दो क़दम आगे बढ़ कर राजनीतिक आन्दोलन में भाग ले सकती हैं। वास्तव में इस आन्दोलन ने ग्रामों और क़स्बों की नहीं तो कम से कम शहरों की स्त्रियों की तो कायापलट कर दी है। जहाँ कि स्त्रियों को देश-सेवा के मार्ग में बन्धन माना जाता था और उनके कारण कितने ही लोग राजनीतिक कामों में भाग लेने से असमर्थता प्रकट किया करते थे, वहाँ स्वयं महिलाएँ ही अधिकांश स्थानों में आन्दोलन का सञ्चालन कर रही हैं और ख़ुशी से जेल जा रही हैं, पुलिस की लाठियाँ खा रही हैं और सब प्रकार के कष्टों का वीरतापूर्वक सामना कर रही हैं। नीचे हम डेढ़-दो महीनों में होने वाली महिलाओं की गिरफ़्तारियों और उनके वीरतापूर्ण कार्यों का संक्षिप्त विवरण देते हैं। गिरफ़्तार होने वाली अथवा देश के कार्य में अन्य प्रकार के कष्ट उठाने वाली महिलाओं की सम्पूर्ण सूची बहुत लम्बी है, और उसके विवरण से नित्य दैनिक-पत्रों के कॉलम भरे रहते हैं। पर हम यहाँ पर सार-रूप में जो विवरण देते हैं वह भी इस बात को सिद्ध करने के लिए काफ़ी है कि अब भारतीय महिलाओं में नवीन शक्ति का सञ्चार हो गया है और उनके युगों के पुराने बन्धनों के टूटने का समय पास आ पहुँचा है।

बम्बई-प्रान्त

कुछ समय पूर्व बम्बई के आज़ाद-मैदान में राष्ट्रीय जलूस पर पुलिस वालों ने आक्रमण किया था। उस अवसर पर वहाँ की महिला स्वयंसेविकाओं और अन्य देवियों ने जिस साहस और वीरता का परिचय दिया वह भारतीय इतिहास में अनुपम है। उन कोमलाङ्गी बालाओं ने पुलिस की लाठियों को अपने शरीरों पर सहा और फिर भी क़दम पीछे न रक्खा। श्रीमती कृष्णकुमारी सर देसाई, जिनकी आयु केवल सोलह वर्ष की है, राष्ट्रीय झण्डा लिए हुए थीं। उनके ऊपर चार बार लाठियों से आक्रमण किया गया, पर उन्होंने झण्डे को न छोड़ा। एक सार्जेण्ट ने उनसे कहा—"झण्डा दे दो और यहाँ से हट जाओ।" वीर बाला ने उत्तर दिया—"मृत्यु से पूर्व यह असम्भव है।" वह धक्का देकर ज़मीन पर गिरा दी गईं, पर उसी समय उठ खड़ी हुईं। इसी प्रकार उनको चार बार गिराया गया और तब वह बेहोश हो गईं। जब उनकी आँखें खुलीं तो वे घायलों की डोली में थीं और झण्डा उनके हाथों में छाती से लगा हुआ था। श्री० गङ्गू बहन चोकसी पर भी कई बार मार पड़ी, पर वे जब तक बेहोश न हो गईं, अपनी जगह से एक इञ्च भी पीछे न हटीं। एक सिख महिला को, जो गर्भवती थीं, पुलिस वालों ने ज़मीन पर डाल कर लाठियों से ख़ूब मारा। वह इतनी आहत हुईं कि मुँह से बोल तक नहीं सकती थीं। श्रीमती मनोरमा देशसेविका के सिर पर लाठी पड़ी और कई जगह घाव लगे। मिस मेहरो शराफ़ नाम की एक १८ वर्ष की पारसी युवती ने एक अनजान

व्यक्ति को पुलिस द्वारा पीटे जाते देखा। उसे बचाने के लिए उन्होंने अपने हाथ आगे कर दिए। उनके हाथों और मुँह में चोट आई, पर उस व्यक्ति का सिर टूटने से बच गया।

ता० १ अगस्त को बम्बई में सरकारी आज्ञा के विरुद्ध जो जलूस निकाला गया था और जिसमें मालवीय जी और सरदार पटेल आदि नेता पकड़े गए थे, उसीके सम्बन्ध में श्रीमती हरनामकौर और अमृतकौर नाम की दो सिख महिलाएँ भी गिरफ़्तार की गई थीं ; सज़ा होने के बाद उन्होंने जो सन्देश दिया, उसका सारांश यह है :—

"हमको सिर्फ़ एक इसी बात का रञ्ज है कि हम पुलिस द्वारा लाठियों से नहीं पीटी गईं। उस दिन के जलूस में अकाली स्त्रियों ने भी पुरुषों के समान बड़ी संख्या में भाग लिया था। दूसरी बात जिसका हमको रञ्ज है, यह है कि जब कि हमारे माननीय नेताओं को तीन-तीन महीने की जेल दी गई, हमको केवल १६ दिन की सज़ा दी गई। भारतीय स्त्रियाँ इस भेदपूर्ण बर्ताव को पसन्द नहीं करतीं और जितना अधिक कष्ट सहना पड़े, उसके लिए तैयार हैं।"

बम्बई में डॉ० वी० पी० जानी नामक सज्जन को क्रिमिनल प्रॉसीजर कोड की दफ़ा १०८ के अनुसार १ वर्ष की सादी क़ैद की सज़ा दी गई है। इस दण्ड का हाल सुन कर उनकी पत्नी ने राजकोट (काठियावाड़) से जो पत्र भेजा है, वह इस बात का परिचायक है कि वर्तमान सत्याग्रह-आन्दोलन ने जनता के हृदय में कितना जोश भर दिया है और उसके कारण हमारे महिला-समाज में कैसा भारी परिवर्तन हो गया है। पत्र का सारांश नीचे दिया जाता है :—

"मैंने आपकी गिरफ़्तारी का समाचार सुना। भारत-माता के सच्चे सपूत की सेवा का सबसे बढ़िया सर्टिफ़िकेट जेल की सज़ा भोगना है। इससे अच्छा और अधिक सुन्दर सर्टिफ़िकेट दूसरा नहीं हो सकता। मैं नौजवान भारत-सभा की बागडोर ग्रहण करने को सर्वथा तैयार हूँ और अदम्य और सतर्क भाव से उसका सञ्चालन करती रहूँगी, बशर्ते कि मैं इसके योग्य होऊँ। आप उन सबकी कुछ भी चिन्ता न करें। मैं आपका ही अनुकरण करने तथा आपके काम को जारी रखने को तैयार हूँ। जिस भाँति हम दोनों ने मिल कर सामाजिक बुराइयाँ अपनी जाति से दूर की थीं, उसी प्रकार मैं, बच्चों का प्रबन्ध करके, बम्बई आ जाऊँगी और वहाँ आपका काम आरम्भ कर दूँगी। आप हमारी कुछ भी चिन्ता न करें। हम सब आनन्द में हैं। आज मेरे जीवन में सबसे अधिक आनन्द का दिन है। वन्देमातरम् !!"

बम्बई में पिकेटिङ्ग करने के क़सूर में श्रीयुत नरोत्तम सुन्दर जी नामक एक धनी व्यापारी को चार महीने की सख़्त क़ैद की सज़ा दी गई। जेल जाते समय उनकी बाल-पत्नी ने, जिसका विवाह हाल ही में हुआ है, उनको फूलों का हार पहिना कर विदा किया।

बम्बई में सुप्रसिद्ध देशसेविका श्रीमती पैरिन कप्तान और श्रीमती लीलावती मुन्शी को तीन-तीन मास की सज़ा मिली।

बम्बई के चेम्बूर नामक स्थान की एक ६१ वर्ष की महिला श्रीमती लखमनी को पिकेटिङ्ग के लिए जेल की सज़ा दी गई थी। जेल में बीमार हो जाने से उनको १६ दिन के लिए घर जाने की इजाज़त दी गई है!

अहमदाबाद के गर्ल्स हाई-स्कूल में, जो एक सरकारी संस्था है, १६ अगस्त को प्रातः ८॥ बजे, राष्ट्रीय झण्डा लगाने के लिए लड़कियों का एक बहुत बड़ा दल पहुँचा। ये उसी स्कूल की वर्तमान या पुरानी विद्यार्थिनियाँ थीं। परन्तु स्कूल के तमाम दरवाज़े पहले से ही बन्द कर दिए गए थे, इसलिए वे फाटक के सामने बैठ कर गीत गाने लगीं। लोगों की एक बड़ी भीड़ वहाँ जमा हो गई। लगभग १०॥ बजे बहुत सी लड़कियाँ पीछे की तरफ़ से सीढ़ी लगा कर स्कूल के हाते की दीवार पर चढ़ गईं। कई अध्यापिकाओं और चपरासियों ने उनको पीछे की तरफ़ ढकेला, पर वे भीतर कूद ही पड़ीं और दौड़ कर दरवाज़े को खोल दिया, जिससे बाहर खड़ी हुई तमाम लड़कियाँ स्कूल में दाख़िल हो गईं। उन्होंने स्कूल पर

राष्ट्रीय झण्डा फहराया और उसके चारों तरफ खड़े होकर झण्डा-गीत गाया।

२० अगस्त को अहमदाबाद के आर०सी० हाई-स्कूल में, जोकि सरकारी है, झण्डा लगाने के लिए विभिन्न स्कूलों के लड़कों और स्वयंसेविकाओं का एक बड़ा दल पहुँचा। पुलिस ने लाठियों द्वारा जलूस को रोका। शाम को ५॥ बजे लड़कों का एक दल बलपूर्वक स्कूल के भीतर घुस गया। पुलिस उनके पीछे दौड़ी और जनता उत्तेजित हो उठी। भीड़ पर सिपाहियों ने लाठियों से हमला किया। कितनी ही स्वयंसेविकाओं ने बीच में खड़े होकर लोगों को बचाने की चेष्टा की, पर पुलिसवालों ने उनको हटा दिया। बाद में सोलह महिलाएँ गिरफ़्तार की गईं। एक वृद्धा रमणी घायल भी हुई है। जो महिलाएँ पकड़ी गई हैं उनमें सेठ अम्बालाल मिल-एजेण्ट की पुत्री श्रीमती मृदुला बहिन, और स्वर्गीय दादाभाई नौरोजी की पौत्री ख़ुरशेद बहिन भी सम्मिलित हैं।

* * *

बङ्गाल

राष्ट्रीय महिला-समिति की सेक्रेटरी श्रीमती इन्दुमती गोइनका, जोकि कलकत्ते के सुप्रसिद्ध नेता श्री० पद्मराज जैन की पुत्री हैं, प्रेस-एक्ट के ख़िलाफ़ बिना प्रेस के नाम वाला एक पर्चा निकालने के सम्बन्ध में गिरफ़्तार की गईं। इस पर्चे में पुलिस वालों से सरकारी नौकरी छोड़ने की अपील की गई थी। श्रीमती जी को छः महीने की सादी सज़ा दी गई।

गत २२ जून को कलकत्ते में देशबन्धुदास के श्राद्ध-दिवस के उपलक्ष में एक जलूस निकाला गया था। यह जलूस पुलिस की आज्ञा के विरुद्ध था, इसलिए पुलिस ने उसमें लोगों को शामिल होने से रोका। इस झगड़े में श्रीमती सरजू गुप्ता घोड़े के नीचे दब गईं और उनको चोट आई। पुलिस वालों ने देशबन्धु पार्क का, जिसमें सभा होने वाली थी, फाटक बन्द कर दिया, पर महिलाएँ और अन्य लोग रेलिङ्ग को फाँद कर भीतर पहुँच गए। वहाँ पर श्रीमती उर्मिला देवी के सभापतित्व में सभा हुई, जिसे सरकारी अफ़सरों ने ग़ैरक़ानूनी क़रार दिया। सभा के समाप्त होने पर फिर पुलिस के सवारों ने धावा किया, जिससे कितनी ही महिलाएँ और अन्य लोग घायल हुए। इसी दिन दक्षिण कलकत्ता में भी एक भारी जलूस निकला, जो अलीपुर जेल तक गया। यहाँ भी पुलिस वालों ने आक्रमण किया और राष्ट्रीय झण्डे को छीन लिया। झण्डे की रक्षा करते समय कई महिलाओं को चोट आई। इन जलूसों के सम्बन्ध में बाद में चार देवियाँ पकड़ी गईं, जिनके नाम ये हैं—श्रीमती उर्मिला देवी, श्रीमती विमल प्रतिभा देवी, श्रीमती मोहिनी देवी और श्रीमती ज्योतिर्मयी गाङ्गुली एम० ए०। (इन देवियों के चित्र अन्यत्र प्रकाशित किए गए हैं।) अदालत में मुक़दमा चलने पर इनको छः-छः मास की सादी सज़ा दी गई। मोहिनी देवी की अवस्था साठ वर्ष की है।

श्रीमती रमादेवी नाम की एक वृद्धा महिला बड़ा बाज़ार में विदेशी कपड़े की पिकेटिङ्ग करने के अपराध में गिरफ़्तार की गई। मैजिस्ट्रेट ने उसे छः मास की सादी सज़ा दी। इस पर उसने अदालत में कहा—"अगर मैंने कोई अपराध किया हो तो मुझे मार डालो, पर जेल मत भेजो।" इस पर मैजिस्ट्रेट ने कहा कि अगर तुम भविष्य में पिकेटिङ्ग न करने की प्रतिज्ञा करो तो तुमको छोड़ा जा सकता है। इस पर उस वीर-महिला ने उत्तर दिया कि—"यह तो न होगा। तुम चाहे जो करो, पर जब तक मेरी जान में जान है, मैं पिकेटिङ्ग करना न छोड़ूँगी।"

गत २४ जुलाई को बड़ा बाज़ार में पिकेटिङ्ग करने के लिए सात देवियों को जेल की भिन्न-भिन्न सज़ाएँ दी गईं। देवियों के नाम और सज़ा का ब्योरा इस प्रकार है:—

१—श्रीमती जोगेश्वरी देवी—४ मास की सादी क़ैद।
२—श्रीमती सरस्वती देवी—४ मास की सादी क़ैद।
३—श्रीमती भानुकुँवर देवी—४ मास की सादी क़ैद।
४—श्रीमती देवी— ४ मास की सादी क़ैद।
५—श्रीमती बचुली पटेल—४ मास की सादी क़ैद।
६—श्रीमती चमेली देवी—६ मास की सादी क़ैद।
७—श्रीमती शान्ति देवी—४ मास की सादी क़ैद।

श्रीमती चमेली देवी पर पिकेटिङ्ग के सिवा यह भी अभियोग लगाया गया था कि उन्होंने एक यूरोपियन व्यवसायी के मुँह पर थप्पड़ मारा था।

कलकत्ते के विक्टोरिया इन्स्टीट्यूट (कन्या-विद्यालय) की लेडी प्रिन्सिपल श्रीमती लतिका बसु ने शिक्षा-विभाग के अपमानजनक सरकुलर के विरोध-स्वरूप अपने पद से इस्तीफ़ा दे दिया। स्कूल को छोड़ते समय वहाँ की छात्राओं ने आपको अभिनन्दन-पत्र दिया और एक सोने का चरख़ा भेंट किया।

४ अगस्त को कलकत्ते में डॉ० प्रभावतीदास गुप्ता गिरफ़्तार कर ली गईं। उनके मकान की तलाशी ली गई और पुलिस कितने ही काग़ज़-पत्र उठा ले गई। आप 'बङ्गाल जूट वर्कर्स यूनियन' की प्रेसीडेण्ट थीं।

१५ अगस्त को महिला सत्याग्रह-कमेटी की प्रेसीडेण्ट श्रीमती इन्दुबाला देवी को चार मास की सख़्त क़ैद की सज़ा दी गई। ये सबसे पहली बङ्गाली महिला हैं, जिनको सपरिश्रम कारावास दण्ड दिया गया है।

१५ जुलाई को मिदनापुर में सम्भ्रान्त घरों की १६ महिलाएँ कॉलेज की पिकेटिङ्ग करने को गईं। इसकी ख़बर पाते ही एस० डी० ओ० और पुलिस सब-इन्सपेक्टर मौक़े पर पहुँचे और उन्होंने उन सबको गिरफ़्तार कर लिया। उनको मोटर लॉरी में बैठने को कहा गया। कुछ महिलाओं ने तब तक मोटर में बैठने से इन्कार किया जब तक कि यह न मालूम हो जाय कि उनको कहाँ ले जाया जायगा। पर उनको ज़बर्दस्ती गाड़ी में बैठाया गया और किसी अज्ञात स्थान में भेज दिया। इस ख़बर के फैलते ही शहर में हलचल मच गई और कॉलेज के लड़के भी विरोध-प्रदर्शन के लिए बाहर निकल आए। कुछ देर बाद पता चला कि पुलिस वाले उनको शहर से आठ मील दूर जङ्गल में छोड़ आए हैं। कुछ लोग उनको वापस लाने के लिए चेष्टा करने लगे, पर शहर का कोई मोटर लॉरी वाला इसके लिए राज़ी न हुआ, क्योंकि ऐसा करने पर पुलिस ने उनका लाइसेन्स छीन लेने की धमकी दी थी। अतः दो घोड़ा-गाड़ियाँ भेज कर उनको शहर में लाया गया। १६ तारीख़ की रात को इन महिलाओं की अध्यक्ष श्रीमती चारुशीला देवी गिरफ़्तार कर ली गईं और उनको दो महीने की सादी सज़ा दी गई।

ढाका के ईडन हाई-स्कूल और कॉलेज की छात्राओं ने स्वयंसेवकों पर पुलिस के अत्याचारों के विरोध में दो दिन की हड़ताल की थी। लेडी-प्रिन्सिपल ने छात्राओं को स्कूल से निकालने, छात्रवृत्ति ज़ब्त कर लेने आदि की धमकी दी। इतना ही नहीं, जिन लड़कियों के संरक्षक सरकारी नौकरी करते हैं, उनको नौकरी से भी छुड़ा देने की धमकी दी गई। पर इन धमकियों का कोई असर न पड़ा और बहुत कम लड़कियाँ हाज़िर हुईं। अब लेडी प्रिन्सिपल ने बीस छात्राओं से कहा है कि वे क्षमा-प्रार्थना करें और भविष्य में राजनीतिक कार्यों में भाग न लेने की प्रतिज्ञा करें। अन्यथा उनको निकाल दिया जायगा। लड़कियों ने इस अपमानजनक आज्ञा को मानने से क़तई इन्कार कर दिया।

बोगरा में छः महिलाएँ पिकेटिङ्ग के अभियोग में गिरफ़्तार की गई हैं।

* * *

संयुक्त-प्रान्त

श्रीमती पार्वती देवी उन इन-गिनी महिलाओं में से एक हैं, जो भारतीय राजनीतिक आन्दोलन में लगातार कितने ही वर्षों से काम कर रही हैं और जिनकी सेवाएँ पुरुष आन्दोलनकारियों से किसी भाँति कम नहीं हैं। असहयोग के ज़माने में आपको दो वर्ष की कड़ी क़ैद की सज़ा दी गई थी। इस बार भी आप आन्दोलन के आरम्भ से ही आगरे में काम कर रही थीं। हाल में आप पर राजविद्रोह का मुक़दमा चलाया गया और एक वर्ष के लिए एक हज़ार रुपए का मुचलका और पाँच-पाँच सौ की दो ज़मानतें माँगी गईं। उत्तर में देवी जी ने कहा—"हिन्दुस्तान की सभ्यता में औरतें अपनी नेकचलनी की ज़मानतें नहीं दिया करतीं।" इस पर आपको एक वर्ष की सादी क़ैद की सज़ा दे दी गई। आपने जेल जाते

हुए कहा कि—"जब तक देश आज़ाद न हो जाय, नौकर-शाही को सुख की नींद न सोने दिया जाय।"

आगरे के सदर बाज़ार में शराब की दुकानों पर महिलाओं ने पिकेटिङ्ग करना आरम्भ किया है। इसके कारण शराब वालों की बड़ी आर्थिक हानि हो रही है और वे लोग महिलाओं के साथ असभ्य व्यवहार करने लगे हैं। पर स्त्रियाँ साहसपूर्वक अपने कर्तव्य पर दृढ़ हैं। कपड़े की पिकेटिङ्ग में भी इन वीर महिलाओं ने धक्के खाए, असभ्य गालियाँ सहीं, और बुरी-भली बातें सुनीं। लोगों ने उन पर थूका और कुल्ले तक कर दिए। उन्होंने मन्दिरों और जमुना-स्नान को जाने वाली औरतों की भी पिकेटिङ्ग की और सैकड़ों औरतों से विदेशी कपड़ा न पहिनने की प्रतिज्ञा कराई।

६ अगस्त को फ़ीरोज़ाबाद (आगरा) में श्री० श्रीकृष्णदत्त पालीवाल की धर्मपत्नी अन्य बारह महिलाओं के साथ, जो सब बड़े इज़्ज़तदार ख़ान्दानों की थीं, गिरफ़्तार कर ली गईं। ये सब एक मन्दिर पर इसलिए पिकेटिङ्ग कर रही थीं कि ठाकुर जी को खद्दर के वस्त्र पहनाए जायँ, मन्दिर में बिना खद्दर पहिने कोई आदमी न जाय और मन्दिर के ऊपर राष्ट्रीय झण्डा लगाया जाय।

किरावली (आगरा में) श्रीमती विद्यावती राठोर पिकेटिङ्ग के क़सूर में पकड़ी गईं। उनको छः महीने की सादी क़ैद की सज़ा दी गई।

मेरठ में श्रीमती उर्मिला देवी शास्त्री को छः महीने की सज़ा दी गई। आप आर्य-समाज के प्रसिद्ध नेता प्रो० धर्मेन्द्रनाथ जी शास्त्री, एम० ए० की विदुषी धर्मपत्नी हैं। आपके अथक प्रयत्न से मेरठ की स्त्रियों में अभूतपूर्व जागृति हो गई थी और राष्ट्रीय आन्दोलन को बहुत सहायता मिली थी।

* * *

पञ्जाब

पञ्जाब वार-कौन्सिल की आठवीं डिक्टेटर श्रीमती एल० आर० ,जुतशी आधी रात को अपने मकान में गिरफ़्तार कर ली गईं। आप राजद्रोही भाषण के अभियोग में पकड़ी गई हैं। मैजिस्ट्रेट ने दस हज़ार की ज़मानत देकर आपसे छूट जाने को कहा, पर आपने जेल में रहना ही पसन्द किया। जेल में आपको फ़र्श पर सुलाया गया और मामूली क़ैदियों के समान व्यवहार किया गया। दूसरे दिन उनके सम्बन्धियों के शिकायत करने पर उनको 'ए' क्लास में रखने की आज्ञा दी गई।

लायलपुर में श्रीमती ज्ञानदेवी और श्रीमती धनदेवी पिकेटिङ्ग के अभियोग में गिरफ़्तार की गईं। ज्ञानदेवी जी की गोद में तीन वर्ष का बच्चा भी है। मैजिस्ट्रेट ने उनको १-१ मास की सख़्त क़ैद की सज़ा दी। उनको 'सी' क्लास में रक्खा गया है। अदालत में ज्ञानदेवी ने जेल के प्रबन्ध की शिकायत करते हुए कहा कि कोठरियों में कीड़े हैं जो उनको और बच्चे को दुःख देते हैं। जब उन्होंने यह बात जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट से कही तो उसने ताने के साथ जवाब दिया कि "वह बलिदान है।"

६ अगस्त को अमृतसर में पुलिस ने जलियानवाला बाग़ पर हमला किया, और सत्याग्रही स्वयंसेवकों की छावनी को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। २३ व्यक्ति गिरफ़्तार किए गए, जिनमें काकोरी केस के शहीद श्री० रामप्रसाद बिस्मिल की बहिन श्रीमती विद्यावती भी हैं।

३० जुलाई को अमृतसर के स्वयंसेवक-दल की कप्तान श्रीमती आत्मादेवी जी सोते हुए पकड़ ली गईं।

* * *

मद्रास-प्रान्त

एलोर (मद्रास) में श्रीमती दाम राजू लक्ष्मा, दासारी लक्ष्मी वायम्मा, दासारी कृष्णा वेनम्मा और मुन्दीम्बी वैङ्कटम्मा नाम की चार भद्र कुल की महिलाएँ २१ जुलाई को १४४ दफ़ा तोड़ने के क़सूर में पकड़ी गईं। मैजिस्ट्रेट ने उनको तीन से छः महीने तक की सज़ाएँ दीं। श्रीमती वैङ्कटम्मा के पति और दो लड़के पहले से ही जेल में हैं और अब वह तीसरे लड़के के साथ, जिसकी उम्र दो वर्ष की है, जेल में गई हैं।

काञ्जीवरम (मद्रास) में श्रीमती बाराहालू अम्मल २२ जुलाई को सार्वजनिक सभा में नमक-क़ानून तोड़ने के अपराध में गिरफ़्तार की गईं। अदालत में उन्होंने कहा कि मैं अगर छोड़ी जाऊँगी तो फिर इस क़ानून को तोड़ूँगी। मैजिस्ट्रेट ने उनको ६ महीने की सादी क़ैद की सज़ा दी।

कोयम्बटूर में पुलिस वालों को भड़काने के क़सूर में श्रीमती मीनाक्षी अम्मल को ६ महीने की सादी क़ैद की सज़ा दी गई। नीलोर में भी तीन स्वयंसेविकाओं को छः-छः मास की सज़ा दी गई।

कोचीन रियासत के त्रिचूर नामक स्थान में श्रीमती कार्तिकायिनी अम्मल बी० ए० ने, जो वहाँ के जुबिली गर्ल्स हाई-स्कूल में अध्यापिका हैं, लड़कियों की एक सभा में व्याख्यान देते हुए खादी पहिनने और स्वदेशी चीज़ें इस्तेमाल करने का अनुरोध किया था। इस पर रियासत के शिक्षा-विभाग के अधिकारियों ने उनको एल० टी० की परीक्षा पास करने से रोक दिया है और ख़ुफ़िया पुलिस को उन पर निगरानी रखने की आज्ञा दी है।

* * *

अन्य प्रान्त

१३ अगस्त की रात को देहली में एक शराब की दुकान पर पिकेटिङ्ग करते हुए ४५८ स्वयंसेवक और १३ स्वयंसेविकाएँ गिरफ़्तार की गईं। स्वयंसेविकाओं के नाम उनकी उम्र सहित नीचे दिए जाते हैं:—श्रीमती कोहली २६ वर्ष; श्रीमती चन्द्रावती २७ वर्ष; श्रीमती पार्वती ३६ वर्ष; श्रीमती चमेली ३० वर्ष; श्रीमती चन्दोदेवी ४० वर्ष; श्रीमती अनारदेवी ४० वर्ष; श्रीमती बसन्तीदेवी ४५ वर्ष; श्रीमती हीरादेवी ४५ वर्ष; श्रीमती जयदेवी ५० वर्ष; श्रीमती चम्पादेवी ५० वर्ष; श्रीमती ननकीदेवी ६० वर्ष; श्रीमती धनदेवी ७० वर्ष; श्रीमती मानकी देवी ७० वर्ष।

मुक़द्दमा आरम्भ होने पर श्रीमती कोहली और श्रीमती पार्वती के सिवाय ११ महिलाएँ छोड़ दी गईं।

२१ अगस्त को दिल्ली में ६ स्वयंसेविकाएँ शराब की पिकेटिङ्ग करने के क़सूर में गिरफ़्तार की गईं। इनमें स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी की पुत्री श्रीमती विद्यावती भी सम्मिलित हैं। ये नहर सादतख़ाँ नाम के स्थान में एक शराब के गोदाम की पिकेटिङ्ग करती थीं।

१५ अगस्त को एक बड़ा राष्ट्रीय जलूस अजमेर के नॉर्मल स्कूल में झण्डा लगाने को पहुँचा। पुलिस ने उसे रोकने को लाठियाँ चलाईं और २५० लोगों को गिरफ़्तार किया, जिनमें २० महिलाएँ भी शामिल थीं।

अजमेर में श्रीमती कृष्णादेवी को ३ मास की सज़ा दी गई है।

आसाम के शिक्षा-विभाग ने स्कूलों की छात्राओं से राजनीतिक आन्दोलन में भाग न लेने की प्रतिज्ञा करने को कहा था। पर ३०० में से केवल ५० छात्राएँ ऐसी प्रतिज्ञा करने को राज़ी हुईं। अन्त में अधिकारियों ने अपना हुक्म वापस ले लिया।

पटने के देशविख्यात बैरिस्टर श्री० हसन इमाम की पत्नी और पुत्री तथा अन्य दो महिलाओं पर पुलिस एक्ट की दफ़ा ३२ और ताज़ीरात हिन्द की दफ़ा १४३ के अनुसार मुक़द्दमा चलाया गया था। श्रीमती हसन इमाम पर २००) और अन्यों पर सौ-सौ रु० जुर्माना हुआ।

* * *

लन्दन में सत्याग्रह से सहानुभूति

भारतीय सत्याग्रह-संग्राम के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के लिए २५ जून को लन्दन के फ़्रेण्ड्स हाउस, यूस्टन रोड में भारतीय स्त्रियों की एक सार्वजनिक सभा हुई। उसमें सम्मिलित होने वाली महिलाओं में से कुछ के नाम यहाँ दिए जाते हैं:—श्रीमती हैदरी अहमद, श्रीमती सविता बी० पट्टनी, श्रीमती बाचूबाई कोतवाल, श्रीमती के० एम० पारघी, श्रीमती पेरीन के० मेहता, श्रीमती मुकर्जी, श्रीमती हेना सेन, श्रीमती सीता लामभा, श्रीमती यूरलकर, श्रीमती लीलावती उदानी, श्रीमती विनोदिनी याज्ञिक, और श्रीमती इन्दुमती मुन्सिफ़।

इस सभा में निम्नलिखित आशय के प्रस्ताव सर्व-सम्मति से पास किए गए :—

(१) इस सभा में उपस्थित होने वाली लन्दन की भारतीय स्त्रियाँ अपनी हिन्दुस्थान में रहने वाली बहिनों को बधाई देती हैं कि उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन में ऐसा प्रशंसनीय भाग लिया है और इस काम में अपने प्राणों तक की परवाह नहीं की है। साथ ही यह सभा पुलिस वालों के उस व्यवहार की निन्दा करती है जो उन्होंने शान्त सत्याग्रही महिलाओं के प्रति किया है।

(२) यह सभा महात्मा गाँधी और अन्य समस्त राजनीतिक कार्यकर्ताओं की गिरफ़्तारी की और गवर्नमेण्ट की निर्दय दमन नीति की निन्दा करती है और समस्त राजनीतिक क़ैदियों और मेरठ-केस के क़ैदियों को बिना शर्त के छोड़ देने के लिए गवर्नमेण्ट से अनुरोध करती है।

(३) यह सभा इङ्गलैण्ड की गवर्नमेण्ट को बतला देना चाहती है कि राउण्डटेबिल कॉन्फ्रेन्स में भारत के भविष्य के सम्बन्ध जो कुछ निर्णय किया जायगा, वह तब तक कदापि स्वीकार न किया जायगा जब तक महात्मा गाँधी, जो कि भारतवासियों के सच्चे नेता हैं, उसमें सम्मिलित न होंगे।

(४) यह सभा साम्प्रदायिक और अन्य राजनीतिक दलों के नेताओं को चेतावनी देती है कि वर्तमान राष्ट्रीय भावना के विरुद्ध उनका राउण्डटेबिल कॉन्फ्रेन्स में शामिल होना मातृभूमि के प्रति विश्वासघात करना होगा।

* * *

मन्त्री जी की सुकीर्ति

आगरा में कोई विधवाश्रम है, जिसका मन्त्री केदारनाथ नाम का एक व्यक्ति है। थोड़े दिन पहले केदारनाथ दो साथियों की मदद से, जिनके नाम दयाशङ्कर और मूलचन्द हैं, लक्ष्मी नाम की एक नवयुवती हिन्दू-विधवा को ज़बर्दस्ती पकड़ लाया। यह स्त्री गङ्गाराम नामक व्यक्ति के साथ रहती थी। एक दिन शाम को उपरोक्त तीनों अभियुक्त एक इक्के में गङ्गाराम के मकान पर पहुँचे और लक्ष्मी को बलपूर्वक इक्के पर बिठा कर भाग गए। इसके पश्चात् धमका कर उससे विधवाश्रम के प्रतिज्ञा-पत्र पर दस्तख़त कराए गए कि मैं अपनी राज़ी-ख़ुशी से आश्रम में दाख़िल होती हूँ। वे लोग उसकी शादी देहली के किसी पोखनदास नामक पञ्जाबी से कराना चाहते थे और इसके लिए उस अभागी औरत को छः दिन तक हण्टरों और तमाचों से मार-मार कर राज़ी किया गया। पर जब पोखनदास को पता लगा कि यह स्त्री कुँवारी नहीं, वरन् विवाहिता है तो उसने उसे वापस लौटा दिया। आगरे आकर उसने तीनों अभियुक्तों पर मुक़दमा दायर किया जिसके फल-स्वरूप केदारनाथ और दयाशङ्कर को चार-चार वर्ष और मूलचन्द को कम उम्र का होने के कारण एक वर्ष की सख़्त क़ैद की सज़ा दी गई।

लेखकों से प्रार्थना

लेख, कविता, कहानी आदि भेजने वाले सज्जनों से सविनय प्रार्थना है कि यदि वे अपने पत्र का उत्तर चाहते हों तो जवाबी पोस्ट-कार्ड या टिकिट भेजें। यदि वे लेख को लौटाना चाहें तो भी टिकिट भेजना आवश्यक है। एक महीने के भीतर ही लेख को लौटाने की सूचना हमें मिल जानी चाहिए। इन नियमों के विरुद्ध हम किसी पत्र का उत्तर देने या लेख लौटाने में असमर्थ हैं।

—सम्पादक

* * *

मातृ-मन्दिर-कोष

मातृ-मन्दिर (इलाहाबाद) के मन्त्री महोदय सूचित करते हैं कि गत जुलाई मास के अङ्क में प्रकाशित सूचना के अनुसार मातृ-मन्दिर कोष में १११०॥)८ पाई प्राप्त हुए थे। विगत जुलाई तथा अगस्त मास में १२१) और मिले हैं, जिसकी सूची इस प्रकार है :—

(१) एक गुप्त दान ... ... २)

(२) श्रीमती कुँवर प्रताप बहादुर, मार्फ़त गोबर्धन-लाल साहब, असिस्टेण्ट मैनेजर—के० ओ० ई०, बहराइच, ... २)

(३) श्रीयुत श्याम जी विद्यार्थी, डाकख़ाना बिन्दकी, (फ़तेहपुर) ... ... २॥।=)

(४) श्रीयुत विद्याधर ... ... ५)

(५) श्रीयुत जगदीशनरायन सिंह, ग्राम और डाकख़ाना लखौरा, (चम्पारन) ... १)

(६) बा० बृजलाल जी कनोडिया, पोस्ट रुदौली, बाराबङ्की ... ... २)

(७) ला० ठाकुरदास ऑनरेरी असिस्टेण्ट कलेक्टर, पोस्ट धवनी, ज़िला बाँसबरेली... ५०)

(८) श्रीयुत हरीनरायन खोसला ... ३)

(९) श्रीमती सन्तराम और श्रीमती सोमदत्त, मार्फ़त मेसर्स देवीदयाल सन्तराम, रईस और ज़मींदार, पोस्ट कोट नाका, ज़िला गुजरान-वाला ... ... १०)

(१०) श्रीयुत शङ्करलाल, बेङ्कर जॉन्स्टनगञ्ज, इलाहाबाद, ... २)

(११) श्रीयुत जगतनरायन मेहरोत्रा, रोज़ विला, नैनीताल ... ... १४)

(१२) श्रीयुत रामसिंह मार्फ़त बाबू धूमबहादुर, वकील, चौबे मुहल्ला, बदायूँ। ... २)

(१३) श्रीयुत गुलज़ारीलाल जी इङ्गलिश मास्टर, मिडिल स्कूल बिन्दकी, फ़तेहपुर। ... ५)

(१४) मिस्टर जी० पण्ड्या मार्फ़त एच० एम० कस्टम्स, पोस्ट बॉक्स नं० ६१—मोम्बासा, ब्रिटिश ईस्ट अफ़्रीका... ... ... ३।=)

(१५) श्रीयुत रामस्वरूप माईवाल, मार्फ़त बा० सियाप्रसाद, पोस्ट सतना, जी० आई० पी० रेलवे। ... ... १०)

(१६) डॉक्टर अनन्तराम ओहरी एम० बी० बी० एस० असिस्टेण्ट सर्जन खैरपुर, टाम्बेवाली (बहावलपुर स्टेट) (फल वितरण करने के लिए) ... ६)

(१७) श्रीमती सावित्री देवी, मार्फ़त श्रीयुत एस० आर० वर्मा, एम० ए०, गली पुराना डाक बँगला, ज़िला लुधियाना ... ... ५)

१२५)

इस प्रकार अब तक १२३५॥)८ पाई नक़द हमें प्राप्त हुए हैं। देशवासियों का कर्त्तव्य है कि वे यथाशक्ति सहायता भेज कर इस पुनीत कार्य में हमारा हाथ बटावें।

—अ० मन्त्री, मातृ-मन्दिर

* * *

लड़का गोद देना है

कलकत्ता निवासी एक देशवाल-अग्रवाल गर्ग गोत्र की स्त्री ग़रीबी के कारण अपने एक वर्ष के लड़के को किसी धनवान व्यक्ति को गोद देना चाहती है। वह थोड़े समय पहले बहुत धनवान थी, पर उसका पति फाटके में अपना सर्वस्व हार गया है। जो सज्जन इच्छुक हों, 'नं० १०१ मार्फ़त सम्पादक 'चाँद' इलाहाबाद, के पते पर पत्र-व्यवहार करें।

* * *

गर्भवती बहिन को सूचना

हमको एक बहिन का पत्र मिला है, जो अविवाहिता अवस्था में किसी प्रकार गर्भवती हो गई है और इस सङ्कट से छूटने में सहायता चाहती है। वह जब चाहे ख़ुशी से प्रयाग आकर 'चाँद' कार्यालय या मातृमन्दिर, रसूलाबाद, इलाहाबाद में उपस्थित हो सकती है। उसे यहाँ किसी प्रकार का कष्ट नहीं हो सकता और सब प्रकार से उसकी सहायता की जायगी। और भी जो बहिनें इस प्रकार के सङ्कट में फँसी हों, हमारी सहायता ग्रहण कर सकती हैं।

—प्रिन्सिपल मातृ-मन्दिर

स्लोन के मलहम के द्वारा
छाती की सर्दी से
छुटकारा पाइए !
छाती में सर्दी लग जाने पर
जब आप दर्द का अनुभव करें, उसी
समय स्लोन के मलहम का व्यवहार कीजिए ।
स्लोन का मलहम शरीर के तकलीफ़देह हिस्से में
ख़ून का प्रवाह जारी करता है और तकलीफ़ को फ़ौरन
दूर कर देता है । स्लोन के मलहम का व्यवहार जारी
रखिए और शीघ्र ही आपकी सर्दी बिलकुल दूर हो
जायगी ।
SLOAN'S
FAMILY
LINIMENT
Sloan's
Liniment
kills
pain!

कविता की अनमोल पुस्तक

[रचयिता—प्रोफ़ेसर रामकुमार जी वर्मा, एम० ए०]

यह वह पद्यमय पुस्तक है, जिसे पढ़ कर एक बार उन लोगों में भी शक्ति का सञ्चार हो जाता है, जो जीवन से विरक्त हो चुके हैं। वीर-प्रसविनी चित्तौड़ की माताओं का यदि आप स्वार्थ-त्याग, देश-भक्ति तथा कर्म-निष्ठा का ज्वलन्त उदाहरण देखना चाहते हैं, यदि आप चाहते हैं कि भारत का मातृ-मण्डल भी इन वीर क्षत्राणियों के आदर्श से शिक्षा ग्रहण कर अपने निरर्थक जीवन को भी उसी साँचे में ढाले, यदि आप चाहते हैं कि कायर बालकों के स्थान पर एक बार फिर वैसी ही आत्माओं की सृष्टि हो, जिनकी हुङ्कार से एक बार मृत्यु भी दहल जाया करती थी, तो इस वीर-रसपूर्ण ऐतिहासिक पुस्तक को स्वयं पढ़िए तथा घर की स्त्रियों और बच्चों को पढ़ाइए—सुन्दर छपी हुई पुस्तक का मूल्य केवल १॥) रु०; स्थायी ग्राहकों से १=) मात्र !

कविता में ऐसी सुन्दर वीर-रस में पगी हुई पुस्तक हिन्दी-संसार में अब तक प्रकाशित नहीं हुई थी। "कुमार" महोदय की कविताओं का जिन्होंने 'चाँद' द्वारा रसास्वादन किया, वे इन कविताओं की श्रेष्ठता का अभी से अनुभव कर सकते हैं।

Regd. No. A—11
निर्वासिता
[ले० "कैवर्त-कौमुदी"-सम्पादक श्री० अनूपलाल जी मण्डल, साहित्य-रत्न]
भूमिका-लेखक—
सुप्रसिद्ध आलोचक श्री० अवध उपाध्याय जी
समाज की दहकती हुई चिता, उसमें स्त्रियों का तिल-तिल कर जलना; उनका नैराश्यपूर्ण जीवन और नाना प्रकार की व्यथाओं का सजीव चित्र। कैसा ही पत्थर-हृदय मनुष्य क्यों न हो, एक बार अवश्य ही द्रवित हो उठेगा। पढ़ते ही आँखों से आँसुओं की धारा बह निकलेगी। ऐसा मालूम होगा मानो आप नाटक देख रहे हैं। पुस्तक की भाषा अत्यन्त सरल व मुहावरेदार है, बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष सभी इससे लाभ उठा सकते हैं। शीघ्रता कीजिए, केवल थोड़ी सी कॉपियाँ और शेष रही हैं। मूल्य केवल ३)
व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद
Printed and Published by SHUKDEVA ROY—Editor—at the Fine Art Printing Cottage,
28, Edmonstone Road, Chandralok, Allahabad.